INSTITUTE OF DISTANCE EDUCATION
IDE
Rajiv Gandhi University

MAHIN-405

हिंदी साहित्य का इतिहास – II

MA HINDI

2nd Semester

Rajiv Gandhi University

www.ide.rgu.ac.in

हिंदी साहित्य का इतिहास-II

एम.ए. (हिंदी)

(द्वितीय सत्र)

MAHIN-405

RAJIV GANDHI UNIVERSITY

Arunachal Pradesh, INDIA – 791 112

BOARD OF STUDIES	
Prof. Shyam Shankar Singh, (Head) Dept. Of Hindi Rajiv Gandhi University	**Chairman**
Prof. Chandan Kumar Dept. Of Hindi Delhi University	**External Member**
Prof. Dilip Medhi Dept. Of Hindi Guwahati University	**External Member**
Prof. Oken Lego Dept. of Hindi Rajiv Gandhi University	**Member**
Dr. Arun Kumar Pandey Dept. of Hindi Rajiv Gandhi University	**Co-ordinator**

Authors

Dr. Urvija Sharma

Vikas revised edition 2021

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Publisher.

"Infomation contained in this book has been published by Vikas Publishing House Pvt. Ltd, and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, IDE-Rajiv Gandhi University, the publishers and its Authors shall be in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use"

VIKAS®

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

Vikas® PUBLISHING HOUSE PVT LTD
E-28, Sector-8, Noida: 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 Fax: 0120-4078999
Regd. Office: 7561 Ravindra Mansion, Ram Nagar, New Delhi - 110055
Website: www.vikaspublishing.com Email: helpline @vikaspublishing.com

विश्वविद्यालय : एक परिचय

राजीव गाँधी विश्वविद्यालय (पूर्व में अरुणाचल विश्वविद्यालय) अरुणाचल प्रदेश के प्रमुख उच्च संस्थानों में से एक है। स्वर्गीय श्रीमती इंदिरा गांधी ने जो तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री व फरवरी 1984 को रोनो हिल्स पर विश्वविद्यालय की नींव रखी थी यही विश्वविद्यालय का वर्तमान कप विद्यमान है। आरंभ से ही राजीव गांधी विश्वविद्यालय श्रेष्ठता हासिल करने और उन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत है जो

आरंभ से ही राजीव गाँधी विश्वविद्यालय श्रेष्ठता हासिल करने और उन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत है जो विश्वविद्यालय अधिनियम में निहित है। 28 मार्च 1985 में विश्वविद्यालय को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सेक्शन 2 (F) के अंतर्गत अकादमिक मान्यता प्रदान की गई।

26 मार्च, 1994 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सेक्शन 12.V के अंतर्गत इसे वित्तीय मान्यता मिली। तब से, राजीव गांधी विश्वविद्यालय (तत्कालीन अरुणाचल विश्वविद्यालय) ने देश के शैक्षिक परिदृश्य में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा गठित विशेषज्ञों की एक उच्च स्तरीय समिति द्वारा देश के उन विश्वविद्यालयों में राजीव गांधी विश्वविद्यालय को भी चुना गया जिनमें श्रेष्ठता हासिल करने की संभावनाएं व सामर्थ्य है।

9 अप्रैल 2007 से विश्वविद्यालय को मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार की एक अधिसूचना के माध्यम से केंद्रीय विश्वविद्यालय का दर्जा दिया गया।

यह विश्वविद्यालय रोनो हिल्स की चोटी पर 302 एकड़ के विहंगम प्राकृतिक अंचल में स्थित है जहां से दिक्रोंग नदी का अदभुत दृश्य देखने को मिलता है। यह राष्ट्रीय राजमार्ग 52-A से 6.5 कि.मी . और राज्य की राजधानी ईटानगर से 25 किमी. की दूरी पर स्थित है। दिक्रोंग पुल के द्वारा कैंपस राष्ट्रीय राजमार्ग से जुड़ा . हुआ है।

विश्वविद्यालय के शैक्षिक व शोध कार्यक्रम इस प्रकार तैयार किए गए है कि वे राज्य के सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक विकास में सकारात्मक भूमिका निभा सकें। विश्वविद्यालय स्नातक स्नातकोत्तर एमफिल व . पी. एच. डी. कार्यक्रम भी संचालित करता है। शिक्षा विभाग बी. एड का कोर्स भी चलाता है।

इस विश्वविद्यालय से 15 कॉलेज संबद्ध है। विश्वविद्यालय पड़ोसी राज्यों, विशेषकर असम के छात्रों को भी शैक्षिक सुविधाएं प्रदान कर रहा है। इसके विभिन्न विभागों व इससे जुड़े कॉलेजों में छात्रों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है।

यूजीसी व अन्य फडिंग एजेंसियों की वित्तीय सहायता से संकाय सदस्य भी शोध गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग ले रहे हैं। आरंभ से ही विभिन्न फडिंग एजेंसियों द्वारा विश्वविद्यालय के विभिन्न शोध प्रस्तावों को स्वीकृत किया गया है। विभिन्न विभागों ने अनेक कार्यशालाओं, संगोष्ठियों व सम्मेलनों का आयोजन भी किया

है। अनेक संकाय सदस्यों ने देश व विदेश में आयोजित सम्मेलनों व संगोष्ठियों में भाग लिया है देशविदेश के - प्रमुख विद्वानों व विशिष्ट व्यक्तियों ने1 विश्वविद्यालयों का दौरा किया है और अनेक विषयों पर अपने वक्तव्य भी प्रस्तुत किए है।

2000-2001 का अकादमिक वर्ष विश्वविद्यालय के लिए सुदृढीकरण का वर्ष रहा। वार्षिक परीक्षाओं से सेमेस्टर प्रणाली में परिवर्तन व्यवधानविहीन रहा और परिणामत छात्रों के प्रदर्शन में भी विशेष सुधार देखा गया बोर्ड ऑफ पोस्ट ग्रेजुएट स्टडीज़ द्वारा बनाए गए विभिन्न पाठ्यक्रमों को लागू किया गया यूजीसी इंफोनेट कार्यक्रम के तहत ERNET इंडिया द्वारा VSAT सुविधा प्रदान की गई ताकि इंटरनेट एक्सेस प्रदान की जा सके।

मूलभूत संरचनागत सीमाओं के बावजूद विश्वविद्यालय अकादमिक श्रेष्ठता बनाए रखने में सफल रहा है। विश्वविद्यालय अकादमिक कैलेंडर का अनुशासित रूप से पालन करता है परीक्षाएं समय पर संचालित की जाती है और परिणाम भी समय पर घोषित होते हैं विश्वविद्यालय के छात्रों को न केवल राज्य व केंद्रीय सरकार में नौकरी के अवसर प्राप्त हुए है बल्कि वे विभिन्न प्रतिष्ठित संस्थाओं उद्योगों व संस्थानों में नौकरी के अवसर प्राप्त करने में सफल रहे हैं। अनेक छात्र NET परीक्षाओं मैं भी सफल हुए हैं। अनेक छात्र NET परीक्षाओं में भी | सफल हुए हैं

आरंभ से अब तक विश्वविद्यालय ने शिक्षण, पाठ्यक्रम में नवीन परिवर्तन लाने व संरचनागत विकास में महत्वपूर्ण प्रगति की है |

आईडीई एक परिचय

हमारे देश में उम शिक्षा प्रणाली को सीमित सीटों सुविधाओं और बुनियादी संसाधनों की कमी के कारण अनेक सामना करना पड़ रहा है। विषयों से जुड़े शिक्षाविद मानते है कि शिक्षा की प्रणाली से अधिक महत्वपूर्ण और जानना है। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली इन सभी बुनियादी समस्याओं और समाजिकआर्थिक बाधाओं को दूर करने का - यह प्रणाली ऐसे लाखों लोगों की गुणवत्ता युक्त शिक्षा पाने की मांग की पूर्ति कर रही है जो अपनी रखना चाहते है मगर नियमित रूप महाविद्यालयों में प्रवेश नहीं ले पाते। यह प्रणाली उच्च शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले बेरोजगार कार्यरत पुरुष और महिलाओं के लिए भी मददगार सिद्ध होती है। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली उन लोगों के लिए भी उपयुक्त माध्यम है जो सामाजिक, आर्थिक अथवा अन्य कारणों से शिक्षा और शिक्षण संस्थानों से दूर हो गए या समय नही निकाल पाये। हमारा मुख्य उद्देश्य उन लोगों को उच्च शिक्षा की सुविधाएं प्रदान करना है जो मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय नियमित तथा व्यावसायिक शैक्षिक पाठ्यक्रमों में प्रवेश नहीं ले पाते विशेषकर अरुणाचल प्रदेश के ग्रामीण व भौगोलिक रूप से दूरदराज स्थित क्षेत्रों में व सामान्यतया उत्तरपूर्वी - भारत के दूरस्थ स्थित क्षेत्रों में रान2008 में दूरस्थ शिक्षा केंद्र का नाम परिवर्तित कर दूरस्थ शिक्षा संस्थान (आईटीई) रखा गया दूरस्थ शिक्षार्थियों के लिए शिक्षा के अवसरों का विस्तार करने के प्रयास जारी रखते हुए आईडीई ने2013-14 के शैक्षणिक सत्र में पांच स्नातकोत्तर विषयों शिक्षा अंग्रेजी), हिंदी, इतिहास और राजनीति विज्ञानको शामिल किया है। (

दूरस्थ शिक्षा संस्थान में विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के पास ही शारीरिक विज्ञान संकाय भवन पहली मंजिल का निर्माण किया गया है। विश्वविद्याल)य परिसर राष्ट्रीय राजमार्ग 52 ए के एनईआरआईएसटी बिंदु से 6 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। विश्वविद्यालय की बसें एनईआरआईएसटी के लिए नियमित रूप से चलती रहती है।

दूरस्थ शिक्षा संस्थान की अन्य विशेषताएं

.1 **नियमित माध्यम के समकक्ष-**पात्रता, अर्हताएं, पाठ्यचर्या सामग्री, परीक्षाओं का माध्यम और डिग्री राजीव गांधी विश्वविद्यालय और विश्वविद्यालय के विभागों के समकक्ष हैं।

2. **स्वयं शिक्षण अध्ययन सामग्री -(एसआईएसएम)**छात्रों को संस्थान द्वारा तैयार और दूरत्व शिक्षा परिषद (डीईसी) नई दिल्ली द्वारा अनुमोदित स्वय ं शिक्षण अध्ययन सामग्री प्रदान की जाती है। यह सामग्री प्रदेश के समय आईडीई और अध्ययन केंद्रों में उपलब्ध कराई जाती है। यह सामग्री हिंदी विषय के अलावा सभी विषयों में अंग्रेजी में ही उपलब्ध कराई जाती है।

3. **संपर्क और परामर्श कार्यक्रम (सीसीपी)-** शैक्षिक कार्यक्‌्रम के प्रत्येक पाठ्यक्रम में व्यक्तिगत संपर्क द्वारा लगभग 7-15 दिनों की अवधि का परामर्श शामिल है। बीए. पाठ्यक्रमों के लिए सीसीपी .

अनिवार्य नहीं है। हालांकि व्यावसायिक पाठ्यक्रमों और एम.ए. के लिए सीसीपी में उपस्थिति अनिवार्य होगी।

.4 **फील्ड प्रशिक्षण और प्रोजेक्ट** -व्यावसायिक पाठ्क्रमों में फील्ड प्रशिक्षण और संबंधित विषय में प्रोजेक्ट लेखन का आवश्यक प्रावधान होगा।

5. **परीक्षा एवं निर्देश का माध्यम** -परीक्षा और शिक्षा का माध्यम उन विषयों को छोड़कर जिनमें संबंधित भाषा में लिखने की जरूरत हो, अंग्रेजी होगा।

6. **विषय परामर्श संयोजक** -पाठ्य सामग्री को तैयार करने के लिए आईडीई विश्वविद्यालय के अंदर और बाहर विषय समन्वयकों की नियुक्ति करती है। विश्वविद्यालय द्वारा नियुक्त परामर्श समन्वयक पीसीसीपी के अनुदेशों को प्रभावी रूप से लागू करने के लिए विश्वविद्यालय के विभिन्न विभागों से जुड़े रहते हैं ये परामर्श समन्वयक परामर्श कार्यक्रम के सुचारु रूप से संचालन तथा विद्यार्थियों के एसाइनमेंट्स का मूल्यांकन करने के लिए संबंधित व्यक्तियों से संपर्क कर आवश्यक समन्वय करते हैं। विद्यार्थी भी इन परामर्श समन्वयकों से संपर्क कर अपने विषय से संबंधित परेशानियों और शंकाओं का समाधान प्राप्त कर सकते हैं।

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

हिंदी साहित्य का इतिहास-II

Syllabi- MAHIN- 405 **Mapping in Book**

इकाई 1 : आदिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि; आदिकाल का नामकरण और सीमांकन; आदिकालीन साहित्य की विविध धाराएं; आदिकाल का गद्य साहित्य; आदिकालीन साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियां; आदिकालीन साहित्य की भाषा	**इकाई 1** : साहित्य का इतिहास और इतिहास लेखन की पद्धतियां-II
इकाई 2 : रीतिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि : राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक; रीतिकाल का अभिप्राय; नामकरण और सीमांकन; रीतिकालीन साहित्य की विभिन्न धाराएं : सामान्य परिचय, रचनाएं, रचनाकार एवं प्रमुख प्रवृत्तियां, रीतिकालीन गद्य साहित्य, रीतिकालीन काव्य की काव्यभाषा	**इकाई 2** : मध्यकालीन हिंदी साहित्य-II
इकाई 3 : द्विवेदी युग : नये काव्य परिवर्तन का स्वरुप ; महावीर प्रसाद द्विवेदी तत्कालीन हिंदी कविता ; द्विवेदी युगीन कविता : मुख्य प्रवृत्तियां, रचनाकार एवं रचनाएं; छायावाद : पृष्ठभूमि, नामकरण और सीमांकन ; प्रमुख छायावादी कवी एवं उनका काव्य ; छायावाद्कालीन अन्य कवि एवं उनका काव्य ; छायावादी कविता के मान-मूल्य ; छायावाद्कालीन काव्य का सामाजिकसांस्कृतिक और -राजनीतिक चरित्र ; छायावाद्कालीन काव्यभाषा का -स्वरुप	**इकाई 3** : आधुनिक काल की पृष्ठभूमि-II
इकाई 4 : स्वाधीनता आंदोलन और हिंदी गद्य साहित्य; देश विभाजन और हिंदी गद्य साहित्य; स्वाधीन भारत का जीवन यथार्थ और हिंदी गद्य साहित्य; दलित चेतना और हिंदी गद्य साहित्य, स्त्री चेतना और हिंदी गद्य साहित्य; जनजातीय चेतना और हिंदी गद्य साहित्य; भूमंडलीकरण और हिंदी गद्य साहित्य	**इकाई 4** : उत्तर छायावादी काव्यान्दोलन एवं गद्य चेतना-II
इकाई 5 दक्खिनी हिंदी साहित्य : सामान्य परिचय, उर्दू साहित्य का इतिहास सामान्य परिचय, हिंदी उर्दू साहित्य का पारस्परिक सम्बन्ध, हिंदी साहित्यिक पत्र और पत्रिकाओं का प्रारंभ तथा विकास	**इकाई 5** : हिंदी गद्य की प्रमुख विधाओं का उद्भव और विकास-II

CONTENTS

परिचय

इकाई 1 : साहित्य का इतिहास और इतिहास लेखन की पद्धतियाँ – II

1.0 आदिकाल का नामकरण और सीमांकन
1.2 आदिकालीन साहित्य की विविध धाराएँ
1.3 आदिकाल का गध्य साहित्य
1.4 आदिकालीन साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियाँ
1.5 आदिकालीन साहित्य की भाषा |

इकाई 2 : मध्यकालीन हिंदी साहित्य – 2

2.O रीतिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि
2.1 राजनैतिक सांस्कृतिक एवं साहित्यिक ,
2.2 रीतिकाल का अभिप्राय नामकरण ओर सीमांकन ;
2.3 रीतिकालीन साहित्य की विभिन्न धाराएँ : सामान्य परिचय, रचनाएं, 2.4 रचनाकार एवं प्रमुख प्रवृत्तियाँ
2.4 रीतिकालीन गद्य साहित्य
2.5 रीतिकालीन काव्य की भाषा |

इकाई 3 : आधुनिक काल की पृष्ठभूमि – II

3.0 द्विवेदी युग : नये काव्य परिवर्तन का स्वरुप
3.1 महावीर प्रसाद द्विवेदी तत्कालीन हिंदी कविता
3.2 द्विवेदी युगीन कविता : मुख्य प्रवृत्तियां, रचनाकार एवं रचनाएं
3.3 छायावाद : पृष्ठभूमि, नामकरण और सीमांकन
3.4 प्रमुख छायावादी कवी एवं उनका काव्य
3.5 छायावाद्कालीन अन्य कवि एवं उनका काव्य
3.6 छायावादी कविता के मान-मूल्य
3.7 छायावाद्कालीन काव्य का सामाजिक सांस्कृतिक और राजनीतिक -चरित्र
3.8 छायावाद्कालीन काव्य -भाषा का स्वरुप

इकाई 4 : उत्तर छायावादी काव्यान्दोलन एवं गद्य चेतना – II

4.0 स्वाधीनता आन्दोलन और हिंदी गद्य साहित्य
4.1 देश विभाजन और हिंदी गद्य साहित्य
4.2 स्वाधीन भारत का जीवन यथार्थ और हिंदी गद्य साहित्य

4.3 दलित चेतना और हिंदी गद्य साहित्य
4.4 स्त्री चेतना और हिंदी गद्य साहित्य
4.5 जनजातीय चेतना और हिंदी गद्य साहित्य
4.6 भूमंडलीकरण और हिंदी गद्य साहित्य

इकाई 5 : हिंदी गद्य के प्रमुख विधाओं का उद्भव और विकास – II

5.0 दक्खिनी हिंदी साहित्य : सामान्य परिचय
5.2 दक्खिनी हिंदी साहित्य का स्वरूप
5.3 दक्खिनी का क्षेत्र
5.4 दक्खिनी का विकास
5.5 उर्दू साहित्य का इतिहास : सामान्य परिचय
5.6 उर्दू की उत्पत्ति एवं नामकरण
5.7 उर्दू का विकास
5.8 उर्दू की प्रमुख विशेषताएं
5.9 उर्दू के विविध काव्यरूप
5.10 हिंदी - उर्दू साहित्य का पारस्परिक संबंध
5.11 हिंदी साहित्यिक पत्र-पत्रिकाएं : प्रारंभ और विकास

इकाई 1 साहित्य का इतिहास और इतिहास लेखन की पद्धतियां-I

1.0 परिचय

साहित्य मानव समाज की भावनात्मक स्थिति और गतिशील चेतना की अभिव्यक्ति होता है| उसके प्रेरक तत्व के रूप में मनुष्य के परिवेश या पृष्ठभूमि का बहुत महत्व है| किसी भी काल के साहित्य के इतिहास को समझने के लिए उस परिवेश को ठीक से समझना अत्यंत आवश्यक होता है, इस दृष्टि से आदिकालीन साहित्य के इतिहास के साथ तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को जानना उचित है|

राजनैतिक स्थिति- आदिकाल का समय 769 ईस्वी से 1418 ईस्वी तक है| इस काल की राजनीतिक स्थिति वर्धन साम्राज्य के पतन से आरंभ होती है| अंतिम वर्धन सम्राट हर्षवर्धन के समय से ही उत्तरी भारत पर आक्रमण प्रारंभ हो गए थे| हर्षवर्धन ने दृढ़ता से उनका सामना किया किंतु आक्रमणों की आंधी को वह रोक नहीं पाया| उसकी समस्त शक्ति उस प्रतिरोध में ही समाप्त हो गई| हर्षवर्धन की मृत्यु ने भारत के संगठित सत्ता के खंड खंड हो जाने की सूचना दी तथा वे राजपूत राज्य सामने आए जो निरंतर युद्धों की आग में जलते जलते अंततः विशाल इस्लाम साम्राज्य की नींव में समा गए| आठवीं शताब्दी से 15वीं शताब्दी तक के भारतीय इतिहास की राजनीतिक परिस्थिति हिंदू सत्ता के धीरे-धीरे क्षय होने तथा इस्लाम सत्ता के धीरे-धीरे उदय होने की करुण कहानी है, इसी ने उस मनःस्थिति को जन्म दिया जिसमें कोई भी एक प्रवृत्ति साहित्य में प्रधान ना हो सकी| यवन शक्तियों के आक्रमण का प्रभाव मुख्यतः पश्चिम और मध्य प्रदेश पर ही पड़ा था| इन्हीं क्षेत्रों की जनता युद्धों और अत्याचारों से विशेषतः आक्रांत हुई थी| यही वह क्षेत्र था, जहां हिंदी भाषा का विकास हो रहा था| अतः इस काल का समस्त हिंदी साहित्य आक्रमण और युद्ध के प्रभाव की मनःस्थितियों का प्रतिफलन है| आदिकाल के इस युद्ध प्रभावित जीवन में कहीं भी संतुलन नहीं था| राजा आपस में लड़ रहे थे| एक कवि आध्यात्मिक जीवन की बातें करता था तो दूसरा मरते मरते भी जीवन का सुख भोग लेना चाहता था, एक तीसरा भी कवि था जो तलवार के गीत गाकर गौरव के साथ जीना चाहता था| यही इस काल की राजनीतिक परिस्थितियों की एक विचित्र देन है जिसके फलस्वरूप स्त्री- भोग, हठयोग से लेकर आध्यात्मिक पलायन और उपदेशों तक का साहित्य एक ओर लिखा गया तो दूसरी ओर ईश्वर की लोक कल्याणकारी सत्ता में विश्वास करने तथा लड़ते-लड़ते जीने और संसार को सरस बनाने की भावना भी साहित्य रचना के मूल में सन्निहित हुई| सम्राट हर्षवर्धन का दरबार संस्कृत के कवियों और पंडितों से भरा रहता था और भाषा के कवियों को उस समय कोई प्रोत्साहन नहीं मिलता था किंतु राजपूतों की राजधानियां स्थापित हो जाने के बाद लोक भाषा का आदर बढ़ने लगा| जो कवि धार्मिक भावना से अनुप्राणित थे वही किसी की परवाह किए बिना काव्य साधना करते थे और जो कभी राजा के आश्रय में होते थे उन्हें अपने राजा को प्रसन्न करने के लिए काव्य रचना करनी पड़ती थी| धर्म और राजाश्रय से मुक्त रहकर कविता करने वाले कवियों की प्रतिभा के विकास के लिए उचित वातावरण नहीं था|

धार्मिक स्थिति- ईसा की छठी शताब्दी तक देश का धार्मिक वातावरण शांत था विभिन्न धार्मिक संप्रदायों में परस्पर मेलजोल बढ़ने लगा था वैदिक यज्ञ, मूर्ति पूजा तथा जैन और बौद्ध उपासना पद्धतियां एक साथ चल रही थी किंतु सातवीं शताब्दी के साथ देश की धार्मिक परिस्थितियों में परिवर्तन प्रारंभ हुआ इस समय दक्षिण भारत से आलवार उत्तर भारत की ओर एक आंदोलन लेकर आए 642 ईसवी में जब ह्वेनसांग ने दक्षिण भारत की यात्रा की तो वहां बौद्ध धर्म के पतन की झलक पाकर वह बहुत दुखी हुआ उत्तर भारत में भी इस समय यही

प्रभाव आ रहा था वैष्णो मत इस समय अधिक प्रतिष्ठित नहीं था अतः जनता में या तो जैन मत सम्मान पा रहा था या शैव मत| 12वीं शताब्दी तक वैष्णो आंदोलन तीव्र होने लगा था और शैव आंदोलन ने भी नया रूप ले लिया था| समस्त उत्तर भारत में धीरे धीरे शैवमत बौद्ध एवं स्मार्त प्रभावों को स्वीकार करता हुआ नया रूप लेने लगा था| डॉ हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार- ' हिमालय के पाद देश में प्रचलित नाथ पूजा बौद्ध धर्म को प्रभावित कर के वज्रयान शाखा के नाम से प्रसिद्ध हो चुकी थी|' इस समय जनता हिंदू साधुओं की जितनी प्रतिष्ठा करती थी उतनी ही प्रतिष्ठा बौद्ध सन्यासियों की भी थी| व्यभिचार, आडंबर, अर्थ, लोभ आदि जिन दोषों का बौद्ध विहारों में प्राधान्य हो गया था, उन्हीं से हिंदू मंदिर भी ग्रस्त हो चले थे| पुजारी एवं महंत धर्म के सच्चे स्वरूप से अपरिचित होते जा रहे थे तथा अधिकार एवं धन का प्रलोभन प्रबल हो चला था| देशव्यापी धार्मिक अशांति के इस काल में एक बाहरी धर्म इस्लाम का प्रवेश भी कम महत्व नहीं रखता था| अशिक्षित जनता के सामने अनेक धार्मिक राहें बनती जा रही थी किंतु राह दिखाने वाले लोग ईमानदार नहीं थे| बौद्ध सन्यासी यौगिक चमत्कारों का प्रभाव दिखा रहे थे| वैदिक एवं पौराणिक मतों के समर्थक खंडन-मंडन की भूल भुलैया में पड़े थे| जैन धर्म पौराणिक आख्यानों को नए ढंग से गढ़कर जनता की आशाओं पर नया प्रभाव जमा रहा था| वैष्णव की धार्मिक कथाएं जैन कथाएं बनती जा रही थीं जो नास्तिकता-आस्तिकता का आवरण ओढ़ कर जनता में भ्रान्त वातावरण बना रही थीं | कुल मिलाकर विभिन्न धर्मों के मूल रूप लुप्त हो चले थे| एक दार्शनिक लहर दक्षिण भारत से अवश्य आ रही थी जिसके प्रचारक शंकराचार्य थे| उनके अद्वैतवाद का प्रचार उत्तर भारत को एक नई प्राणवायु दे रहा था| कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि आदिकाल की धार्मिक परिस्थितियां अत्यंत विषम तथा असंतुलित थीं| जनमानस में गहरा असंतोष, क्षोभ तथा भ्रम छाया हुआ था| कवियों ने इसी मानसिक स्थिति के अनुरूप खंडन-मंडन, हठयोग, वीरता एवं श्रंगार का साहित्य लिखा|

सामाजिक पृष्ठभूमि- राजनीतिक तथा धार्मिक परिस्थितियों का देश की सामाजिक परिस्थितियों पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ रहा था| जनता शासन तथा धर्म दोनों ओर से निराश्रित होती जा रही थी| वह ईश्वर की ओर दौड़ती थी तो सर्वत्र भ्रम और असहायता की स्थिति मिलती थी| जाति-पांति के बंधन कड़े होते जा रहे थे| उच्च वर्ग के लोग भोग करने के लिए थे तथा निर्धन वर्ग के लोग मानों श्रम करने के लिए ही पैदा हुए थे| नारी केवल भोग्या मात्र रह गई थी| सामान्य जन के लिए शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी| सती प्रथा भी इस समय के समाज का एक भयंकर अभिशाप थी| अनेक प्रकार के अंधविश्वास बढ़ते जा रहे थे| साधू-सन्यासियों के श्रापों और वरदानों की ओर लोगों की दृष्टि रहने लगी थी| जीवन यापन के साधन दुर्लभ होते जा रहे थे| भांति-भांति के पूजा-पाठ, तंत्र-मंत्र तथा जप-तप करके भी लोग दुर्भिक्ष, युद्ध तथा महामारिओं के संकट से उबर नहीं पाते थे| सामाजिक परिस्थिति की इस विषमता में जीने वाली जनता भाव के स्तर पर निरंतर ऐसे विचारों की प्यासी रहती थी जो उसे सांत्वना दे कर मानसिक शांति की ओर बढ़ा सके| हिंदी के कवियों को जनता की इस स्थिति के अनुसार काव्य रचना की सामग्री जुटानी पड़ी|

सांस्कृतिक पृष्ठभूमि तथा साहित्यिक वातावरण- हिंदी साहित्य का आदिकाल उस समय आरंभ हुआ जब भारतीय संस्कृति उत्कर्ष के चरम शिखर पर आरूढ़ हो चुकी थी और जब उसने भक्तिकाल को अपना दायित्व सौंपा उस समय भारत में मुस्लिम संस्कृति के स्वर्ण शिखर स्थापित होने लगे थे| इस प्रकार आदिकाल को दो संस्कृतियों के

संक्रमण एवं ह्रास-विकास की गाथा कहा जा सकता है| हर्षवर्धन के विशाल साम्राज्य ने हिंदू धर्म और संस्कृति को राष्ट्रव्यापी एकता का आधार दिया था| इस आधार पर छोटे-मोटे भेदभाव अस्त हो गए थे तथा स्वाधीनता एवं देश भक्ति के भाव दृढ़ होने लगे थे| संगीत, चित्र, मूर्ति, स्थापत्य आदि कलाओं में जातीय गौरव

की भावना अभिव्यक्त हो रही थी| महमूद गजनवी भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता पर मुग्ध हुआ था| शास्त्रों एवं कलाओं के अनुशीलन में तल्लीन तत्कालीन जनजीवन उसके लिए ईर्ष्या का विषय बन गया था किंतु देश के भाग्य की विडंबना यह रही कि शताब्दियों से श्रेष्ठता की साधना में तल्लीन वह जीवन महमूद जैसे आक्रांताओं की विजयाकांक्षा का कोप भाजन बन गया और शताब्दियों तक उस कोप से मुक्ति ना मिली| दो संस्कृतियाँ एक दूसरे के सामने मानसिक तनाव की स्थिति में खड़ी एक दूसरे को शंका की दृष्टि से देखती रहीं| आदिकाल में भारतीय संस्कृति का जो स्वरूप मिलता है वह परंपरागत गौरव से विकसित तथा मुस्लिम संस्कृति के गहरे प्रभाव से निर्मित है| तत्कालीन जीवन के हर स्वरूप पर इस संस्कृति के व्यापक छाप मिलती है| उत्सव, मेले, परिधान, आहार, मनोरंजन, विवाह आदि सब में मुस्लिम रंग मिल गया था|चित्रकला, मूर्तिकला आदि मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव बढ़ता जा रहा था| इस तरह आदिकाल की भारतीय संस्कृति उत्कर्ष प्राप्त निजी परंपरा के ह्रास तथा इस्लाम के सम्मिश्रण की एक ऐसी कहानी है जिसमें कलात्मक चेतना का मुक्त और जीवंत स्वरूप बहुत कम मिलता है| इस काल में साहित्य रचना की दो धाराएं चल रही थीं| प्रथम धारा संस्कृत साहित्य की थी जो एक परंपरा के साथ विकसित होती जा रही थी| दूसरी धारा का साहित्य प्राकृत एवं अपभ्रंश में लिखा जा रहा था| तीसरी धारा हिंदी भाषा में लिखे जाने वाले साहित्य की थी|| नवीं से ग्यारहवीं शताब्दी तक कन्नौज एवं कश्मीर संस्कृत साहित्य रचना के केंद्र रहे| हिंदी ही इस काल की एक ऐसी भाषा थी जिसमें तत्कालीन परिस्थितियों की प्रतिक्रिया प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में मुखर हो रही थी|

1.6 आदिकाल का नामकरण और सीमांकन

हिंदी साहित्य के इतिहास के प्रथम काल का नामकरण विभिन्न विद्वानों ने किस प्रकार किया है-

चारण काल- डॉ ग्रियर्सन

आरंभिक काल- मिश्रबंधु

वीरगाथा काल- आचार्य रामचंद्र शुक्ल

सिद्ध सामंत युग- राहुल सांकृत्यायन

बीजवपन काल- महावीर प्रसाद द्विवेदी

वीर काल- विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

आदिकाल- हजारी प्रसाद द्विवेदी

चारण काल या संधि काल- रामकुमार वर्मा

डॉ ग्रियर्सन ने हिंदी साहित्य के इतिहास के प्रथम काल को चारण काल नाम दिया है लेकिन इसके पक्ष में वह कोई ठोस तर्क नहीं दे पाए हैं| उन्होंने इसका प्रारंभ 643 ईस्वी से माना है किंतु उस समय की किसी चारण रचना या प्रवृत्ति का उल्लेख उन्होंने नहीं किया है| मिश्रबंधुओं ने इस काल को आरंभिक काल जैसा एक सामान्य नाम दिया है जिसमें किसी प्रवृत्ति को आधार नहीं बनाया गया है| ईसवी सन 643 से 1387 तक के काल को उन्होंने आरंभिक काल कहा है| डॉ रामकुमार वर्मा ने इस काल का नाम चारण काल दिया है और उनका कहना था कि इस काल के सभी कवि चारण थे| यह नाम भी विद्वानों द्वारा मान्य नहीं है| राहुल सांकृत्यायन ने आठवीं से 13वीं शताब्दी तक के काल को सिद्ध सामंत युग कहा है| उनके अनुसार इस समय दो प्रवृतियां विशेष रूप से दिखाई देती हैं-1- सिद्धों की वाणी, 2- सामंतों की स्तुति| इसे भी विद्वानों द्वारा मान्य नहीं किया गया| आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इस काल को बीजवपन काल कहा है जो साहित्यिक प्रवृत्तियों की दृष्टि से ठीक नहीं|

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे आदि काल नाम दिया और विद्वान भी इसे अधिक उपयुक्त मानते हैं| दिवेदी जी ने हिंदी साहित्य के आदिकाल के लक्षण निरूपण के लिए निम्नलिखित पुस्तकें आधारभूत बताई हैं- पृथ्वीराज रासो, परमाल रासो, विद्यापति की पदावली, कीर्तिलता, कीर्तिपताका, संदेश रासक, परमात्म प्रकाश, बौद्ध गान और दोहा,स्वयंभू छंद आदि| इस प्रकार हिंदी साहित्य के इतिहास के प्रथम काल के नामकरण के रूप में आदिकाल नाम योग्य और सार्थक है क्योंकि इस नाम से उस व्यापक पृष्ठभूमि का बोध होता है जिस पर परवर्ती साहित्य खड़ा है| भाषा की दृष्टि से इस काल के साहित्य में हिंदी के प्रारंभिक रूप का पता चलता है तो भाव की दृष्टि से भक्ति काल से लेकर आधुनिक काल तक की सभी प्रमुख प्रवृत्तियों के आदिम भी इसी में खोजे जा सकते हैं| इस काल की रचना शैलियों के मुख्य रूप इसके बाद के कालों में मिलते हैं| आदिकाल की आध्यात्मिक, श्रंगारिक तथा वीरता की प्रवृत्तियों का ही विकसित रूप परवर्ती साहित्य में मिलता है|अंततः आदिकाल ही एक ऐसा नाम है जिसे किसी न किसी रूप में सभी इतिहासकारों ने स्वीकार किया है तथा जिससे हिंदी साहित्य के इतिहास की भाषा, भाव, विचारणा, शिल्प भेद आदि से संबद्ध गुत्थियाँ सुलझ जाती हैं|

सीमांकन- सरहपाद को हिंदी का प्रथम कवि मान लेने से हिंदी साहित्य के आरंभ की सीमा आठवीं शताब्दी निश्चित हो जाती है| यह सीमा राहुल सांकृत्यायन के मत पर आधारित है| ग्रियर्सन, शिवसिंह, मिश्रबंधु, हजारी प्रसाद द्विवेदी,रामकुमार वर्मा इस से बहुत दूर तक सहमत हैं| दूसरा पक्ष और विद्वानों का है जो हिंदी साहित्य का आरंभ ईशा की 10 वीं शताब्दी के अंतिम 7 वर्षों से मानते हैं| इन विद्वानों का नेतृत्व आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने किया| उनके मत से मुंज और भोज के समय 993 ईस्वी से पुरानी हिंदी का प्रयोग शुद्ध साहित्य में हुआ है किंतु इसे ही शुक्ल जी ने 'प्राकृताभास हिंदी या अपभ्रंश भी कहा है| तथ्यों के आधार पर वीरगाथा काल का नामकरण किया गया है| उनमें भी वे अपभ्रंश की चार कृतियां बताते हैं और आगे चलकर वीरगाथा काल को अपभ्रंश काल एवं देश भाषा काव्य में विभाजित करके सरहपाद, देव, सेन आदि कवियों का परिचय देते हैं| जिस प्रकार हिंदी साहित्य के आदिकाल की आरंभिक सीमा विवादग्रस्त रही है उसी प्रकार उसकी अंतिम सीमा भी विवादग्रस्त अवश्य है| डॉ ग्रियर्सन ने आदिकाल की अंतिम सीमा 1400 ई तक मानी है| मिश्रबंधुओं ने 1389 ईस्वी, रामचंद्र शुक्ल 1318 ईस्वी, डॉ राम शंकर शुक्ल 1343 ई, रामकुमार वर्मा जी तथा अन्य इतिहासकार शुक्ल जी से सहमत हैं फिर भी 1318 ई के बाद दो-तीन दशाब्द तक आदिकालीन साहित्य सामग्री का प्रसार माना जा सकता है|

1.7 आदिकालीन साहित्य की विविध धाराएं

आदिकाल को संपूर्ण रूप से देखा जाए तो आदिकालीन साहित्य की अनेक धाराएं दिखाई देती हैं| इस समय सिद्ध साहित्य ,जैन साहित्य और नाथ साहित्य लिखे गए| इन्हें धर्म संबंधी काव्य माना जा सकता है| रासो साहित्य लिखा गया जिसे चारण साहित्य भी कहते हैं| इसके अतिरिक्त लौकिक साहित्य और गद्य साहित्य भी लिखे गए| सिद्ध साहित्य के अंतर्गत 84 सिद्धों की वे साहित्यिक रचनाएं आती हैं जो तत्कालीन लोक भाषा हिंदी में लिखी गई हैं| रासो और रासो नाम वाली सभी पुस्तकें रासो साहित्य का अंग नहीं हैं| इस काल में कुछ ऐसी रचनाएं भी लिखी गईं जो लौकिक साहित्य में आती हैं|

1.7.1 धर्म संबंधी काव्य:**सिद्ध साहित्य**, नाथ साहित्य और जैन साहित्य धर्म संबंधी कार्य के अंतर्गत आते हैं| सिद्धों ने बौद्ध धर्म के वज्रयान तत्व का प्रचार करने के लिए जो साहित्य जन भाषा में लिखा, वह हिंदी के सिद्ध साहित्य की सीमा में आता है| राहुल सांकृत्यायन ने 84 सिद्धों के नामों का उल्लेख किया है जिनमें सिद्ध सरहपा से यह साहित्य प्रारंभ होता है| इन सिद्धों में सरहपा, शबरपा, लुइपा, डोम्भिपा,कणहपा,कुक्कुरिपा आदिहैं| सरहपा अन्य कई नामों से भी प्रसिद्ध है| इनके रचना काल के विषय में सभी विद्वान एक वक्त नहीं हैं| राहुल जी ने इनका समय 769 ई माना है जिससे अधिकांश विद्वान सहमत हैं|

इन के द्वारा रचित 32 ग्रंथ बताए जाते हैं जिनमें से 'दोहा कोश' प्रसिद्ध रचना है, जिसमें पाखंड और आडंबर का विरोध किया गया है| इसमें भाषा और भाव का सहज प्रवाह मिलता है| इसकी भाषा हिंदी है और यहां वहां अपभ्रंश का प्रभाव दिखाई देता है| शबरपा की प्रसिद्ध पुस्तक 'चर्यापद' है| इसमें माया मोह का विरोध कर, जीवन जीने पर बल दिया गया है और इसी को महासुख की प्राप्ति का मार्ग बताया गया है| लुइपा शबरपा के शिष्य थे| 84 सिद्धों में इनका स्थान सबसे ऊंचा माना जाता है| इनकी कविता में रहस्य भावना की प्रधानता है|डोम्भिपा ने विरूपा से दीक्षा ली| इनके द्वारा रचित 21 ग्रंथ बताए जाते हैं| कणहपा का जन्म कर्नाटक में हुआ और बिहार के सोमपुरी स्थान पर यह रहते थे| इनके लिखे 74 ग्रंथ बताए जाते हैं जो दार्शनिक विषयों पर हैं| उन्होंने रहस्यात्मक भावनाओं से परिपूर्ण गीतों की रचना की है| इन्होंने शास्त्रीय रूढ़ियों का खंडन किया है| कुक्कुरिपा द्वारा रचित 16 ग्रंथ माने जाते हैं| यह सरल जीवन के समर्थक रहे| इन प्रमुख कवियों के अतिरिक्त और भी कई सिद्ध कवि हैं जिन्होंने जन भाषा में साहित्य का सृजन किया|

जैन साहित्य- धर्म संबंधी काव्य में आता है, जिस प्रकार सिद्धों ने बौद्ध धर्म के वज्रयान मत का प्रचार करने के लिए हिंदी कविता को माध्यम बनाया उसी प्रकार पश्चिमी क्षेत्र में जैन साधुओं ने अपने मत का प्रचार हिंदी कविता के माध्यम से किया| इन कवियों की रचनाएं आचार, रास, फागु, चरित आदि विभिन्न शैलियों में मिलती हैं| आचार शैली के जैन काव्यों में घटनाओं के स्थान पर उपदेशात्मकता को प्रधानता दी गई है| हिंदी जैन साहित्य इस प्रकार देखा जा सकता है- 'श्रावकाचार'- की रचना देव सेन नामक जैन आचार्य ने 933 ईस्वी में की| इसमें 250 दोहों में श्रावक धर्म का प्रतिपादन किया गया है| कवि ने गृहस्थ के कर्तव्यों पर भी विस्तार से विचार किया| 'भरतेश्वर बाहुबली रास'-मुनि जिनविजय ने इसे जैन साहित्य की रास परंपरा का प्रथम ग्रंथ माना है| इसकी रचना 1184 ई में शालिभद्र सूरि ने की थी| इस ग्रंथ में भरतेश्वर और बाहुबली का चरित वर्णन है| 'चंदनबालारास'- 35 छंदों का एक लघु खंडकाव्य है जिसकी रचना 1200 ई में आसगु कवि ने किया था| यह लघुकथा पर आधारित रचना है जिसमें करुण रस की गंभीर व्यंजना दिखाई देती है| 'स्थूलिभद्ररास'- 1209 ईसवी में लिखी एक ऐसी रचना है जिस पर अपभ्रंश का प्रभाव दिखाई देता है| 'रेवंतगिरिरास'- विजयसेन सूरि द्वारा लिखित है| इस काव्य में प्रकृति के रमणीक चित्र हैं| इसमें तीर्थंकर नेमिनाथ तथा रेवंतगिरि का वर्णन है| 'नेमिनाथरास'- इसकी रचना सुमति गणि ने 1213 ई में की थी| इसमें 58 छंद हैं| इसमें कवि ने नेमिनाथ का चरित्र सरस शैली में वर्णित किया है| रचना की भाषाअपभ्रंश से प्रभावित राजस्थानी हिंदी है|

नाथ साहित्य- सिद्धों की वाममार्गी भोग प्रधान योग साधना की प्रतिक्रिया के रूप में आदिकाल में नाथपंथियों की हठयोग साधना प्रारंभ हुई| राहुल जी ने नाथ पंथ को सिद्धों की परंपरा का विकसित रूप माना है| इसको चलाने वाले मछंदर नाथ तथा गोरखनाथ माने गए हैं| डॉ रामकुमार वर्मा ने नाथपंथ के चरमोत्कर्ष का समय 12 वीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी के अंत तक माना है| उनका मत है कि नाथपंथ से ही भक्तिकाल के संतमत का विकास हुआ, जिसके प्रथम कवि कबीर थे| आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार- 'नाथ संप्रदाय के सिद्धमत, सिद्धमार्ग, योग मार्ग, योग संप्रदाय, अवधूत मत, अवधूत संप्रदाय नाम भी प्रसिद्ध हैं'| नाथ साहित्य को इस प्रकार देखा जा सकता है- गोरखनाथ- नाथ साहित्य के आरंभकर्ता माने जाते हैं| इन्होंने ईसा की 13वीं शती के आरंभ में अपना साहित्य लिखा था| इनके ग्रंथों की संख्या 40 मानी जाती है किंतु डॉ. बड़थ्वाल ने इनकी केवल 14 रचनाएं मानी हैं| गोरखनाथ से पहले अनेक संप्रदाय थे जिन सबका उनके नाथ पंथ में विलय हो गया था| इन्होंने अपनी रचनाओं में गुरु महिमा, इंद्रिय निग्रह, प्राण साधना, वैराग्य, मन साधना, कुंडलिनी जागरण, शून्य समाधि आदि का वर्णन किया है| इन विषयों में नीति और साधना की व्यापकता मिलती है| गोरखनाथ ने हठयोग का उपदेश दिया था| अन्य कवियों में चौरंगीनाथ, गोपीचंद, भरथरी, चुड़करनाथ आदि प्रसिद्ध हैं|

1.7.2 चारण काव्य: रासो साहित्य

आदिकाल के हिंदी साहित्य में वीर गाथाएं प्रमुख हैं| वीर गाथाओं के रूप में ही रासो ग्रंथों की रचनाएं हुई हैं| हिंदी साहित्य में रास या रासक का अर्थ लास्य से लिया गया हैजो नृत्य का एक भेद है, इसी अर्थ भेद के आधार पर गीत- नृत्य- परक रचनाएं रास नाम से जानी जाती हैं| रासो काव्य परंपरा हिंदी साहित्य की एक विशिष्ट काव्यधारा रही है| यह वीरगाथा काल में उत्पन्न हो कर मध्य युग तक चली आई| पृथ्वीराज रासो से प्रारंभ होने वाली यह काव्य विधा देशी राज्यों में भी मिलती है| तत्कालीन कविगण अपने आश्रय दाताओं को युद्ध की प्रेरणा देने के लिए उनके बल पौरुष का अतिरंजित वर्णन इन रासो काव्यों में करते रहे हैं| रासो काव्य परंपरा में प्रथम ग्रंथ 'पृथ्वीराज रासो' माना जाता है| रासो परंपरा दो रूपों में मिलती है-प्रबंध काव्य और वीर काव्य| प्रबंध काव्य में 'पृथ्वीराज रासो' तथा वीर गीत के रूप में 'बीसलदेव रासो' जैसी रचनाएं आती हैं| इस काल के प्रसिद्ध ग्रंथों में 'खुमाणरासो', 'बीसलदेव रासो', 'हम्मीर रासो', 'परमाल रासो', 'पृथ्वीराज रासो' आदि हैं|| 'खुमाणरासो' नवीं शती में दलपत विजय द्वारा लिखा गया जिसमें चित्तौड़ नरेश खुमाण के युद्धों का चित्रण है| नरपति नाल्ह ने 1155 ईस्वी में 'बीसलदेव रासो' की रचना की| यह एक गेय काव्य है| इसमें राजा भोज परमार की पुत्री राजमती और अजमेर के चौहान राजा बीसलदेव की कथा है| इसमें मेघदूत और संदेश रासक की संदेश परंपरा भी मिलती है| इसमें विरह की विभिन्न दशाओं का वर्णन है| उत्तर प्रदेश में 'आल्हाखंड' के नाम से जो काव्य प्रचलित है वही परमाल रासो के मूल रूप का विकसित रूप माना जाता है| यह लोकगेय काव्य है| इस काव्य के रचयिता जगनिक कवि माने जाते हैं जो महोबा के राजा के आश्रय में थे| इस रचना में वीर भावना का पूर्ण रूप मिलता है| छंद विधान की दृष्टि से इस काव्य मैं एक विशेष प्रकार की शैली दिखाई देती है जिसे आहार शैली कहना उचित है| चंदबरदाई के द्वारा लिखा गया 'पृथ्वीराज रासो', रासो परंपरा का महत्वपूर्ण ग्रंथ माना जाता है| यह हिंदी का पहला महाकाव्य है| इसमें दिल्ली के नरेश पृथ्वीराज चौहान के जन्म से लेकर मृत्यु पर्यंत तक की कथा को गेय शैली में गाया गया है| इसके चार संस्करण उपलब्ध हैं| इस महाकाव्य में 69 समय अर्थात खंड हैं और 16306 छंद हैं| इस ग्रंथ में अनेक घटनाएं हैं तथा इसमें दो रस प्रमुख रूप से दिखाई देते हैं- श्रंगार रस और वीर रस| इस ग्रंथ में वस्तु वर्णन का आधिक्य है| कवि ने समय और क्रिया को एक साथ बिंबों में बांधकर रंग और ध्वनियों को रूपायित किया है|

1.7.3 लौकिक साहित्य

नाथों, सिद्धों एवं जैन कवियों के धार्मिक साहित्य से अलग अपभ्रंश साहित्य में एक धारा लौकिक साहित्य की भी है| इस धारा के कवियों में अब्दुर्रहमान और विद्यापति प्रमुख हैं तो वहीं अमीर खुसरो ने पहेलियों, मुकरियों तथा दो सखुनों की रचना की है जिनमें कौतूहल तथा विनोद की सृष्टि हुई है| ख़ुसरो को हिंदी का प्रथम कवि माना जाता है| यह हिंदू मुस्लिम समन्वित संस्कृति के प्रतिनिधि कवि के रूप में जाने जाते हैं| खुसरो की हिंदी रचनाओं का प्रथम संकलन 'जवाहरे खुशरवि'नाम से सन 1918 ईस्वी में अलीगढ़ से मौलाना रशीद अहमद सलाम ने प्रकाशित करवाया था| खुसरो अपनी पहेलियों के कारण अधिक प्रसिद्ध हुए| लौकिक धारा के प्रमुख कवि और रचनाएं इस प्रकार हैं- 'संदेश रासक'- अब्दुर्रहमान,'कीर्तिलता', 'कीर्तिपताका'- विद्यापति द्वारा रचित हैं| 'पदावली' मैथिली भाषा में लिखी गई है| इनको अभिनव जयदेव भी कहा जाता है| यह शैव मत के अनुयाई माने जाते हैं| 'कीर्तिलता' में राजा कीर्ति सिंह की वीरता का बखान किया है| हिंदी में कृष्ण को काव्य का विषय बनाने का श्रेय विद्यापति को दिया जाता है| आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने विद्यापति को शुद्ध श्रृंगारी कवि माना है| 'ढोला मारू रा दूहा'-कल्लोल कवि द्वारा रची गई और बाद में जैन कवि कुशल लाभ द्वारा 1561 में डिंगल भाषा में रची गई| यह लोक प्रसिद्ध प्रेमगाथा आदिकालीन श्रंगार काव्य परंपरा की

एक महत्वपूर्ण कड़ी है| इस रचना का मूल रूप दोहों में मिलता है| यह दोहे श्रंगार रस की जो परंपरा आरंभ करते हैं वह आगे चलकर बिहारी के काव्य में प्रतिफलित हुई है| जयचंद- प्रकाश और जयमयंक- जसचंद्रिका - इन प्रतियों का ‘ राठौड़ री ख्यात’ में उल्लेख मिलता है किंतु यह अभी तक उपलब्ध नहीं है| शुक्ल जी के अनुसार यह एक महाकाव्य था जिसमें महाराज जयचंद के प्रताप और पराक्रम का वर्णन था| इसी प्रकार की दूसरी कृति जयमयंक- जसचंद्रिका की रचना मधुकर कवि ने 1186 ई में की थी | ‘वसंत विलास’ एक साहित्यिक कृति है जिसे डॉक्टर माता प्रसाद गुप्त आदिकाल के इतिहास में एक बेजोड़ कृति मानते हैं|

1.8 आदिकाल का गद्य साहित्य

आदिकाल में काव्य रचना के साथ-साथ गद्य रचना की दिशा में भी कुछ स्फुट प्रयास लक्षित होते हैं| ‘राउलवेल’ का रचनाकाल10 वीं शताब्दी माना जाता है| यह गद्य- पद्य मिश्रित चंपू काव्य की प्राचीनतम हिंदी कृति है| इसकी रचना राउल नायिका के नख-शिख वर्णन के प्रसंग में हुई है| इस कृति के रचयिता रोड़ा नामक कवि माने जाते हैं| इसी रचना से हिंदी में नख शिख वर्णन की श्रंगार परंपरा आरंभ होती है| कवि ने विषय वर्णन बड़ी तन्मयता से किया है| गद्य में भी अलंकारिक भाषा का कितनी सफलता से प्रयोग किया जा सकता है, यह रचना इसका जीता जागता उदाहरण है| ‘ उक्ति- व्यक्ति- प्रकरण’ नामक रचना दामोदर शर्मा ने 12 वीं शताब्दी में की थी| यह एक महत्वपूर्ण व्याकरण ग्रंथ है| इससे बनारस और आसपास के प्रदेशों की संस्कृति और भाषा आदि पर अच्छा प्रकाश पड़ता है| इससे गद्य और पद्य दोनों शैलियों की हिंदी भाषा में तत्सम शब्दावली के प्रयोग की बढ़ती हुई प्रवृत्ति का पता चलता है| डॉ सुनीत कुमार चटर्जी और पंडित बबुआ मिश्र के संपादन में ‘वर्णरत्नाकर’ नामक गद्य पुस्तक आई ,इसकी रचना चौदहवीं शताब्दी में हुई ऐसा डॉ हजारी प्रसाद द्विवेदी का मानना है| इस रचना के लेखक ज्योतिरीश्वर ठाकुर नामक मैथिल कवि थे| इनकी भाषा में कवित्व, अलंकारिकता तथा शब्दों की तत्समता की प्रवृतियां मिलती हैं|

1.9 आदिकालीन साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियां

आदिकाल के साहित्य की विशेषताएं इस प्रकार देखी जा सकती हैं- **आश्रयदाताओं की प्रशंसा, ऐतिहासिकता का अभाव, अप्रामाणिक रचनाएं, युद्धों का सजीव चित्रण, संकुचित राष्ट्रीयता, वीर तथा श्रंगार रस, जनजीवन के चित्रण का अभाव, काव्य के दो रूप, विविध छंदों का प्रयोग, डिंगल भाषा का प्रयोग, रासो शैली की प्रधानता, प्रकृति चित्रण आदि|**

इस काल के कवियों ने अपने-अपने आश्रयदाताओं की बढ़ा चढ़ाकर प्रशंसा की है|

इन रचनाओं में इतिहास प्रसिद्ध चरित्र नायकों को लिया गया है किंतु उनका वर्णन ऐतिहासिक नहीं है और ना ही इनके कार्य कलाप की तिथियां इतिहास से मेल खाती हैं| इनमें इतिहास की अपेक्षा कल्पना की प्रधानता है|

इस काल की रचनाओं की प्रामाणिकता संदिग्ध है| भाषा शैली और विषय वस्तु की दृष्टि से कई रचनाओं में व्यापक परिवर्तन मिलता है|

इन ग्रंथों का मुख्य विषय युद्ध और वीरता का वर्णन है| यह युद्ध वर्णन अत्यंत सजीव है क्योंकि वह कवि राजाओं के साथ युद्ध भूमि में एक सैनिक की तरह भाग लेने वाले होते थे|

इस काल की रचनाओं में राष्ट्रीयता का पूर्ण अभाव दिखाई देता है| इस काल के कवियों के आश्रयदाता ही उनके एकमात्र राष्ट्र थे| राजाओं का आपसी संघर्ष ही राष्ट्रीयता के अभाव का प्रतीक है|

इन वीर गाथाओं मैं वीर तथा श्रंगार रस का अच्छा समन्वय दिखाई पड़ता है| कहते हैं जर- जरा और जोरू के लिए युद्ध हुआ करते थे|

इन चारण कवियों ने राजाओं की झूठी प्रशंसा में जन-जीवन के चित्रण को भुला दिया है|

इस काल में मुक्त तथा प्रबंध दोनों प्रकार की रचनाएं मिलती हैं| लोक साहित्य गीति शैली में लिखे गए हैं|

छंदोंकी विविधता के लिए यह काल सर्वोपरि माना जाता है| दोहा, रोला, तोटक, गाथा, तोमर आदि कुछ प्रसिद्ध छंद हैं|

इस काल के ग्रंथों में डिंगल भाषा का प्रयोग है| कुछ लोग इसे अपभ्रंश भाषा भी कहते हैं| जैन साहित्य पश्चिमी अपभ्रंश, सिद्ध साहित्य पूर्वी अपभ्रंश में लिखा गया है| वीर काव्य डिंगल पिंगल में लिखे गए हैं और लौकिक काव्य पिंगल तथा खड़ी बोली की ओर उन्मुख हैं| आदिकाल में जितने भी काव्य मिलते हैं उनमें से बहुत से काव्य रासक शैली में लिखे दिखाई देते हैं|

प्रकृति के आलंबन और उद्दीपन दोनों रूपों का चित्रण इस काल के ग्रंथों में दिखाई देता है|

1.10 आदिकालीन साहित्य की भाषा

हिंदी भाषा का विकास भले ही आदिकाल से ना हुआ हो परंतु उसका विकास आरंभिक काल में ही प्रारंभ हो गया था| डिंगल भाषा में भले ही अपभ्रंश की झलक मिलती है मगर मैथिली में विद्यापति ने जो रस बरसाए वह स्मरणीय है| इन ग्रंथों में डिंगल और पिंगल मिश्रित राजस्थानी भाषा का प्रयोग हुआ है| मैथिली, ब्रज और खड़ी बोली में केवल मुक्तक काव्य ही दिखाई देते हैं किंतु डिंगल के छोटे बड़े अनेक प्रबंध काव्य की रचना होते देखा जा सकता है, जैसे पृथ्वीराज रासो, परमाल रासो आदि| आदिकाल में हिंदी भाषा साहित्यक अपभ्रंश के साथ साथ चलती हुई क्रमशः जन भाषा के रूप में साहित्य रचना का माध्यम बन रही थी| समस्त आदिकाल में दो भाषाओं की यह समानांतर रचना प्रक्रिया चलती रहने से अधिकांश विद्वान गंभीरतापूर्वक विचार करके दोनों भाषाओं के साहित्य को अलग- अलग करने का अवसर नहीं पा सके| आदिकालीन साहित्य की भाषा एक ओर रूप भेद होने पर भी अभेध है और दूसरी ओर संप्रेषण क्षमता में भी वह बेजोड़ है| कोई भी अलंकार ऐसा नहीं है जो उसमें ना फबता हो, कोई भी ऐसा छन्द नहीं है जो उसका साथ ना देता हो| आदिकालीन कवियों का हिंदी भाषा की रूपात्मक एकता का प्रयास, जो पंद्रहवीं शताब्दी तक पहुंचते-पहुंचते पूर्ण सफल हो चुका था, इतिहास से मिटाया नहीं जा सकता| आदिकाल तक आते-आते अपभ्रंश भाषा नहीं रह गई थी परंतु काव्य में उसका प्रयोग जारी था| इस दौर की अपभ्रंश में कई तरह के प्रयोग नजर आते हैं| बीसलदेव रासो में जहां राजस्थानी के विशेष प्रयोग दिखाई देते हैं वहीं पृथ्वीराज रासो में ब्रज भाषा और खड़ी बोली के प्रयोग सहज ही ध्यान आकर्षित करते हैं| इसी तरह आल्हा खंड में पूर्वी बोलियों की छाप स्पष्ट दिखाई देती है, यद्यपि भाट शैली की रचनाएं होने के कारण आज इनमें से कोई भी अपने मूल रूप में उपलब्ध नहीं है| वीरगाथा काल की इन रचनाओं में सामान्य भाषा के प्रयोग इस कदर मिले-जुले हैं कि विद्वानों ने इसे अपभ्रंश काव्य के स्थान पर देश भाषा काव्य भी कहा है| अमीर खुसरो ने आगे चलकर हिंदी और ब्रज भाषा में रचनाएं की हैं| इसे देखकर साहित्य और समाज में भाषा प्रयोग में अंतर बहुत हद तक स्पष्ट हो जाता है| इसी प्रकार विद्यापति ने भी अपभ्रंश के साथ-साथ अपने क्षेत्र की जन सामान्य भाषा मैथिली में गीत लिखे हैं जिसने उनके साहित्य को इतिहास में अमर कर दिया|

अपनी प्रगति जाँचिये(बोध प्रश्न)

1. हिंदी का प्रथम कवि किसे माना जाता है?
2. कलम का सिपाही किसे कहा जाता है?
3. हिंदी का प्रथम पत्र कौन सा है?

4 देश का पहला राष्ट्रीय हिंदी संग्रहालय कहां स्थापित किया जा रहा है?

5 हिंदी साहित्य के इतिहास को कितने काल खंडों में विभाजित किया गया है?

6 हिंदी दिवस किस तिथि को मनाया जाता है?

7 महादेवी वर्मा को किस रचना के लिए ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला?

8 हिंदी भाषा का प्रथम महाकाव्य किसे कहा जाता है?

9 हिंदी साहित्य का इतिहास के सर्वप्रथम लेखक का नाम क्या है?

10 चारण काव्य का अन्य नाम क्या है?

11 आदिकाल को अन्य किस नाम से जाना जाता है?

12 भाषा के संबंध में 'हिंदी' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम किसने किय|

1.11 सारांश

हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की एक सुदीर्घ की परंपरा है| विद्वानों की सहमति है कि इस परंपरा का टर्निंग प्वाइंट आचार्य शुक्ल का साहित्य इतिहास लेखन में आना है| इतिहास लेखन की परंपरा को दो भागों में बांटा गया है- अनौपचारिक तथा औपचारिक| अनौपचारिक लेखन की शुरुआत 19वीं शताब्दी में हुई जिसमें भक्तमाल, कवि माला, कालिदास हजारा आदि ग्रंथ शामिल हैं| औपचारिक इतिहास लेखन 1839 ईस्वी में शुरू हुआ| आचार्य द्विवेदी के बाद कई विद्वानों ने साहित्य इतिहास लेखन में गंभीर प्रयास किया है| ऐसे विद्वानों तथा उनके ग्रंथों की जानकारी इस प्रकार दी जा सकती है- डॉ रामकुमार वर्मा कृत 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास', गणपति चंद्रगुप्त का 'हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास', डॉ रामविलास शर्मा का 'साहित्येतिहास लेखन', नगेंद्र द्वारा संपादित 'हिंदी साहित्य का इतिहास', डॉ बच्चन सिंह कृत 'हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास', रामविलास शर्मा का 'साहित्येतिहास'| डॉ विश्वनाथ त्रिपाठी का 'हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास', नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा संपादित 'हिंदी साहित्य का वृहत इतिहास' आदि| साहित्येतिहास दो शब्दों के युग्म से बना है साहित्य और इतिहास -साहित्य का इतिहास ही साहित्येतिहास कहलाता है| इसमें साहित्य की विकसित परंपरा का उद्भव से लेकर आज तक की स्थिति का क्रमबद्ध अध्ययन-विश्लेषण किया जाता है| इसका उद्देश्य ऐतिहासिक परिपेक्ष में साहित्य को वस्तु, कला पक्ष, भाव पक्ष, चेतना तथा लक्ष्य की दृष्टि से स्पष्ट करना है| साहित्य का बहुविध विकास, साहित्य में अभिव्यक्त मानव जीवन की जटिलता, ऐतिहासिक तथ्यों की खोज और उनके सम्यक अनुशीलन के लिए साहित्य के इतिहास की आवश्यकता होती है| साहित्य की विभिन्न रचनाएं, रचनाकार, साहित्य सर्जन के प्रेरक तत्व, युग चेतना, युगीन परिवेश, युगीन प्रवृत्तियों से परिचित कराने का काम का साहित्येतिहास करता है| रचना और रचनाकार की रचनात्मक क्षमता को वर्तमान की कसौटी पर कसना साहित्येतिहास का प्रमुख उद्देश्य होता है| साहित्येतिहास लेखन का कार्य एक वैज्ञानिक शोध के समान है जिसके लिए सामग्री संकलन, काल विभाजन एवं नामकरण तथा मूल्यांकन आदि प्रमुख चरणों का होना आवश्यक माना गया है| हिंदी साहित्येतिहास लेखन परंपरा में इतिहास दर्शन का विकास आचार्य शुक्ल के बाद से कई विभिन्न दिशाओं में हुआ| समाज और स्थितियों के परिवर्तन के साथ इतिहास बोध का बदलना पूर्णतः स्वाभाविक है और यह दावा कभी नहीं किया जा सकता है कि कोई एक इतिहास दर्शन अपने आप में संपूर्ण है| यह एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है और संतोष की बात यह है कि हिंदी साहित्येतिहास लेखन परंपरा में यह प्रक्रिया अत्यंत बेहतरीन तरीके से संपन्न हुई है और हो रही है| हिंदी साहित्य के समानांतर संस्कृत

और अपभ्रंश साहित्य की भी रचना आदिकाल में हो रही थी| इनमें से संस्कृत साहित्य का सामान्य जनता तथा हिंदी कवियों पर उतना प्रत्यक्ष
प्रभाव नहीं पड़ रहा था किंतु अपभ्रंश साहित्य भाषा की निकटता के कारण हिंदी साहित्य के लिए निरंतर साथ चलने वाली पृष्ठभूमि का काम कर रहा था| आदिकाल में हिंदी साहित्य की जो सामग्री मिलती है उसके दो रूप दिखाई देते हैं- पहले में वे रचनाएं आती हैं जिनकी भाषा तो हिंदी है परंतु वह अपभ्रंश के प्रभाव से पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाईं और दूसरी प्रकार की वे रचनाएं हैं जिनको अपभ्रंश के प्रभाव से मुक्त हिंदी की रचनाएं कहा जा सकता है| हिंदी साहित्य के इतिहास का काल जिसको हम आदिकाल के नाम से जानते हैं भाषा और साहित्य की दृष्टि से पर्याप्त संपन्न है| आदिकालीन कवियों का हिंदी भाषा की रूपात्मक एकता का प्रयास, जो पंद्रहवीं शताब्दी तक पहुंचते-पहुंचते पूर्ण सफल हो चुका था, इतिहास से मिटाया नहीं जा सकता| आदिकालीन साहित्य में विषय की विविधता के साथ प्रयोग की विविधता भी रही है| आदिकालीन रासो काव्यों में वीर रस की व्यंजना के लिए छप्पय, तोटक, नाराच का प्रयोग किया गया है| छंद के अतिरिक्त कथा कहने के ढंग की कुछ शिल्प पद्धतियां इस काल में प्रचलित रहीं|इनमें कथानक रूढ़ियों का महत्व है| रासो ग्रंथों में इस प्रकार की रूढ़ियों का विशेष प्रयोग मिलता है| आदिकाल में हिंदी भाषा जनजीवन से रस लेकर आगे बढ़ी | आदि काल को हिंदी साहित्य का समृद्ध युग माना जा सकता है|

1.12 मुख्य शब्दावली

शब्दबद्ध करना- शब्दों में बांधना, वर्णानुक्रम- वर्ण के क्रमानुसार, कालानुक्रम- समय के क्रमानुसार, प्रवृत्ति- विशेषता, वीरगाथा काल- इस समय वीरता से भरी रचनाएं लिखी गई, ज्ञान मार्गी- ईश्वर प्राप्ति के लिए ज्ञान का मार्ग दिखाने वाला, प्रेम मार्गी- ईश्वर प्राप्ति के लिए प्रेम का मार्ग दिखाने वाला. आश्रय दाता- शरण देने वाला, परिष्कार- शुद्ध, चरम उत्कर्ष काल- चरम उन्नति का समय, विभाजित करना- बांटना, आविर्भाव- जन्म, दोहा- एक प्रकार का छंद जिसमें कविता दो पंक्तियों की होती है, उत्पत्ति- उत्पन्न होना, विभाजन- बांटना, विस्तृत- विस्तार से, व्युत्पत्ति- बनावट, समानांतर- साथ साथ, कर्कश- कठोर, क्षीण- कमजोर, अभिहित -संबोधन, युग्म- जोड़, पाट देना- भर देना, चंपू- गद्य-पद्य मिश्रित रचना, दृष्टिगोचर होना- दिखाई देना, अधुनातन- अत्याधुनिक, शिलांकित- पत्थर पर अंकित, साहित्येतिहास- साहित्य का इतिहास,पद्धतियां- तरीके/विधियां, लौकिक साहित्य- लोक पर आधारित साहित्य, विविध- अलग-अलग

1.13 अपनी प्रगति जाँचिये(बोध प्रश्नों) के उत्तर

1 हिंदी का प्रथम कवि सिद्ध सरहपा(नवी शताब्दी) को माना जाता है|
2 कलम का सिपाही मुंशी प्रेमचंद को कहा जाता है|
3 हिंदी का प्रथम पत्र उदंत मार्तंड है|
4 देश का पहला राष्ट्रीय हिंदी संग्रहालय आगरा में स्थापित किया जा रहा है|
5 हिंदी साहित्य के इतिहास को 4 काल खंडों में विभाजित किया गया है आदिकाल, भक्ति काल, रीतिकाल और आधुनिक काल|
6 हिंदी दिवस 14 सितंबर को मनाया जाता है|

7 महादेवी वर्मा को यामा के लिए ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला|

8 हिंदी भाषा का प्रथम महाकाव्य चंदबरदाई की रचना पृथ्वीराज रासो को कहा जाता है|

9 हिंदी साहित्य के इतिहास के सर्वप्रथम लेखक का नाम गार्सा द तासी है|

10 चारण काव्य रासो साहित्य के नाम से भी जाना जाता है|

11 आदिकाल को वीरगाथा काल के नाम से जाना जाता है|

12 भाषा के संबंध में 'हिंदी' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम अमीर खुसरो ने किया|

1.14 अभ्यास हेतु प्रश्न

1- इतिहास लेखन की पद्धतियों का परिचय दीजिए|

2- साहित्य के इतिहास लेखन के विविध पक्षों का उल्लेख कीजिए|

3- हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा की चर्चा कीजिए|

4- हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की पद्धतियों पर चर्चा कीजिए|

5- आदिकाल के गद्य साहित्य पर अपने विचार प्रकट कीजिए|

6- रासो परंपरा का उल्लेख कीजिए |

7 आदिकालीन साहित्य की सामान्य प्रक्रिया क्या है?

1.15 आप ये भी पढ़ सकते हैं :पठनीय पुस्तकें एवं वेबसाइट

1 हिंदी साहित्य का इतिहास भाषा, संस्कृति और चिंतन- डॉक्टर सुशील त्रिवेदी, बाबूलाल शुक्ल, मध्य प्रदेश उच्च शिक्षा अनुदान आयोग, भोपाल

2 हिंदी साहित्य: युग और प्रवृतियां -शिवकुमार शर्मा, दादा प्रकाशन

3 हिंदी साहित्य उद्भव और विकास- हजारी प्रसाद द्विवेदी- राजकमल प्रकाशन

4 हिंदी साहित्य का इतिहास- रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा

5 हिंदी साहित्य का इतिहास- संपादक: डॉ नगेंद्र, सह-संपादक: डॉ सुरेशचंद्र गुप्त,नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली

6 हिंदी साहित्य का समग्र इतिहास- मंजु चतुर्वेदी, हिमांशु पब्लिकेशंस, उदयपुर

7 हिंदी साहित्य का आधा इतिहास- सुमन राजे, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली

8 हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास- रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

9 हिंदी साहित्येतिहास: पाश्चात्य स्रोतों का अध्ययन- हरमहेंद्र सिंह बेदी, प्रतिभा प्रकाशन, होशियारपुर

10 साहित्य शब्द योजना https://www.sahapedia.org

इकाई : 2 मध्यकालीन हिंदी साहित्य :

2.0 रीतिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि

मध्यकाल अर्थात भक्तिकाल के उत्तरार्ध में सन 1700 ईस्वी के आसपास हिंदी कविता में एक नया मोड़ आया| वास्तव में हिंदी में रीति या काव्य रीति शब्द का प्रयोग काव्यशास्त्र के लिए किया गया था,इसलिए काव्यशास्त्रबद्ध सामान्य सृजन प्रवृत्ति और रस, अलंकार आदि के निरूपक बहुसंख्यक लक्षण ग्रंथों को ध्यान में रखते हुए इस समय के काव्य को रीति काव्य कहा गया| इस काल में ऐसे कवि हुए जो आचार्य भी थे और जिन्होंने विविध काव्यागों के लक्षण देने वाले ग्रंथ भी लिखे| इस युग में श्रंगार की प्रधानता रही| यह युग मुक्तक रचना का युग रहा; मुख्यतया कवित्त,सवैये और दोहे इस युग में लिखे गए| राजाओं के आश्रय में रहकर कवि काव्य सृजन किया करते थे इसलिए इस युग की कविता अधिकतर दरबारी रही|रीति काव्य रचना का आरंभ आचार्य केशवदास से माना जाता है|भाषा सदैव मानव की संवेदनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम है| प्रस्तुत इकाई में रीतिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि देते हुए उसके अभिप्राय, नामकरण और सीमांकन की चर्चा की गई है|रीतिकालीन साहित्य की विभिन्न धाराएं लेते हुए उन का सामान्य परिचय देकर रचनाएं, रचनाकार एवं प्रमुख प्रवृत्तियों का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया है| इस बात की ओर भी संकेत किया गया है कि रीतिकाल में क्या गद्य साहित्य भी लिखा गया; इसके साथ ही रीतिकालीन काव्य भाषा की चर्चा की गई है|

2.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के पश्चात आप--

. रीतिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि को समझ सकेंगे|

. आप यह जान पाएंगे कि रीतिकाल को श्रृंगार काल क्यों कहा गया तथा इसकी सीमाओं को जान सकेंगे|

. रीतिबद्ध, रीतिमुक्त, रीतिसिद्ध काव्य धाराओं के बारे में समझ सकेंगे|

.रीतिकालीन गद्य साहित्य के बारे में जाना जा सकता है|

. रीतिकालीन काव्य भाषा के बारे में जान और समझ सकेंगे|

.प्रमुख रीति कवियों के काव्य से परिचय पाकर उनसे संबंधित रचनाओं की व्याख्या कर सकेंगे|

.रीति काव्य और काव्यशास्त्रीय विभिन्न मानदंडों की आलोचनात्मक व्याख्या कर सकेंगे|

2.2 रीतिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि: राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक

यह आवश्यक नहीं है कि आरंभ में हम जो भी व्यक्त करना चाहें उसमें हमें सफलता मिले लेकिन तब भी किसी को निराश होने की आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि यदि हम प्रयत्न करते रहें, अभ्यास जारी रखें तो यह सारी कठिनाइयां दूर हो जाती हैं|वास्तव में कविता एक कला है|जीभ एक अत्यंत शक्तिशाली अस्त्र है| इसे दूसरों के अनुकूल बनाने या लाभ पहुँचाने के लिए अनिवार्य रूप से प्रयुक्त करना होता है| ग्रंथियों का निराकरण इसके बिना नहीं हो सकता| सुझाव देने और कुछ नए कदम उठाने के लिए उत्साह भरने में वार्तालाप की शैली प्रयुक्त हो तो काम चलेगा अन्यथा अभ्यस्त चिंतन को और आदत को बदलने के लिए किसी को सहमत कर सकना सरल नहीं| रीतिकालीन काव्य वार्तालाप शैली पर स्थित उत्साह भरने का काव्य है| युगीन वातावरण राजनीति, संस्कृति, साहित्य, समाज और कला के मूल्यों द्वारा निर्मित होता है| भाषा साहित्य के निर्माण में युगीन वातावरण का विशेष योग हुआ करता है| रीतिकालीन साहित्य के अध्ययन के प्रसंग में यह अनिवार्यता और अधिक बढ़ जाती है कि तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अवस्था का ज्ञान अपने आप में अनिवार्य हो| हम यह देख सकते हैं कि साहित्य के निर्माण की एक लंबी अवधि में अनेक उतार-चढ़ाव आए|

यदि **रीतिकालीन साहित्य की राजनीतिक पृष्ठभूमि** पर नजर डालें तो यह स्पष्ट दिखाई देता है कि यह काल मुगलों के शासन के वैभव के चरमोत्कर्ष और उसके पश्चात उत्तरोत्तर ह्रास और विनाश का युग कहा जा सकता है| जहांगीर के शासनकाल में राज्य का विस्तार हुआ और शाहजहां के शासनकाल में उसकी इतनी वृद्धि हुई कि उत्तर भारत के अतिरिक्त दक्षिण में बीजापुर, गोलकुंडा जैसे राज्यों तथा उत्तर पश्चिम में सिंध के लहरी बंदरगाह से लेकर आसाम में सिलहट और अफगान प्रदेश के बिस्त के किले से लेकर दक्षिण के औसा तक एक छत्र साम्राज्य की स्थापना हो गई थी| राजपूतों ने भी विश्वासपात्र एवं स्वामिभक्त सेवक होकर दिल्ली के शासन की अधीनता स्वीकार कर ली थी| देश में सामान्य रूप से शांति थी| राजकोष भरे पूरे थे| ताजमहल और मयूर सिंहासन का भी निर्माण हो चुका था किंतु इसके पश्चात शाहजहां के रुग्ण होने और उनकी मृत्यु की अफवाह फैलने के कारण 1658 ईस्वी में उनके पुत्रों में सत्ता के लिए संघर्ष आरंभ हो गया और यह वैभवशाली साम्राज्य ह्रासोन्मुख हो गया| जैसे ही अपने भाई दारा शिकोह की हत्या कर औरंगजेब ने शासन की बागडोर संभाली वैसे ही जागीरदारों, राजाओं और हिंदुओं के धार्मिक उपद्रव आरंभ हो गए इसके परिणाम स्वरूप उसके शासनकाल का अधिकांश समय इन्हीं उपद्रवों के दमन में व्यतीत हो गया| वह बहुत ही अहमवादी था| उसके पुत्रों में किसी भी प्रकार की प्रतिभा विकसित ना हो सकी जिसके परिणामस्वरूप साम्राज्य एक सूत्र में ना बंध सका| औरंगजेब के पश्चात सन1707 ईस्वी में उसके पुत्रों के बीच संघर्ष हुआ और उसका द्वितीय पुत्र शाह आलम प्रथम गद्दी पर बैठा| वह अधिक समय तक जीवित ना रह सका और उसके बाद इस साम्राज्य का पतन आरंभ होता चला गया तथा करीब 50 वर्ष तक शासन एक प्रकार से स्थिर ना हो सका| धीरे-धीरे अव्यवस्था और अशांति इतनी बढ़ती गई कि छोटे-छोटे जागीरदार भी अपने आप को स्वतंत्र घोषित कर बैठे और धीरे-धीरे केंद्र की पकड़ इतनी ढीली हो गई कि साम्राज्य अब दिल्ली और आगरा के क्षेत्र तक ही सीमित रह गया| इसी बीच 1738 ईस्वी में नादिरशाह का आक्रमण हुआ और उसने इस शासन की नींव हिला डाली, जो थोड़ा कुछ शेष रह गया था उसे अहमद शाह अब्दाली के सन 1761 ईसवी के आक्रमण ने पूरा कर दिया| इधर विदेशी व्यापारियों और विशेषकर अंग्रेजों ने इस स्थिति का पूरा पूरा लाभ उठाया और

वह भीतर ही भीतर शक्ति का संचय करते हुए इस अवस्था तक पहुँच गए कि सन1803 ईसवी तक लगभग समस्त उत्तर भारत पर उनका अधिपत्य हो गया और मुगल साम्राज्य नाम मात्र को रह गया| वास्तविक सत्ता अंग्रेजों के हाथ में चली गई| सन अठारह सौ सत्तावन ईसवी की देशव्यापी राज्यक्रांति ने एक बार पुनः विलासी मुगलों को प्रतिष्ठित करना चाहा किंतु सब प्रयत्न सफल हो गए| इस प्रकार दो ढाई सौ वर्ष के विराट वैभवपूर्ण साम्राज्य का कारुणिक अंत हो गया| यह बात तो रही केंद्रीय शासन की दूसरी ओर जहाँ तक प्रदेशों का प्रश्न है रीत काव्य की रचना के क्षेत्रों अवध, राजस्थान और बुंदेलखंड की स्थिति भी ऐसी ही रही| इस प्रकार मुगल साम्राज्य के समान ही हिंदू रजवाड़ों और अवध के नवाबों को अंततः अपना कारुणिक अंत देखना पड़ा|

रीतिकालीन साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात करें तो यह स्पष्ट दिखाई देता है कि इस युग में देश की सांस्कृतिक अवस्था भी अत्यंत शोचनीय थी| मुगल सम्राटों की उदारतावादी नीति तथा संतो और सूफियों के उपदेशों के परिणामस्वरुप हिंदू और इस्लाम संस्कृतियों के निकट आने का जो उपक्रम हुआ था वह औरंगजेब की कट्टरता के कारण एक प्रकार से समाप्त हो चला था किंतु विलास वैभव के खुले प्रदर्शन के कारण अपनी-अपनी धार्मिक आस्थाओं का दृढ़ता पूर्वक पालन भी उनके लिए एक प्रकार से कठिन हो गया था| हिंदी भाषी क्षेत्रों में जिन वैष्णव संप्रदायों का प्रभाव था ,उनके पीठाधीश लोभवश राजाओं और श्रीमानों को गुरु दीक्षा देने लगे थे, परिणामस्वरूप उनका संबंध तत्व चिंतन से छूटकर भौतिकता के साथ होता चला गया| धीरे-धीरे मंदिरों में भी ऐश्वर्य और विलास की लीला होने लगी और स्थितियां यहां तक पहुँच गई कि हिंदू अपने आराध्य राम कृष्ण का अतिशय श्रंगार ही नहीं करने लगे अपितु उनकी लीलाओं में अपने विलासी जीवन की संगति खोजने लगे| हिंदीतर प्रांतों में अभी भी ऐसे संतों का प्रभाव था जो इस धारा से दूर थे किंतु इनका प्रभाव हिंदी प्रांतों तक नहीं पहुँच सका| हिंदू और मुसलमान दोनों ही धर्म के मूलभूत सिद्धांतों से दूर पड़ते जा रहे थे |केवल बाह्य आचरण ही धर्म पालन रह गया था| एक ओर धर्म के साथ नैतिकता का जो संबंध जुड़ा हुआ है उसी से संपन्न वर्ग एकदम दूर हो गया था और विलासिता के लिए उन्हें खुली छूट मिल गई थी तो दूसरी ओर विलास के साधनों से हीन वर्ग के बीच स्थिति ऐसी हो चली थी कि कर्म और आचार-विचार के स्थान पर अंधविश्वासों ने उनके भीतर डेरा डाल लिया था| अब हिंदू मंदिरों में जाते थे और मुसलमान पीरों के तकियों पर जाकर मनोरथ सिद्ध करने लगे थे| पुजारी और मुल्ला जनता के इन अंधविश्वासों का अनुचित लाभ उठाने लगे और धर्म स्थान भ्रष्टाचार तथा पापाचार के केंद्र बनते गए|जो बचे हुए सूफी या संत थे उनकी वाणी भी समाज को प्रभावित ना कर सकी और ना ही ये कोई क्रांतिकारी परिवर्तन लाने में समर्थ रहे|

रीतिकालीन साहित्यिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात किया जाए तो यह देखा जा सकता है कि सामाजिक दृष्टि से यह काल घोर अधःपतन का काल माना जा सकता है| यह सामंतवादी युग था, जो सामंतवाद के अपने सभी दोषों से युक्त था| निम्न वर्ग इनके लिए केवल ऐसी संपत्ति मात्र थे जो उनकी सेवा के लिए ही बने थे| सुरा और सुंदरी राजा और प्रजा के उपास्य के विषय हो चले थे| चिकित्सा, शिक्षा, धन संपत्ति की रक्षा का कोई प्रबंध नहीं था| धर्म स्थान पापाचार और भ्रष्टाचार के स्थल बन गए थे| हिंदू अपने आराध्य राम-कृष्ण का अतिशय श्रंगार ही नहीं करते थे बल्कि उनकी लीलाओं में अपने विलासी जीवन की संगति खोजने लगे थे| रूढ़िवादिता बढ़ गई थी| कर्म और आचार का स्थान अंधविश्वासों ने ले लिया था|साहित्य और कला की दृष्टि से यह युग काफी समृद्ध रहा| ललित कलाओं में स्थापत्य कला, चित्रकला, संगीत और साहित्य कला का पर्याप्त पोषण हुआ| साहित्य और कला की दृष्टि से इस युग को समृद्ध कहा जा सकता है| इसमें सबसे बड़ी कठिनाई यह दिखाई देती है कि कवि और कलाकार राजाओं के आश्रय में रहते थे और राजाओं की रुचि के अनुसार उनको

लिखना पड़ता था जिससे उनकी जीविका चलती थी और वह स्वतंत्रता पूर्वक सृजन नहीं कर पाते थे, यही कारण था कि श्रेष्ठ कलाकारों की कला डूब रही थी| चमत्कार प्रदर्शन, पांडित्य प्रदर्शन और दरबारों में वाहवाही लूटने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही थी, इस प्रवृत्ति के कारण जहां एक ओर कविता का विकास हुआ वहीं दूसरी ओर वह कविता आश्रयदाताओं के इशारे पर चलने को बाध्य हो गई|

2.3 रीतिकाल का अभिप्राय

रीतिकाल का अभिप्राय रीति से जुड़ा हुआ है|रीति का आधुनिक अर्थ शैली माना जाता है| रीति का अर्थ पंथ या प्रणाली से लिया जाता है|संस्कृत में इस शब्द का प्रयोग विशिष्ट अर्थ में किया गया है| संस्कृत साहित्य में आचार्य वामन ने रीति को काव्य की आत्मा माना है| जब परिस्थितियां बदलती हैं तो मानव की मनोदशा भी अपने आप परिवर्तित होने लगती है जिसके परिणामस्वरूप साहित्य भी उसी परिवर्तित सोच के अनुसार नई राह पकड़ लेता है| भक्ति के पश्चात विकसित श्रंगार भाव से पुष्ट साहित्य इसी नियम से सामने आया| इस साहित्य को पढ़कर स्पष्ट होता है कि इस काल के कवि सच्चे अर्थों में यौवन और जीवन के भौतिक पक्ष के कवि थे| अपने समय से प्रेरित और पुष्ट होकर रीति साहित्य पाण्डित्य प्रदर्शन और कवि कर्म साथ-साथ निभाता रहा| जहाँ एक ओर रीतिबद्ध कवियों ने शास्त्रीय परंपरा को आधार माना तो वहीं दूसरी ओर रीतिमुक्त कवियों ने सहज और हृदय से फूटी हुई कविता का सृजन किया|रीतिकाल समृद्धि और विलासिता का काल है| साधना के काल भक्ति युग से यह इसी बात में भिन्नता रखता है कि इसमें कोरी विलासिता ही उपास्य बन गई| सजीव श्रंगार की एक अदम्य लिप्सा इस युग के साहित्य में प्रतिबिंबित है|जिसे इतिहास में मध्यकाल कहा जाता है उसे हिंदी साहित्य में भक्तिकाल नाम से जाना जाता है| इस प्रकार उत्तर मध्यकाल को हिंदी साहित्य में रीति काल के नाम से अभिहित किया जाता है|

2.4 नामकरण और सीमांकन

हिंदी साहित्य का रीतिकाल दो सौ वर्ष की लंबी अवधि को अपने में समेटे हुए है| इन वर्षों में जो साहित्य लिखा गया उसमें जीवन के प्रति भौतिक दृष्टिकोण दृष्टिगोचर होता है| तत्कालीन साहित्य को पढ़कर यह स्पष्ट संकेत मिल जाता है कि इस काल के कवि सच्चे अर्थों में जीवन के भौतिक पक्षों और यौवन के कवि थे|अपने समय की परिस्थितियों से प्रेरित और पुष्ट होकर रीतिकालीन साहित्य पांडित्य प्रदर्शन और कवि कर्म दोनों साथ साथ निभाता रहा| जिसे हम रीतिकाल कहते हैं उस के संदर्भ में अनेक समस्याएं हमारे सामने आती हैं|इस काल के नामकरण और सीमा निर्धारण तथा प्रवर्तन को लेकर भी अनेक मत प्रचलित हैं| **आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस काल को रीतिकाल कहा है तो मिश्र बंधुओं ने इसे अलंकृत काल माना है| आचार्य विश्वनाथ प्रसाद ने इसे श्रंगार काल कहना उचित समझा तो डॉक्टर रसाल ने इसे कथाकाल कहा है|** इसी संदर्भ में आचार्य

हजारी प्रसाद द्विवेदी ने माना है कि- 'यहां साहित्य को गति देने में अलंकार शास्त्र का ही जोर रहा जिसे उस काल में रीति, कवित्त-रीति, सुकवि-रीति कहा जाता था संभवतः इन शब्दों से प्रेरणा पाकर शुक्ल जी ने इस श्रेणी की रचनाओं को रीति काव्य कहा है|'इस मत से यह स्पष्ट होता है कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसके नामकरण में बाह्यांग विधान को अपनी दृष्टि में रखा है| संस्कृत काव्यशास्त्र में रीति शब्द काव्यान्ग विशेष का सूचक रहा है| आचार्य वामन ने ' रीतिरात्मा काव्यस्य' कह कर रीति को स्पष्ट करने का प्रयास किया है| रीतिकाल के लिए श्रंगारकाल नाम उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि भले ही इस काल में कवियों की रुचि श्रंगारिकता की ओर अधिक रही हो तब भी ऐसे कितने ही कवि थे जो इस रस में रुचि नहीं रखते थे, फिर नीति, भक्ति और वीर भावना को आधार मानकर रचना करने वाले कवि भी इस काल में कम नहीं थे|इस काल को कला काल या अलंकार काल कहना भी उचित नहीं होगा क्योंकि इन में से किसी एक का नाम स्वीकार कर लेने से इस काल का भाव पक्ष पीछे छूट जाता है| यह माना जाता है कि इस काल के कवि कला शिल्प के कवि थे और पाण्डित्य के प्रदर्शन में पूरी रुचि रखते थे फिर भी इस काल को अलंकार काल कहना पूरी तरह से अनुपयुक्त है|रीतिकाल के नामकरण के संदर्भ में यह भी बात याद रखनी होगी कि हिंदी साहित्य के उत्तर मध्यकाल में बहुत से ऐसे कवि हुए हैं जिन्होंने रीति पंथ की अवहेलना करते हुए काव्य लिखे| ऐसी स्थिति में रीतिकाल नाम भी चिंतनीय हो जाता है| वास्तविकता यह है कि काव्य के बहिरंग विधान पर ध्यान देने के साथ-साथ इस काल के रसों में श्रंगार को प्रमुखता प्राप्त हुई| श्रंगार के अतिरिक्त भक्ति, नीति और वीर जैसे भावों से ओतप्रोत पर्याप्त रचनाएं मिल जाती हैं,ऐसी स्थिति में आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा दिया गया नाम रीतिकाल ही अधिक समीचीन प्रतीत होता है| इसके अतिरिक्त इसे उत्तर मध्य काल भी कहा जा सकता है क्योंकि हिंदी साहित्य के मध्य काल के पूर्वार्द्ध से इसका अंतर भी स्पष्ट हो जाता है| पूर्व मध्यकाल में जैसे भक्ति और नीति की प्रधानता रही वैसे ही उत्तर मध्यकाल में श्रंगार, वीर और नीति की प्रधानता रही|

भाषा साहित्य के ऐतिहासिक अध्ययन में कवियों की प्रवृत्ति का विवेचन करने के लिए जिस प्रकार वर्ण्य विषय के अनुसार रचनाओं का नामकरण अनिवार्य होता है उसी प्रकार उस प्रवृत्ति के प्रेरक तत्वों का विश्लेषण करने तथा तत्संबंधी रचनाओं के परिमाण को आंकने के लिए उसके प्रसार काल की सीमाएं निर्धारित कर लेना आवश्यक माना जाता है किंतु यह सीमा निर्धारण ऐतिहासिक घटनाओं के समान निश्चित नहीं हो सकता और ना ही किसी साहित्यिक प्रवृति के आरंभ की ही निश्चित अवधि बताई जा सकती है और ना समाप्ति का ही संकेत दिया जा सकता है|आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सं1700-1900वि तक की कालावधि को उत्तर मध्यकाल या रीतिकाल की संज्ञा दी है| इस काल की एक समस्या यह भी रही कि इसका सीमांकन कैसे किया जाए क्योंकि साहित्य के इतिहास में किसी भी काल विशेष की कोई निश्चित विभाजक रेखा खींचकर विशेष प्रकार की प्रवृत्तियों को अलग नहीं किया जा सकता| अनेक प्रवृतियां साहित्य में एक साथ चलती रही हैं इन्हीं में से कोई एक या दो प्रवृतियां किसी काल विशेष में तीव्र रूप धारण कर लेती हैं जब एक प्रवृत्ति प्रधान हो जाती है तब दूसरी स्वतः ही गौण हो जाती है| हिंदी साहित्य के भक्तिकाल में भक्ति भावना प्रमुख थी किंतु इसका अर्थ यह नहीं कि उस समय श्रंगार नहीं था, यदि ध्यान से देखा जाए तो भक्तिकाल में भी श्रंगारिकता दिखाई देती है| इसी प्रकार रीतिकाल में श्रंगार को विशेष महत्व दिया गया किंतु नीति और भक्ति परक रचनाएं भी लिखी गईं|रीतिकाल के प्रमुख प्रवर्तक के रूप में आचार्य केशव को माना जाता है किंतु कुछ लोग

आचार्य चिंतामणि को इसका प्रवर्तक मानते हैं| आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने श्रृंगार काल का मुख्य प्रवर्तक आचार्य चिंतामणि को माना है|

2.5 रीतिकालीन साहित्य की विभिन्न धाराएं: सामान्य परिचय, रचनाएं, रचनाकार एवं प्रमुख प्रवृत्तियाँ

करीब दो सौ वर्षों के लंबे अंतराल में उत्तर मध्यकाल अर्थात रीतिकाल में अनेकानेक कवियों ने काव्य सृजन किया| पहले रीतिकाल में रीतिबद्ध और रीतिमुक्त दो ही काव्य धाराएं निरूपित हुई किंतु बाद में रीतिबद्ध को दो भागों में बांटते हुए रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध काव्यधारा कहा गया| रीतिकालीन साहित्य की धाराओं को मूल रूप से 3 प्रकार से विभाजित किया जा सकता है| इन धाराओं की अपनी-अपनी विशेषता रही है जिनको अपनाकर कवियों ने काव्य का सृजन किया| इन प्रमुख धाराओं में **रीतिबद्ध काव्यधारा, रीतिसिद्ध काव्यधारा और रीतिमुक्त काव्यधारा** आती हैं|

2.5.1 रीतिबद्ध काव्यधारा

एक युग बीत जाता है तब दूसरे युग का प्रारंभ होता है| नवीन युग के आरंभ के साथ पुराना युग पूरी तरह से समाप्त नहीं हो जाता बल्कि उसकी ध्वनि बहुत बाद तक गूंजती रहती है| नए युग के परिवर्तित मूल्य सहसा कहीं से नहीं आ टपकते बल्कि अपने ठीक पहले के युग के ही लगभग अंतिम यात्रा वर्षों में वे अपने अस्तित्व का आंशिक समर्थन प्राप्त करते हैं और पूर्ण सशक्त होकर विशेष परिस्थितियों में प्राचीन मूल्यों को दबा देते हैं तब स्वतः भाव-स्वर-धारा फूट पड़ती है और हम किसी दीर्घकालीन एकरसता के अभिशाप से मुक्त हो जाया करते हैं|

रीतिबद्ध और रीतिमुक्त दोनों प्रकार की कविताओं का सृजन जिस वातावरण में हुआ वह सामंतीय कहलाता है|संस्कृत काव्यशास्त्रीय ग्रंथों के आधार पर हिंदी साहित्य में लक्षण ग्रंथों के प्रणेता और लक्षण ग्रंथ का आश्रय लेकर काव्य रचना करने वालों को रीतिबद्ध कवि माना गया| केशव, चिंतामणि, मतिराम,देव, भूषण, कुलपति मिश्र, भिखारीदास, रसलीन,बेनी प्रवीन, पद्माकर, ग्वाल आदि इसी श्रेणी में आते हैं|रीतिबद्ध कवियों ने विषय सामग्री का चयन करने के लिए सरल मार्ग का आश्रय लिया विशेष रूप से नायक-नायिका भेद का निरूपण एवं अलंकारों के भेदोंपभेदों का वर्णन करते समय इन्होंने स्थूल विषयों को ही ग्रहण किया| जटिल समस्याओं का तर्क सम्मत उत्तर देने के प्रपंच से इन्होंने अपने को मुक्त रखा| यह प्रकांड पंडित नहीं थे परंतु उनमें भी गंभीर अध्ययन की प्रवृत्ति थी| इस समय के रचनाकारों ने मुख्य रूप से तीन प्रकार की शैलियां अपनाईं|वैसे तो संस्कृत काव्यशास्त्र में काव्य विधान, कवि शिक्षा आदि तीनों ही विशेष रूप से विवेच्य विषय थे किंतु हिंदी के लक्षण ग्रंथों में काव्य विधान का ही विशिष्ट स्थान है| इस समय के आचार्य संस्कृत काव्यशास्त्र का अनुवाद करने में व्यस्त थे और इनका उद्देश्य अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करना तथा स्तुतिपरक काव्यों द्वारा पुरस्कार प्राप्त करना तथा कवि शिक्षा देना था| इन्हें आश्रय दाताओं का मनोरंजन करने के लिए और

श्रंगार रस की धारा प्रवाहित करने के लिए बहुत सी सामग्री अनायास ही मिल गई तथा साथ ही साथ काव्यशास्त्र की सुगम शिक्षा भी मिलती रही|

आचार्य केशव के लिखे सात ग्रंथ प्रसिद्ध हैं- विज्ञान गीता, चंद्रलोक, रतन बावनी, कवि प्रिया, रसिकप्रिया, रामचंद्रिका आदि| चिंतामणि के प्रसिद्ध ग्रंथों में काव्य विवेक, श्रृंगार मंजरी, रसमंजरी, रामायण, कविकुल कल्पतरू आदि| जसवंत सिंह का भाषा भूषण| मतिराम लक्षणकार की अपेक्षा कवि अधिक रहे| इनके प्रसिद्ध ग्रंथों में अलंकार पंचाशिका,ललित ललाम यह दो अलंकार ग्रंथ और रसराज रसग्रंथ है| भूषण का काव्य वीर रस से परिपूर्ण है| इन्होंने वीर परंपरा का अनुगमन किया| रीति परंपरा पर वीर काव्य लिखने वाले भूषण ही हैं| शिवराज भूषण अलंकारों के साथ भाव, रस, गुण और वक्रोक्ति का भी उदाहरण प्रस्तुत करता है|कुलपति मिश्र का प्रमुख ग्रंथ रस रहस्य है इसमें इन्होंने मम्मट के मत का सार प्रस्तुत किया है|देव ने कुल 75 ग्रंथों की रचना की है जिनमें लगभग 27 ग्रंथ प्राप्त हैं| इन्हें आचार्य और कवि दोनों रूपों में सफलता प्राप्त हुई है| उनका सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ भाव- विलास है| कवि देव ने श्रंगार को निर्मल, शुद्ध और अनंत आकाश के समान माना है| रीतिबद्ध कवियों में भिखारीदास का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है| इन्होंने अपने ग्रंथों में ध्वनि, अलंकार, रस, नायिका भेद और छंद आदि के लक्षण और विवेचन किए हैं| इनका काव्य लालित्यपूर्ण है| बेनी प्रवीण कान्यकुब्ज बाजपेई थे| नवरस तरंग इनका प्रसिद्ध ग्रंथ है| रीतिबद्ध कवियों में पद्माकर का स्थान महत्वपूर्ण है| इनका प्रभाव परवर्ती कवियों पर भी विशेष रूप से पड़ा है| इन्होंने रस और अलंकार दोनों पर समान रूप से अपनी चमत्कारपूर्ण कविता का विलास प्रदर्शित किया| इन के प्रसिद्ध ग्रंथों में चंद्रलोक, भाषा भूषण,भाषा भरण आदि हैं| इस तरह रीतिबद्ध कवियों की काव्य साधना प्रशंसनीय है| रूप सौंदर्य को संतुलित शब्दों में उभार देना इन कवियों की विशेषता रही है| नख-शिख वर्णन के चित्रण में प्रसाधन को विशेष महत्व दिया गया है| इस प्रकार इन कवियों की महत्वपूर्ण विशेषता इनकी शब्द साधना है|

रीतिबद्ध कवियों का आचार्यत्व के प्रति आकर्षण दिखाई देता है यद्यपि श्रंगारपरक रचनाएं भक्ति काल में भी दिखाई देती हैं फिर भी रीतिबद्ध कवियों में श्रंगारिकता की भावना सर्वाधिक पाई जाती है|संयोग और वियोग भी इस युग की श्रंगारिक मनोवृति को स्पष्ट करते हैं| इस युग में जिस संयोग का वर्णन किया गया है वह रूपासक्ति का परिणाम है| रीतिबद्ध काव्य में नारी के दैहिक सौंदर्य का आधिक्य है| इस काल के कवियों की रुचि नारी चित्रण की ओर अधिक रही है| विशेष बात यह है कि इन कवियों ने नारी को केवल विलास की वस्तु माना| इन काव्यों में प्रेम का कोई उच्च आदर्श नहीं दिखाई देता है| यह नारी को समाज की चेतन इकाई ना मानकर मात्र उपकरण ही मानते रहे|रीतिबद्ध कवियों ने मूलतः अपने कवि रूप का तिरस्कार किया, उन्होंने अपने लक्षण ग्रंथों में विभिन्न मत प्रस्तुत कर अपनी रचनाएं प्रस्तुत कीं| उनमें एक ही तथ्य पर अनेक परिभाषाएं लिखकर अभिव्यक्त करने की क्षमता थी परंतु उन्होंने कभी भी अपने कवित्व गुण का सदुपयोग नहीं किया| इन कवियों में मौलिक चिंतन का अभाव देखा जा सकता है क्योंकि इन्होंने अपने मौलिक ग्रंथ ना लिखकर संस्कृत आचार्यों के विचारों और सिद्धांतों को ही अपनाया| इस काल के कवियों की दृष्टि में प्रकृति केवल नायक-नायिका की प्रेम लीलाओं के उद्दीपन का साधन मात्र रही| आलंबन के रूप में प्रकृति का चित्रण किसी ने भी नहीं किया| संयोग और वियोग दोनों ही स्थितियों में प्रकृति को महत्व दिया गया|

जैसा कि हम सभी जानते हैं कि इस काल के कवियों ने किसी न किसी राजा के आश्रय में रहते हुए काव्य सृजन किए और अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा करते हुए कविताएं लिखीं| नीति और भक्ति को भी इस काल में लिया गया| इन कवियों के द्वारा भक्ति के अनेक बहाने खोजे जाने लगे और इन्हीं बहानों के रूप में रीतिकालीन प्रवृत्तियों को अपनाया गया| उस भक्ति के पीछे श्रंगारिकता की प्रेरणा भी रही है|विभिन्न शैलियों का प्रयोग रीतिबद्ध कवियों की विशेषताएं रही हैं|

2.5.2 रीतिसिद्ध काव्यधारा

रीतिसिद्ध उन कवियों को कहा गया है जिन्होंने लक्षण ग्रंथ तो नहीं लिखे किंतु रीति की परिपाटी का अपने काव्य में अनुसरण अवश्य किया है| रीतिसिद्ध कवियों में सेनापति, बिहारी लाल ,बेनी कवि, कृष्ण कवि, रस निधि, द्विजदेव आदि प्रमुख हैं| आचार्य शुक्ल के 'हिंदी साहित्य के इतिहास' में सेनापति को फुटकल भक्त कवियों की श्रेणी में रखा गया है किंतु उनके 'कवित्त रत्नाकर' में चमत्कार चारुता देखने को मिलती है| कविवर सेनापति का अपनी भाषा पर पूर्ण अधिकार है| उन्होंने भावों के अनुरूप भाषा का प्रयोग किया है| कविवर बिहारी लाल हिंदी के श्रृंगारी कवियों में सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं| इनका जीवन अनेक स्थानों पर व्यतीत हुआ| 'बिहारी सतसई' इन की प्रसिद्ध रचना है जिसके बारे में कहा जाता है-

सतसैया के दोहरे, ज्यों नाविक के तीर,
देखन में छोटे लगें, घाव करैं गंभीर|

बिहारी ने राजा जयसिंह को जो दोहा लिख कर भेजा वह इस बात की ओर संकेत करता है कि बिहारी जैसे रीति युगीन कवि में कितना आत्मबल था कि उन्होंने एक कर्तव्य से भटके हुए शासक को कर्तव्य का बोध करा दिया|बिहारी अपने समय की राजनीतिक स्थिति से पूर्णतया परिचित थे| उन्होंने आंखें बंद करके परिस्थितियों से समझौता कभी नहीं किया, भले ही वे राज्याश्रित कवि थे फिर भी वह अपने मन के सम्राट थे| जिस समय रीतिकाल के अन्य कवि अपनी काव्य प्रतिभा और जीवनानुभूति के सूक्ष्मतम तत्वों का निरूपण कर रहे थे उस समय बिहारी ने एक छोटा सा दोहा छंद लिखकर अपनी काव्य प्रतिभा प्रदर्शित कर दी और समाहार शक्ति का परिचय दिया| बिहारी अपनी बहुज्ञता के लिए भी प्रसिद्ध हैं| बिहारी में आचार्यत्व और कवित्व का मनोहारी संगम दिखाई देता है|

बेनी कवि ने भावानुरूप तथा अनुप्रास की छटा से मंडित भाषा का प्रयोग अपनी कविताओं में किया है| कृष्ण कवि बिहारी के पुत्र थे और इन्होंने बिहारी सतसई की टीका सवैया छंद में की है| कवि रसनिधि का वास्तविक नाम पृथ्वीसिंह था और यह दतिया राज्य के एक जमींदार थे| इन्होंने 'रतन हजारा' ग्रंथ की रचना की इसके अतिरिक्त 'रसनिधि- सागर,' 'बारहमासी' आदि ग्रंथ भी मिलते हैं जो अधिक प्रसिद्ध नहीं हैं| इनकी भाषा में लाक्षणिकता और सम्प्रेषणीयता के गुण दिखाई देते हैं| द्विजदेव का वास्तविक नाम महाराज मानसिंह था जो अयोध्या के राजा थे| रीतिसिद्ध कवियों में इनका नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है| इनके प्रसिद्ध ग्रंथों में 'श्रृंगार बत्तीसी' और 'श्रंगार लतिका' हैं| इस प्रकार रीतिसिद्ध कवियों ने नीतियों को अपनाते हुए समसामयिक परिस्थितियों को अपनी कविताओं का केंद्र बिंदु बनाया| इन कवियों का प्रकृति

वर्णन अनुरागमय भावों को उद्दीप्त करने में सफल हुआ है| राज्याश्रय में रहकर भी इन कवियों ने 'कवयःनिरंकुशः' का सदैव ध्यान रखा| इस काल के कवियों ने कल्पना की समाहार शक्ति लेते हुए भाषा की समास शक्ति का प्रयोग प्रबलता से किया है| इस काल में कला के प्रति अत्यधिक आग्रह परिलक्षित होता है और कहीं-कहीं तो शब्द योजना का चमत्कार चरम सीमा तक पहुंच गया है| रीतिसिद्ध कवियों ने अनुभवों के आधार पर भावों की तीव्रता, प्रखरता और गहनता से विषय वस्तु का सजीव वर्णन किया है| रीतिसिद्ध कवियों ने अपनी रचनाओं में श्रंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का आकर्षक चित्रण किया है| संयोग श्रृंगार का वर्णन शास्त्रीय पद्धति पर किया गया है| कई बार इस वर्णन में मर्यादा का उल्लंघन भी दिखाई देता है| श्रंगार के अतिरिक्त भक्ति, नीत आदि को केंद्र में रखते हुए काव्य रचे गए|

2.5.3 रीतिमुक्त काव्यधारा

रीतिमुक्त कवि वे कवि हैं जो काव्य शास्त्रीय नियमों से मुक्त रहकर काव्य सृजन की ओर प्रवृत्त हुए| रीतिबद्ध और रीतिमुक्त दोनों कवियों के धरातल भिन्न हैं| इनका काव्य संबंधी दृष्टिकोण भी दो विरोधी रेखाओं को छूता है; जहां एक ओर रीतिबद्ध कवियों ने शास्त्रीय परंपरा को आधार बनाकर काव्य रचना की है तो वहीं दूसरी ओर रीतिमुक्त कवियों ने परंपरागत मार्ग को नहीं अपनाया है| इस धारा के कवि वे कवि हैं जिन्होंने प्रयत्न करके कभी कविताएं नहीं लिखीं बल्कि कविता उनके हृदय से स्वतः फूट निकली| इन कवियों ने काव्य को साधन रूप में नहीं बल्कि साध्य रूप में ग्रहण किया है| जैसे घनानंद कहते हैं-

लोग हैं लागि कवित्त बनावत,
मोहि तो मेरे कवित्त बनावत|

प्रेम के क्षेत्र में पवित्रता और उदारता को स्थान दिया गया है, यही कारण है कि रीतिमुक्त कवियों ने अपने काव्यों में अनेक ऐसी स्थितियों का वर्णन किया है जो आज भी हमारे मन को प्रभावित करती हैं| इस काव्य धारा की विशेषताओं को देखें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि इन कवियों ने परंपरामुक्त मार्ग अपनाया है| इनका काव्य भावना प्रधान है जहाँ बाह्य चित्रण की अपेक्षा आंतरिक चित्रण को अधिक महत्व दिया गया है| बुद्धि को तो उन्होंने दासी बना कर रखा है| रीतिमुक्त काव्य व्यक्ति प्रधान काव्य हैं| इस धारा में प्रेम अनुभूति की अभिव्यक्ति आत्मपरक शैली में हुई है| रीतिमुक्त साहित्य में वेदनायुक्त प्रेम दर्शन दिखाई देता है| इस काल के व्यक्ति में घुटन, पीड़ा और निराशा के भाव अधिक थे जिनका प्रभाव रीतिमुक्त कवियों की कविताओं पर स्पष्ट दिखाई देता है| यह कविताएं अत्यंत स्वाभाविक और विश्वसनीय प्रतीत होती हैं|भावात्मक प्रेम की अभिव्यक्ति इन कविताओं की एक अन्य विशेषता है| इन कवियों की प्रेम संबंधी धारणाएं भी रीतिबद्ध कवियों से अलग हैं| इनमें कहीं भी वासना की गंध का अनुभव नहीं होता| प्रेमी प्रेम की पीड़ा को सहकर भी प्रिय की कुशलता की कामना करता रहता है; भले ही प्रिय ना मिले किंतु प्रेमी तो उसके लिए हर स्थिति में समर्पित रहेगा और यह भाव समस्त रीतिमुक्त साहित्य में दिखाई देता है| रीतिमुक्त साहित्य में सहज व निश्छल भाषा का प्रयोग दिखाई देता है| जहाँ रीतिबद्ध कवियों की रचनाओं में अलंकारों की भरमार है और शब्दों को तोड़ा मरोड़ा गया है वहीं रीतिमुक्त कवियों की रचनाओं में भाषा की सहजता है, शब्द आकर्षक गति से आगे बढ़ते हैं,

भाषा में प्रेषणीयता,लाक्षणिकता और व्यंजना दिखाई देती है| रीतिमुक्त काव्य वेदनानुभूति, प्रेमानुभूति, विविध मनोदशाओं की अभिव्यंजना, भाषा की असाधारण विशेषताओं के कारण रीतिमुक्त काव्य औदात्यपरक दिखाई देता है|

रीति काव्य की एक दूसरी धारा रीतिमुक्त कवियों की है इसे स्वच्छंद काव्यधारा भी कहा जाता है| इस वर्ग के प्रमुख कवियों में घनानंद, बोधा, ठाकुर, आलम आदि हैं| इन कवियों ने प्रयत्न करके कविताएं नहीं लिखी हैं बल्कि कविता तो स्वयं उनके हृदय से प्रस्फुटित होकर मुक्त कंठ से प्रवाहित हुई है| जहां एक ओर रीतिबद्ध कवियों ने चमत्कार की अभिव्यक्ति के लिए बुद्धि प्रेरित कविताएं लिखी हैं वहीं रीतिमुक्त कवियों ने भाव-भावित कविता लिखी, जिसका प्रमाण समूचा रीति काव्य है| रीतिमुक्त कवि वे हैं जिन्होंने ना तो लक्षण ग्रंथों की रचना की और ना ही लक्षण ग्रंथों की रीति से बंध कर अपनी रचनाएं लिखीं| आलम इस धारा के प्रमुख कवि हैं और इनकी रचना 'आलमकेलि' है|घनानंद रीतिमुक्त कवियों में सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं और इनकी रचनाओं में 'कृपाकंद निबंध', 'सुजान हित प्रबंध', 'इश्कलता','पदावली' आदि हैं| बोधा की 'इश्कनामा' और 'विरह बारिश' हैं|ठाकुर की 'ठाकुर ठसक', 'ठाकुर शतक' हैं| रीतिमुक्त कवियों ने काव्य को साधन के रूप में नहीं बल्कि साध्य के रूप में ग्रहण किया है| यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि रीतिमुक्त कवियों की कविता को नेत्रों से नहीं बल्कि हृदय की आंखों से पढ़े जाने की आवश्यकता है|

2.6 रीतिकालीन गद्य साहित्य

रीतिकाल में अनेक मौलिक गद्य रचनाएं हुईं| आधुनिक काल में जो गद्य पूर्ण वैभव के साथ प्रारंभ हुआ उसकी नींव रीतिकाल में पड़ी| बहुत अच्छी रचनाएं अनुवाद करने के रूप में प्रकाश में आईं| संस्कृत के पुराने ग्रंथों का हिंदी में अनुवाद करके सबको सुलभ कराने के प्रयास नें अनूदित गद्य का बड़ा विस्तृत रूप प्रस्तुत किया| रामायण, महाभारत, हितोपदेश आदि के अनुवाद गद्य में हुए| टीका व्याख्या की पद्धति नें भी गद्य को बहुत आगे बढ़ाया| चिंतामणि, भिखारीदास, सोमनाथ इस दृष्टि से जाने-माने आचार्य हैं| उन्होंने 'कविकुल' 'कल्पतरू,' 'काव्य निर्णय,' आदि ग्रंथों में काव्यशास्त्र का टीका परक गद्य प्रस्तुत किया; इसके साथ ही हिंदी कविता के अनेक ग्रंथों जैसे विनय पत्रिका, रामचंद्रिका, कविप्रिया, रसिकप्रिया, बिहारी सतसई आदि पर टीकापरक गद्य निर्मित हुआ|ऐसे बहुत से ग्रंथ लिखे गए जो कविता में थे पर उनको गद्य में सरलीकृत करके या उनकी टीका करके प्रस्तुत किया गया|हिंदी गद्य का यह पूरी तरह से विकासमान परिवेश बन गया और उसके अनेक रूप देखने में आते हैं|रीति काल से पूर्व और रीतिकाल में ब्रज भाषा में गद्य लेखन की प्रवृत्ति देखने में आती है; जहाँ एक ओर काव्य के ग्रंथों का रीतिकाल में चलन बढ़ा वहीं दूसरी ओर उनकी टीकाएँ भी सामने आने लगीं और वह प्रायः ब्रजभाषा में ही लिखी गईं| विद्वानों ने ब्रजभाषा गद्य के अनेक रूप गिनाये हैं जैसे वार्ता, जीवनी, पत्र, संवाद, टीका, ललित गद्य आदि|

ब्रजभाषा गद्य में वार्ता साहित्य बहुत महत्वपूर्ण है| उसमें अधिकतर वे रचनाएं आती हैं जो धार्मिक या किसी धर्म संप्रदाय के तत्वों को निरूपित करती हैं| 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता', 'दो सौ बावन

वैष्णवन की वार्ता' इसी प्रकार की रचनाएं हैं| कुछ बचनामतों का संग्रह किया गया जैसे 'चौरासी बैठक चरित्र','वन यात्रा', 'नित्यसेवा प्रकार' आदि| अन्य विषयों की भी गद्य रचनाएं मिलती हैं जैसे 'अश्व चिकित्सा', 'वेदांत निर्णय', 'गरुण पुराण', 'चाणक्य नीति अनुवाद', 'हितोपदेश अनुवाद', 'रसिकप्रिया टीका' आदि| इसी तरह खड़ी बोली में गद्य साहित्य लिखा गया| भले ही रीतिकाल में खड़ी बोली का स्वतंत्र रूप में गद्य प्रयोग नहीं मिलता फिर भी जिस तरह आदिकालीन गद्य में कहीं-कहीं और भक्ति कालीन गद्य में कुछ अधिक प्रयोग खड़ी बोली के मिलते हैं उसी प्रकार रीतिकाल में भी मिलते हैं|अधिकतर ब्रजभाषा गद्य में खड़ी बोली का गद्य मिला हुआ है| 'मोक्षमार्ग प्रकाश', 'सुरासुर निर्णय','भाषा योग वशिष्ठ','भाषा पद्म पुराण', 'आदिपुराण वचनिका', 'सूर्य सिद्धांत' आदि| इसी तरह ब्रजभाषा मिश्रित खड़ी बोली टीकाओं में प्रमुख रूप से पंडित हेमराज की 'प्रवचनसार टीका', आनंदघन की 'जपु टीका',इसवी खां की 'बिहारी सतसई' आदि| इसी तरह **दखिनी गद्य साहित्य, राजस्थानी गद्य साहित्य, भोजपुरी और अवधी में गद्य साहित्य** लिखे गए|

2.7 रीतिकालीन काव्यभाषा

रीतिकाल में अभिव्यंजना कला की दृष्टि से उत्कृष्ट प्रतिभा वाले कवि अधिक संख्या में हुए जिनकी लेखनी से भाषा का संस्कार, परिष्कार तथा श्रंगार हुआ| भक्तिकाल में कविता का भावलोक यदि उच्च और मनोहारी था ,तो रीति काल में कविता का कला पक्ष सुंदर और चमत्कारी बना| रीतिकालीन आचार्य तथा कवियों की लेखनी की जीवनी शक्ति पाकर ब्रजभाषा प्रौढ़ और सबल बनीं| इस युग में अवधी भाषा में भी काव्य रचे गए किंतु उस में ब्रजभाषा की भांति विविध प्रयोग नहीं दिखाई देते| उसमें प्रेमाख्यान ही अधिक लिखे गए| छंद के क्षेत्र में कवियों ने दोहा, चौपाई, सवैया आदि अनेक शब्दों के माध्यम से अपनी काम शक्ति का प्रदर्शन किया| इस युग में आत्म तेज का ह्रास हो चुका था इसलिए काव्य का बाहरी स्वरूप ही परिष्कृत और प्रांजल बन सका| चमत्कार और सौंदर्य चित्रण को छोड़कर प्रायः सर्वत्र रूढ़ी और परंपरा की रेखाएं इस काल के साहित्यिक पटल पर दृष्टिगोचर होती हैं| रीति काव्य की भाषा प्रधानतया ब्रजभाषा ही है| इसका परिष्कृत, सहज, सरल और कोमल रूप रीतिकाल के काव्यों में देखने को मिलता है| इसमें अवधी, बुंदेलखंडी, उर्दू, फ़ारसी, छत्तीसगढ़ी आदि भाषाओं के शब्द भी पर्याप्त मात्रा में दिखाई देते हैं| भाषा की संप्रेषण शक्ति को बढ़ावा देने के लिए कवियों ने मुहावरे और लोकोक्तियों का भरपूर प्रयोग किया है| इस संदर्भ में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि- ' भाषा के भी विश्रामदायक और विरोधी गुणों का इस काव्य में खूब मार्जन हुआ है, परंतु इसे इस योग्य बनाने का प्रयत्न किसी ने भी नहीं किया कि यह गंभीर विचार प्रणाली का उपयुक्त वाहन बन सके' |

अपनी प्रगति जाँचिये(बोध प्रश्न)

1.रीतिकाल को अन्य किस नाम से जाना जाता है?

2.रीतिकाल का अलंकृत काल नामकरण किसने किया?

3.रीति ग्रंथ कितने रूपों में मिलते हैं?

4.केशव की एक रचना का नाम लिखिए?

5.बिहारी की प्रसिद्ध रचना का नाम बताएं?

6.भूषण किस काव्य धारा के कवि माने जाते हैं?

7.छत्र प्रकाश किसकी रचना है?

8.बिहारी सतसई में कितने दोहे हैं?

9.रीतिकाल के दो रसवादी कवियों के नाम लिखिए?

10.रीतिकाल में प्रकृति चित्रण करने वाले एक कवि का नाम लिखिए?

11.रसखान कवि का मूल नाम क्या था और उन्होंने किस भाषा में रचनाएं की हैं?

12.घनानंद रीतिकाल की किस धारा के कवि हैं?

2.8 सारांश

रीतिकाल विषय, अभिव्यक्ति और जीवन दर्शन की दृष्टि से एक विशेष सीमा में बंधा हुआ दिखाई देता है| श्रंगार के दोनों पक्ष जिस रूप में इस काल में अभिव्यक्ति पाते हैं वैसी अभिव्यक्ति पूर्ववर्ती रचनाओं में नहीं दिखाई देती है| रीतिकाल के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि इस समय वीर भावना प्रायः क्षीण हो गई थी और शेष सारे काव्य साहित्य पर कृष्ण काव्य का प्रभाव दिखाई देता है जिसमें नारी सौंदर्य की मादकता है और आध्यात्मिकता के स्थान पर श्रंगारिकता की ओर अधिक झुकाव दिखाई देता है| संपूर्ण वातावरण लौकिक श्रृंगार का दिखाई देता है| रीतिकालीन साहित्य का संबंध दरबारों से है| उनका सृजन शासकों की रुचि के अनुसार हुआ है| यह दरबार मुगल दरबारों के अधीन थे| इन कवियों ने जिस नारी का वर्णन किया है उसमें व्यक्तित्व का पूर्ण अभाव है| इनके काव्य में सामाजिक उत्थान की भावना नहीं दिखाई देती है और उनकी दृष्टि जीवन के मौलिक प्रश्नों पर नहीं गई है, साथ ही साथ बहुत सारा साहित्य काव्यशास्त्र की दृष्टि से लिखा गया है क्योंकि इस काल में तथा इससे पूर्व संस्कृत के काव्यशास्त्र का अध्ययन होने लगा था| इस काल में आचार्यत्व कम और कवित्व शक्ति अधिक मिलती है|

रीतिकाल का समय निर्धारण- आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार- सं1700- 1900वि

डॉ नगेंद्र के अनुसार- सन1650-1850 ई

रीतिकाल के अन्य नाम-

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार- उत्तर मध्यकाल- रीतिकाल

मिश्र बंधु के अनुसार- अलंकृत काल

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार- श्रृंगार काल

इसी प्रकार रीतिका अर्थ है- काव्यांग निरूपण

आचार्य चिंतामणि को रीतिकाल का प्रवर्तक माना जाता है और रीतिकाल की प्रथम रचना कृपाराम की 'हिततरंगिणी' को माना जाता है| रीतिकाल की अंतिम कृति कवि ग्वाल की 'रसरंग' है| रीतिकाल को रीतिबद्ध,रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त काव्यधारा में बांटा गया है तथा इन धाराओं के कवियों ने अपनी-अपनी धाराओं की विशेषताओं को अपनाते हुए काव्य सृजन किए| रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियों में रीति निरूपण, श्रंगारिकता ,अलंकारिकता, चमत्कार प्रदर्शन, लोकमंगल की भावना की कमी, राजप्रशस्ति, ब्रज भाषा का प्रयोग और प्रकृति चित्रण आदि प्रमुख माने जाते हैं| इस काल के प्रमुख कवियों में केशवदास, मतिराम, भूषण, बिहारी, देव, घनानंद, पद्माकर, कवि वृंद,भिखारीदास, दूलह,बोधा, रसलीन आदि कवि रहे| रीतिकाल हिंदी साहित्य के बहुबिध विकास-विस्तार का युग है| काव्य कला की दृष्टि से इसके योगदान को कम महत्वपूर्ण नहीं माना जा सकता |इस तरह हिंदी साहित्य के इतिहास में रीति काव्य अपना विशिष्ट स्थान रखता है| किसी भी भाषा में इस प्रकार का काव्य इतने प्रचुर परिमाण में नहीं रचा गया| कवि शिक्षा से संयुक्त रीतिकालीन साहित्य मनोरंजन तथा तत्कालीन साहित्य समाज की रुचि परिष्कार का अत्यंत उपादेय साधन था| वास्तव में हिंदी साहित्य के इतिहास में सर्वप्रथम रीति कवियों ने ही काव्यों को शुद्ध कला के रूप में ग्रहण किया| कला के क्षेत्र में व्यवहारिक रूप से भी रीति कवियों की उपलब्धि कम नहीं है| ब्रजभाषा के काव्य रूप का पूर्ण विकास उन्होंने ही किया| शब्दों को खराद पर चढ़ाकर कोमल रूप प्रदान किया गया|

2.9 मुख्य शब्दावली

शोचनीय- दयनीय, सोचनीय- सोचने योग्य, पीठाधीश- पीठों के स्वामी, हिंदीतर- हिंदी से इतर, सिद्धांत- नियम, मनोरथ- मनोकामनाएं, दृष्टिपात करना- देखना, सुरा- शराब, आचार- आचरण, उपास्य- उपासना के योग्य, अभिहित- कहा हुआ, लिप्सा- चाह/ इच्छा, अदम्य- प्रबल, रीतिरात्मा काव्यस्य- काव्य की आत्मा रीति, काव्यांग- काव्य के अंग, शिल्प- हस्तकला/ संरचना, प्रवृत्तियां- विशेषताएं, लंबे अंतराल में- लंबे समय में, परिवर्तित- बदला हुआ, सशक्त- शक्तिशाली, अभिशाप- श्राप, चारु- सुंदर, सर्वाधिक- सबसे अधिक, व्यतीत होना- बीतना, राज्याश्रित- राजा पर आश्रित, बोध- जानकारी, भावानुरूप- भाव के अनुरूप, स्वतः- अपने आप, बानी- वाणी, तदपि- फिर भी, परिपूरन- परिपूर्ण, उक्ति- कथन, नेति-

अंतहीन, आन- अन्य, मुक्ति- मोक्ष, मीच- मृत्यु, तटी-समाधि अवस्था, पुरान- संपूर्ण, नटी- नर्तकी, धूरजटी-महादेव, विधि- ब्रह्मा, हेम- स्वर्ण, निधान- भंडार, अलि- भ्रमर, धरे- धारण किए हुए, बेनी- चोटी, पीयूष- अमृत, सारी- साड़ी, ग्रसी- ग्रस्त, जिय- ह्रदय, हेत- के लिए, भूषण- आभूषण, सोवत- सोती हुई, ब्याल- नागिन, मूरत- मूर्ति, भूतल- भूमि पर, बेगि- तुरंत, सिकता- रेत का कण, अस्त्र- हथियार, अनिवार्य- आवश्यक, वार्तालाप- बातचीत, युगीन- युग के अनुरूप, अवधि- समय, उत्तरोत्तर- लगातार, ह्रास- क्षीण, अधीनता -स्वामित्व, रुग्ण- बीमार, संघर्ष- युद्ध, बागडोर -लगाम, दमन- दबाना, शक्ति का संचय- ताकत इकट्ठी करना, देशव्यापी- पूरे देश में, विराट- विशाल |

2.10 अपनी प्रगति जाँचिये(बोध प्रश्नों) के उत्तर

1 रीतिकाल को श्रृंगार काल नाम से भी जाना जाता है|

2 रीतिकाल का अलंकृत काल नामकरण मिश्र बंधु ने किया|

3 रीत ग्रंथ दो रूपों में मिलते है- 1 अलंकारों पर आधारित 2 रसों पर आधारित|

4 केशव की प्रसिद्ध रचना रामचंद्रिका है|

5 बिहारी की प्रसिद्ध रचना बिहारी सतसई मानी जाती है|

6 भूषण रीतिमुक्त काव्यधारा के कवि माने जाते हैं|

7 'छत्र प्रकाश' रीतिमुक्त कवि गोरेलाल की रचना है|

8 बिहारी सतसई में 700 दोहे हैं|

9 रीतिकाल के दो रसवादी कवियों में मतिराम तथा देव के नाम आते हैं|

10 रीतिकाल में प्रकृति चित्रण करने वाले कवि सेनापति प्रमुख माने जाते हैं|

11 रसखान का मूल नाम सैयद इब्राहिम था|इन्होंने मुख्य रूप से ब्रज भाषा में अपनी रचनाएं की हैं|

12 घनानंद रीतिकाल की रीतिमुक्त काव्यधारा के कवि हैं|

2.11 अभ्यास हेतु प्रश्न

1-रीतिकालीन काव्य की प्रमुख भाषा क्या रही और इस भाषा की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए|

2- रीतिबद्ध, रीतिमुक्त और रीतिसिद्ध धाराओं का परिचय दीजिए|

3- रीतिकालीन कवियों के नारी विषयक चिंतन को स्पष्ट कीजिए|

4- रीतिकाल के नामकरण पर अपने विचार प्रकट कीजिए|

5- भूषण के काव्य में कला एवं भाव पक्ष की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए|

6- रीतिकाल की साहित्यिक पृष्ठभूमि का परिचय दीजिए|

2.12 आप ये भी पढ़ सकते हैं:पठनीय पुस्तकें(संदर्भ पुस्तकों की सूची)एवं वेबसाइट

1 हिंदी साहित्य का इतिहास- संपादक: डॉ नगेंद्र, सह-संपादक: डॉ सुरेशचंद्र गुप्त,नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली

2 साहित्यिक निबंध- संपादक: डॉ त्रिभुवन सिंह, हिंदी प्रचारक संस्थान वाराणसी

3 साहित्य और सामाजिक परिवर्तन- बद्रीनारायण, वाणी प्रकाशन ,दिल्ली

4 रीति काव्य की इतिहास दृष्टि- डॉ सुधीन्द्र कुमार, वाणी प्रकाशन दिल्ली

5 रीतिकाल: मिथक और यथार्थ- मैनेजर पांडेय

6 हिंदी साहित्य का इतिहास -आचार्य रामचंद्र शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

7 रीतिकाल की भूमिका- डॉ नगेंद्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली

8 रीतिकालीन साहित्य का पुनर्मूल्यांकन- डॉ रामकुमार वर्मा, साहित्य भवन, इलाहाबाद

9 ई बुक: प्राची, जुलाई 2015- रीतिकालीन साहित्य के संदर्भ में आचार्य विश्वनाथ प्रसाद की आलोचना दृष्टि

इकाई- 3 : द्विवेदी युग

3.0 : परिचय

द्विवेदी युग का समय सन् 1900 से 1920 तक माना जाता है। बीसवीं शताब्दी के पहले दो दशक के पथ-प्रदर्शक, विचारक और साहित्य नेता आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर ही इस काल का नाम 'द्विवेदी युग' पड़ा। इसे 'जागरण सुधारकाल' भी कहा जाता है। महावीर प्रसाद द्विवेदी हिन्दी के ऐसे पहले लेखक थे, जिन्होंने अपनी जातीय परंपरा का गहन अध्ययन ही नहीं किया था, अपितु उसे आलोचकीय दृष्टि से भी देखा। उन्होंने वेदों से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक के संस्कृत साहित्य की निरंतर प्रवाहमान धारा का अवगाहन किया एवं उपयोगिता तथा कलात्मक योगदान के प्रति एक वैज्ञानिक नज़रिया अपनाया। कविता की दृष्टि से द्विवेदी युग 'इतिवृत्तात्मक युग' था। इस समय आदर्शवाद का बोलबाला रहा। भारत का उज्ज्वल अतीत, देश-भक्ति, सामाजिक सुधार, स्वभाषा-प्रेम आदि कविता के मुख्य विषय थे। नीतिवादी विचारधारा के कारण श्रृंगार का वर्णन मर्यादित हो गया। कथा-काव्य का विकास इस युग की विशेषता है। मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', श्रीधर पाठक रामनरेश त्रिपाठी आदि इस युग के यशस्वी कवि थे । जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने इसी युग में ब्रजभाषा में सरस रचनाएँ प्रस्तुत कीं।

3.1 : इकाई के उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप बता सकेंगे कि-

1. 'द्विवेदी युग : नये काव्य परिवर्तन का स्वरुप है' के बारे में बता सकेंगे |
2. महावीर प्रसाद द्विवेदी के बारे में बता सकेंगे |
3. द्विवेदी युगीन प्रवृत्तियों के बारें में बता सकेंगे ।
4. द्विवेदी युगीन रचनाकारों के बारें में बता सकेंगे |
5. द्विवेदी युगीन रचनाओं से अवगत हो सकेंगे |

3.2 : द्विवेदी युग : नये काव्य परिवर्तन का स्वरुप

'रीतिकाल' स्थूल कायिकता और रसिक-मनोरंजन का काव्य था। 'भारतेन्दु-युग' रीतिकालीनता, मध्यकालीनता और समाजोन्मुखी आधुनिकता का संक्रांति युग था। इसमें तत्कालीन सामाजिक यथार्थ और आधुनिक आकांक्षाओं के बीज अवश्य अंकुरित हुए। 'द्विवेदी-युग' तक आते-आते आधुनिक चेतना और स्पष्टता तथा स्वीकृति के साथ सामने आयी । अतः 'पुनरुत्थान' की प्रवृत्ति ही प्रधान रही। फिर भी हिन्दी साहित्य प्रधानतः उस राष्ट्रीय स्वाधीन चेतना का सहचर बन गया था जो साम्राज्यवाद के साथ सामंतवाद का भी विरोध कर रहा था। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दौर में भारत में दूरगामी परिवर्तन हो रहे थे। साम्राज्यवाद की बाधाओं के बावजूद देशी-पूंजीवाद विकास कर रहा था। तिलक की गिरफ्तारी पर बम्बई में मजदूरों ने हड़ताल की। 1907 में सरस्वती में हड़ताल पर लेख छप चुका था। "स्वाधीनता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है" तिलक का यह नारा भारतीय जनमानस में व्याप्त चुका था। इन परिस्थितियों का आकलन करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि "सरकार से कुछ मांगने के स्थान पर अब कवियों की वाणी देशवासियों को ही 'स्वतंत्रता की देवी की बेदी पर बलिदान' होने को प्रोत्साहित करने लगी। अब जो आन्दोलन चले वे सामान्य जनसमुदायों को भी साथ लेकर चले। इससे उनके भीतर अधिक आवेश और बल का संचार हुआ। सबसे बड़ी बात यह हुई

कि आंदोलन संसार के अन्य भागों में चलने वाले आंदोलनों के मेल में लाए गये, जिससे क्षोभ की एक सार्वभौम धारा की शाखाओं-सी प्रतीत हुए |''आचार्य शुक्ल ने राष्ट्रीयता को अंतरराष्ट्रीयता के परिप्रेक्ष्य में रखकर देखने की कोशिश की। छायावाद राजनीति में महात्मा गांधी और साहित्य में जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' आदि का समय है। निस्संदेह इनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व जितना राष्ट्रीय है उतना ही अंतरराष्ट्रीय। छायावाद के साथ ही समाज की सर्वातिशायी सत्ता और सर्वशोषी आधिपत्य के विरूद्ध व्यक्ति की प्रतिष्ठा का प्रादुर्भाव हुआ । भारतेन्दु-युग से लेकर छायावाद तक की विकास प्रक्रिया को देखें तो एक नई धारणा बनती दिखती है । जहां योरोपीय देशों के साहित्य में 'स्वच्छन्दतावाद' के बाद 'यथार्थवादी' साहित्य का प्रतिफलन होता है वहीं औपनिवेशिक देशों में ये दोनों प्रवृत्तियां लगभग साथ-साथ फलीभूत होती हैं। हिन्दी साहित्य की विकास-यात्रा पर ध्यान दें तो 'भारतेन्दु-युग' अपेक्षाकृत अधिक 'यथार्थवादी' है, जबकि 'छायावाद'- जहां स्वाधीनता आंदोलन में अपने उठान पर था वहीं 'स्वच्छन्दतावाद' चरम पर पहुंच जाता है।

हिन्दी कविता के इतिहास में 'द्विवेदी-युग' खड़ी-बोली के प्रतिष्ठित होने का युग है। एक तरफ खड़ी-बोली को ब्रजभाषा के समकक्ष काव्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया गया, दूसरी ओर विकसित चेतना के कारण कविता नई भूमि पर संचरण करने लगी। स्वाधीनता आंदोलन ने खड़ी-बोली को अंतरप्रादेशिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया था। अतः साहित्य-सृजन एवं उसके व्यापक प्रचार-प्रसार के लिए यह भाषागत परिवर्तन अनिवार्य हो चला था। खड़ी बोली में यह क्षमता – संभव हो चुकी थी कि वह एकता का आधार बने।द्विवेदी-युग तक आते-आते हिन्दी कविता में समाज के नीचले तबके की आवाज उठने लगती है। इसका प्रमाण है 1914की 'सरस्वती' में छपी 'हीरा डोम' की कविता।

बभने के लेखे हम भिखिया न मांगबजां,

ठाकुरे के लेखे नहिं लउरि चलाइबि।

सहुआ के लेखे नहिं डांडी हम मारबजां,

अहिरा के लेखे नहिं गइया चोराइबि।

भंटउ के लेखे न कवित्त हम जोरबजां,

पगड़ी न बान्हि के कचहरी में जाइबि।

अपने पसीनवां के पइसा कमाइबाजां,

घरभर मिलि जुलि बाँटि-चोटि खाइबि।

काव्य-शिल्प की दृष्टि से कहा जा सकता है कि यह कविता नहीं है। परन्तु इसे अनुशासनप्रिय संपादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपनी प्रतिष्ठित पत्रिका में स्थान दिया था। स्वाधीनता की चेतना जो पहले 'बाबु'-वर्ग में जन्मी वह धीरे-धीरे फैल रही थी। गांधी का प्रभाव जन-जन तक पहुंच रहा था। आचार्य प्रवर जो कि स्वयं उपेक्षित चरित्रों की ओर कवियों का ध्यान खींच रहे थे, एक दलित की पीड़ा और उसके स्वाभिमान को नजरअंदाज नहीं कर सके। जैसा कि इस कविता की विषय वस्तु है, स्पष्ट है कि उसे अपने कर्मों पर घृणा नहीं अपितु स्वाभिमान है। अपने 'पसीने की कमाई' खाना और कथित उच्च वर्ग की विलासिता, (जो कि शोषण पर आधारित है) में यह कवि फर्क कर रहा है। उसे अपने परिश्रम का घमंड है। 'हीरा डोम' की यह चेतना निश्चित रूप से जिस राष्ट्र की कल्पना करती है, यह वही राष्ट्र नहीं है। या कह सकते हैं कि उस समय के प्रचलित 'राष्ट्रवाद' से उसका विरोध तो था! हीरा डोम की यह कविता श्रम की प्रतिष्ठा करने वाली संभवतः यह पहली हिन्दी कविता है। इतना ही नहीं वह मध्यकालीन 'ईश्वर' की अवधारणा पर भी प्रहार करता हैः

खंभवा के फारि पहलाद के बचवल जां,

ग्राह के मुंह से गजराज के बंचवले।

धोती जुरजोधना कै भइया छोरत रहै,

परगट होके तहां कपड़ा बढ़ वले।

मरले खन्नवा के पलुखे भभिखना के,

कानी अंगुरी पर धैके पथरा उठवाले।

कहवां सुतल बाटे सुनत न बाटे अब,

डोम जानि हमनी के छुए से डेरइले।

यहां 'ईश्वर' की सामंती अवधारणा और उससे निर्देशित होने वाला समाज, दोनों को खंडित कर दिया गया है। कवि ने समाज और राष्ट्र की सामंती, (और प्रकरांतर से आभिजात्यवादी) अवधारणा में 'सेंधमारी' की है। मध्यकालीन 'दीनबन्धु' ईश्वर एक झटके में 'सवर्ण' के रूप में दिखाई पड़ने लगता है। हीराडोम की इस कविता के छपने के लगभग चार साल बाद स्वच्छन्दतावादी कवि श्रीधर पाठक की एक कविता आई थी:

मनु जी तुमने यह क्या किया?

किसी को पौन, किसी को पूरा, किसी को आधा दिया।

सरस प्रीति के थाल में बोया

विष अनीति का बिया

लुब्ध पाप का, क्षुब्ध शाप का

साया सर पर लिया

मनु जी तुमने यह क्या किया?

और अधिक क्या कहें बाप जी

कहते दुखता हिया

जटिल जाति का, अटल पात्र का

जाल है किसका सिया?

श्रीधर पाठक का यह क्षोभ वर्णव्यवस्था के अनाचार पर ही है। इसमें कवि ने मनु और उनके सामाजिक एजेंडे को प्रश्नांकित किया है। वे केवल आरोप ही नहीं लगाते बल्कि साक्ष्यों द्वारा साबित करते हैं कि "यह थे भारत के बाप – मनु महाराज – जिन्होंने जातिगत जटिलता द्वारा समाज को पंगु बना दिया।" श्रीधर पाठक आधुनिक हिन्दी के पहले कवि हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं से सदियों चली आती सवर्णवादी (या आभिजात्यवादी) समाज – व्यवस्था एवं उसकी चिन्तन-प्रक्रिया पर चोट करते हैं –

जग है सच्चा, तनिक ना कच्चा,

समझो बच्चा इसका भेद।

पीओ, खाओ सब सुख पाओ

कभी न लाओ मन में खेद।

जगत को झूठा-झूठा कह के

करो नहीं उसका अपमान।

मध्यकालीन सोच में डूबे लोगों को कवि ने वैज्ञानिक तरीके से सोचने की सलाह देता है। वह जगत के 'मिथ्यात्व' वाले सामन्ती विचार को नकारता है। आध्यात्मिक कल्पना में डूबे राष्ट्रीय मानसिकता को कवि मुक्ति के मार्ग में बाधा मानता है। परन्तु, हिन्दी कविता की यह जनतांत्रिक धारा सुषुप्त होती गई। द्विवेदी-युगीन प्रतिनिधि कवियों ने उपेक्षित नारी को तो केन्द्र में रखा लेकिन उनका दृष्टिकोण उदार आभिजात्यवादी ही बना रहा।

द्विवेदी-युग एवं छायावाद, वस्तुतः मध्यवर्गीय सवर्णवादी राष्ट्रीयता का युग है। भारतेन्दु-युग के बाद हिन्दी क्षेत्र में शिक्षा-साक्षरता का प्रसार हुआ

था। शिक्षा तथा व्यवसाय के प्रचलन से मध्यवर्ग का स्वरूप निर्मित हो रहा था और अधिकांशतः यही लोग समाज-सुधार एवं आर्थिक-राजनैतिक स्वाधीनता के लिए प्रयत्नशील भी थे। द्विवेदी-युग का लेखक प्रायः इसी वर्ग से अपने को जोड़ता है। इसी से पनपता है और अधिकतर इसी वर्ग को संबोधित भी करता है। 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण' पुस्तक में डा0 रामविलास शर्मा ने लिखा है कि "द्विवेदी जी के इस कोटि के लेखन का सीधा संबंध 'भारत-भारती' से वैसे ही है जैसे भारत की वर्तमान आर्थिक अवस्था का चित्रण करते हुए भुखमरी, जमींदारों के अत्याचार, महाजनों की सूदखोरी और किसानों की तबाही की बातें करते हैं तो लगता है कि हम प्रेमचन्द के कथा-संसार में घूम रहे हैं। द्विवेदी जी कथा-लेखक नहीं थे और मैथिलीशरण गुप्त की तुलना में कवि भी बहुत साधारण थे। किंतु वैचारिक स्तर पर वह इन दोनों से आगे हैं, इन दोनों के काव्य संसार और कथा-संसार की रूप-रेखाएं उनके गद्य में स्पष्ट दिखाई देती है। इस दृष्टि से उन्हें युग-निर्माता कहना पूर्णतः संगत है।" स्पष्टतः द्विवेदी जी अपनी वैचारिकी से साहित्यकारों को स्वाधीनता-आंदोलन का सहकर्मी बनाने का प्रयास करते हैं। गद्य में तो प्रेमचन्द जैसे कथाकार साम्राज्यवाद और सामंतवाद दोनो से लोहा लेते दिखाई देते हैं लेकिन कविगण अपनी अभिजातवादी घेरेबंदी में ही तलवार भाँजते नजर आते हैं। वे अपने वर्ग-चरित्र का अतिक्रमण नहीं कर पाते हैं। फिर भी,आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपनी प्रतिभा से हिन्दी कविता को उस रास्ते पर लाने का प्रयास किया, जिस तरफ भारतेन्दु ने मोड़ा था। हिन्दी कविता अब देशवासियों की ओर मुखातिब होती है।

मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' आदि में वर्तमान समय के उथल-पुथल को देखा जा सकता है

भव को नव वैभव व्याप्त कराने आया,

नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया,

संदेश यहां मैं नहीं स्वर्ग का लाया

इस भूतल को स्वर्ग बनाने आया।

महात्मा गांधी के त्याग, बलिदान आदि मूल्यों को इस युग की रचनाओं के केन्द्र में देखा जा सकता है। इस समय के काव्य-नायकों को(नायिकाएं भी) समाज-सेवक के रूप में देखा जा सकता है। 'प्रिय प्रवास'की नायिका जनसेवा में आत्मोत्सर्ग करने वाली एक समाज-सेविका है। इस युग के काव्य में स्वाधीनता-संग्राम के औचित्य पर भी लिखा गया हैः

वह प्रलोभन हो किसी के हेतु,

तो उचित है क्रांति का ही केतु

दूर हो ममता, विषमता, मोह

आज मेरा धर्म राज-द्रोह।

लोकतांत्रिक-मूल्यों की स्थापना को लेकर छटपटाहट यहां देखी जा सकती है। राज-व्यवस्था (यानी की राजशाही) में विषमता और मोह जैसे दुर्गुणों से मुक्ति असंभव ही दिखाई देती है। यही कारण है कि राजद्रोह को धर्म की तरह प्रतिष्ठा दी गई है। यही नहीं, बल्कि गांधी के असहयोग आंदोलन की स्पष्ट झलक मैथिलीशरण गुप्त की कविताओं में देखी जा सकती हैः

जाओ, यदि जा सको रौंद हमको यहां,

यों कह पथ में लेट गए बहुजन वहां |

असहयोग आंदोलन की झलक के साथ-साथ यहां, जनता का राजाज्ञा उल्लंघन भी पढ़ा जा सकता है। इसी भावना का विकसित रूप प्रगतिवादी काव्य में देखा जाना चाहिए। द्विवेदी युगीन कवियों ने समाज के उपेक्षितों को काव्य का विषय बनाया है। इस समय सहानुभूति के प्रधान पात्र अछूत,किसान, मजदूर, स्त्री, भिक्षुक आदि हुए। लेकिन ध्यान रहे कि इनके

प्रति इन कवियों को सहानुभूति ही थी, वह विक्षोभ नहीं था जो हीराडोम की कविता या श्रीधर पाठक की कविता में हमने देखा है।

खपाया किए जान मजदूर, पेट भरना पर उनका दूर।

उड़ाते माल धनिक भरपूर, मलाई लड्डू मोती चूर।।

इस युग में मैथिलीशरण गुप्त के 'किसान' (1915), गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' के 'कृषक-क्रंदन' (1916) और सियाराम शरण गुप्त के 'अनाथ'(1917) में किसान और श्रमजीवी के प्रति जमींदार और पुलिस आदि के द्वारा किए गए घोर अत्याचारों का निरूपण हुआ है।कुल मिलाकर कह सकते हैं कि, भारतेन्दु युग के कवि भारतीय जन को कर्तव्य-पालन के लिए ललकार रहे थे। स्वदेशी अपनाने और आपसी प्रेम को बढ़ावा देने का आग्रह करते नजर आते हैं। परन्तु, स्वाधीनता और स्वत्व-ग्रहण करने के लिए अधिकार भाव से आगे आने का आह्वान तो द्विवेदी युग में ही होता है। अब ये कवि अधिकार के लिए राजद्रोह करने पर उतारू हैं

3.5: महावीर प्रसाद द्विवेदी और तत्कालीन हिंदी कविता :

रास्तों पर चलना आसान होता है, उन्हें बनाना मुश्किल| इसलिए दूसरा विकल्प चुनने वाले लोग बिरले ही होते हैं| आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी भी उन्हीं दुर्लभ हस्तियों में से थे जिन्होंने आज की हिंदी के लिए रास्ता बनाया| किसी बड़े और घने दरख़्त की तरह वे एक लंबे समय तक साहित्यिक जगत के सिर पर साया बनकर खड़े रहे| उनकी इस छाया में हिंदी साहित्य के कई नाम फले-फूले| यह उनका अतुलनीय योगदान ही था जिसके चलते आधुनिक हिंदी साहित्य का दूसरा युग 'द्विवेदी युग' (1893–1918) के नाम से जाना जाता है | द्विवेदी जी जब रेलवे की नौकरी छोड़कर सरस्वती के

संपादन से जुड़े तब उनकी तनख्वाह 20 रुपये थी| उस वक़्त को देखें तो यह एक बहुत बड़ी राशि थी और यहां तक पहुंचने के लिए उन्होंने काफी लंबी जद्दोजहद की थी| अपने आधिकारिक काम 'तार बाबू' से दीगर हटकर महावीर प्रसाद द्विवेदी ने माल बाबू, स्टेशन मास्टर और जरूरत के वक़्त रेल की पटरियां बिछाने का काम भी किया था| सरस्वती के संपादक के रूप में उन्हें प्राप्त होनेवाली राशि लगभग उनकी रेलवे की नौकरी वाले शुरुआती दिनों के वेतन जितनी ही थी| बहुत मुश्किल होता है कि हम अपने मन का करने के लिए पीछे लौटें या फिर से शुरुआत करें और बीच की इतनी कड़ी मेहनत बस यूं ही जाया हो जाने दें | रामचंद्र शुक्ल, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, पदुमलाल पन्नालाल बख्शी, मैथिलिशरण गुप्त जैसे चमकते हुए हिंदी साहित्य के न जाने कितने दैदीप्यमान नाम द्विवेदीकाल की ही देन हैं |

यह माना जा सकता है कि द्विवेदी जी ने हिंदी भाषा और इसके साहित्य के प्रति अगाध लगाव के वश एक बड़ा त्याग किया था| जरा सोचिये अगर वे अपनी रेलवे की नौकरी में ही जुटे रहते तो फिर क्या होता| क्या हिंदी भाषा को वे बहुत से लेखक मिल पाते जो उनके बताए-दिखाए रास्ते पर उनकी सोच और नैतिकता को केंद्र में रखकर एक आदर्श संसार की संकल्पना लेकर उनके साथ चले थे| रामचंद्र शुक्ल, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, मैथिलीशरण गुप्त जैसे हिंदी साहित्य के न जाने कितने चमकते नाम इसी स्कूल या काल की देन हैं जिसे हम द्विवेदीकाल के नाम से जानते हैं|

मैथिलीशरण गुप्त ने तो अपने गदगद कंठों से खुद इस बात को स्वीकार किया है - द्विवेदी जी ने मेरी उलटी सीधी रचनाओं का पूर्ण शोधन किया| उन्हें सरस्वती में छापा और पत्रों द्वारा भी मेरा उत्साह बढाया|' हो सकता है यह कुछ हद तक अपने गुरु और संरक्षक के प्रति विनयशीलता भी हो| फिर भी यह आशंका तो होती ही है कि क्या अज्ञात और उपेक्षित चरित्रों को केंद्र

में लानेवाले 'भारत भारती' और 'साकेत' और 'पंचवटी' जैसे ये काव्य ग्रन्थ सचमुच लिखे भी जाते या नहीं या फिर लिखे भी जाते तो क्या उनका स्वरुप यही होता? द्विवेदी जी की कई रचनाओं की छाया मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओं में आई पंक्तियों में देखी जा सकती है| जैसे भारत भारती की प्रारंभिक पंक्तियां हैं -

हम कौन थे क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी|

आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएं सभी|

ऊपर लिखी पंक्तियां द्विवेदी जी की इन पंक्तियों की छाया से निकली लगती हैं -

कच्चा घर जो था माटी का,

पक्के महलों से अच्छा था|

पेड़ नीम का दरवाजे पर सायबान से था बेहतर

वह जंगली हवा कहां है, वह इस दिल की दवा कहां है?

कहां टहलने को रमना है, लहरा रही कहां जमना है?

पदुमलाल पन्नालाल बख्शी कहते थे - 'मुझसे कोई अगर पूछे कि द्विवेदी जी ने क्या किया, तो मैं समग्र आधुनिक हिंदी साहित्य दिखाकर कह सकता हूं, यह सब उन्हीं की सेवा का फल है'

विचार की दृष्टि से और मीटर की दृष्टि से भी क्या यहां कुछ एक जैसा नहीं है? कई बार हम दूसरों को सहेजने-संवारने और रचने में इस कदर व्यस्त होते हैं कि हमारी रचनाशीलता उसी में टुकड़े-टुकड़े बंट जाती है| हमें लगता है, हम जो कहनेवाले थे, किसी ने वह कह दिया| और हम उसे सहेजकर ही संतुष्ट हो लेते हैं| संपादकों की निजी रचनाशीलता के ख़त्म होने का यह एक

बहुत बड़ा सबब होता है| हम दरअसल रचते तो नहीं पर अपने प्रभावकाल में रचे गये हर रचना में टुकड़े-टुकड़े बिखरे होते हैं| द्विवेदी जी के जीवन की भी यह एक बड़ी त्रासदी रही| उनके शिष्य और प्रख्यात लेखक, आलोचक, निबंधकार पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने भी लिखा - 'मुझसे कोई अगर पूछे कि द्विवेदी जी ने क्या किया, तो मैं समग्र आधुनिक हिंदी साहित्य दिखाकर कह सकता हूं, यह सब उन्हीं की सेवा का फल है|' और सचमुच यह सोचने वाली बात है कि क्या हमारी भाषा या कि फिर साहित्य ही का वही स्वरुप होता जो आज है, अगर द्विवेदी जी नहीं हुए होते?और ऐसा भी कुछ नहीं कि द्विवेदी जी ने अपने संपादन काल में कुछ अमूल्य रचा ही नहीं वे सिर्फ दूसरे लेखकों से ही यही नहीं कहते रहे कि 'लेखन का विषय कुछ भी या फिर सभी कुछ हो सकता है| अनंत आकाश से लेकर धरती तक|' केवल कविता कहानी, आलोचना ही नहीं उनके लिखे का विषय अर्थशास्त्र, इतिहास, पुरातत्वशास्त्र, समाजशास्त्र भी रहा| यही नहीं उन्होंने अनुवाद की दृष्टि से भी बहुत महत्त्वपूर्ण काम किए क्योंकि वे कहने से पहले करने में भरोसा रखते थे और दूसरों से कहने से पहले उन्होंने खुद यह सभी आजमाकर देखा था| उनके अनुवादों की परम्परा में देशी-विदेशी सभी तरह की पुस्तकें रहीं, इनमें जहां संस्कृत के ग्रन्थ थे – किरातार्जुनियम (भारवि), भामिनी विलास (पंडित जगन्नाथ), बेनी संहार (भट्ट नारायण), कुमारसंभवम और मेघदूतम (कालिदास) तो दूसरी तरफ जॉन स्टुअर्ड मिल के ऑन लिबर्टी का अनुवाद 'स्वाधीनता' और बेकन के प्रसिद्ध निबंधों का अनुवाद 'बेकन विचार रचनावली' के रूप में मिलता है |

अनुवादों की यह श्रृंखला यहीं ख़त्म नहीं होती| इसमें उर्दू फारसी और दूसरी भाषा की बहुतेरी किताबें सम्मिलित हैं | यह अलग बात है कि द्विवेदी

जी अपने ही शिष्यों की तरह किसी खास विधा के चमकते सितारे न हुए| न रामचंद्र शुक्ल जैसे आलोचक कहलाए और न गुप्त जी की श्रेणी के कवि या लेखक| पर खुद उन्होंने कभी इसका मलाल भी नहीं किया| बल्कि खुद की कविताओं को भी महज तुकबंदी कहकर वे इसका मजाक उड़ाते रहे| उनके यही गुण उन्हें बिरले लोगों में शामिल करते थे|

आलोचक महावीर प्रसाद द्विवेदी को बस भाषा परिष्कारकर्ता मानते रहे, संपादक कहते रहे पर लेखक और कवि के रूप में कोई सम्मान नहीं दिया| ऐसे लोगों में उनके प्रिय शिष्य रामचंद्र शुक्ल भी थे | खुद के लिए आत्मगौरव और आत्मप्रशंसा से दूरी बनाए रखना उनका सहज स्वभाव था| इसका एक उदाहरण काशी नागरी प्रचारिणी सभा से मिले उन्हें सम्मान का है| वे हिंदी के पहले आलोचक हुए जिन्हें सबसे पहले आचार्य की उपाधि से नवाजा गया था| यह पदवी संस्कृत भाषा के लेखकों को ही दी जाती थी| 1933 में उनकी सत्तरवीं वर्षगांठ पर जब नागरी प्रचारिणी सभा ने उनके अभिनंदन का कार्यक्रम रखा तो उन्होंने वहां अपनी बात इन्हीं पंक्तियों से शुरू की – 'मुझे आचार्य की पदवी मिली है, क्यों मिली है मालूम नहीं| कब और किसने दी है यह भी मालूम नहीं | मालूम सिर्फ इतना है कि मैं बहुधा इस पदवी से विभूषित किया जाता हूं | मैंने बनारस के किसी संस्कृत कॉलेज में भी कदम नहीं रखा कभी , फिर इस पदवी का मैं मुस्तहक कैसे हो गया? बावजूद इसके आलोचक उनकी आलोचना करते थके नहीं | इतिहासकारों ने उन्हें 'मोटी अक्ल वालों' के लिए लिखने वाले आलोचक और लेखक के रूप में देखा| वे उन्हें बस भाषा परिष्कारकर्ता मानते रहे, संपादक कहते रहे पर आलोचक, लेखक और कवि के रूप में कोई सम्मान नहीं दिया| ऐसे लोगों में उनके प्रिय शिष्य रामचंद्र शुक्ल भी थे | अगर रामविलास शर्मा को छोड़ दें तो लगभग सारे इतिहासकार आलोचक उनकी आलोचना करते वक़्त शायद

यह भूल गए कि युग, वातावरण, ऐतिहासिकता, समयानुकूलता भी कोई चीज होती है| वे एकमात्र कलापक्ष को लक्ष्य बनाकर उनके पीछे पिल पड़े| जबकि यह एक आम सिद्धांत है जीवन का कि कलात्मकता बाद की चीज होती है | भरे पेट के लिए मनोरंजन और मनबहलावन के साधन जैसा कुछ| पहले हमारी प्राथमिक जरूरतें ज्यादा मायने रखती हैं| कला की जरूरत तो बहुत बाद में आती है| द्विवेदी जी के सिद्धांतों, नैतिकता और व्यक्तित्व की प्रगाढ़ता की खिल्ली उड़ाने वाले सारे लोग कभी उनकी प्रकाण्डता के आगे नतमस्तक थे| जिस अनुशासन की छड़ी ने उन्हें रचा उसका अनुदान तो वे भूल गए, हां उसकी मार (शाब्दिक अर्थों में) उन्हें जरूर याद रही| अनुशासन तो याद रह गया, उसकी महत्ता नहीं|

द्विवेदी का जोर भाषा की शुद्धि पर बहुत था क्योंकि जब उन्होंने लेखन शुरू किया तो हिंदी भाषा व्याकरण की अराजकता की शिकार थी | आलोचक यह भूल गए कि उस समय देश के हालात जैसे थे उसमें द्विवेदी जी न सिर्फ भाषा वरन स्वतन्त्रता की लड़ाई की तरह एक निज भाषा गढ़ने और रचने की लड़ाई भी लड़ रहे थे| द्विवेदी का जोर भाषा की शुद्धि पर बहुत था क्योंकि जब उन्होंने लेखन शुरू किया तो हिंदी भाषा व्याकरण की अराजकता की शिकार थी| भारतेंदु युग में भाषा के नाम पर काम तो बहुत हुए, पर अधिकतम रचने की जिद में व्याकरण और भाषा संबंधी छोटी-छोटी बातें दरकिनार ही रह गई| ठीक वैसे ही जैसे बच्चा जब चलना शुरू करे तो हमारी सारी दृष्टि उसके खुद से चल पड़ने को लेकर ही खुश और प्रफुल्लित होने की होती है| उसके आड़े टेढ़े चलने, घिसटने दुबकने, डगमगाकर गिरने से हमें खीज नहीं होती| पर द्विवेदी जी ने मां की ममता भरी दृष्टि से ऊपर उठते हुए एक शिक्षक और चिकित्सक की दृष्टि से भाषा को देखा| उसमें सुधारों के बाबत सोचा और उपाय किए| इसलिए भी उनकी भाषा एक मां की दृष्टि की तरह कोमल नहीं एक चिकित्सक और शिक्षक की दृष्टि की तरह थी और उनके

हाथों में एक आलोचकीय चाबुक भी था जो गढ़ने और ढालने में भरोसा रखता था| यह ख्याल रखने वाली ही बात है कि अगर द्विवेदी जी या फिर द्विवेदी युग न हुआ होता, तो प्रतिक्रिया में उपजा घोर कलात्मकता का वह काल छायावाद भी शायद ही हुआ होता और हम कलात्मक और भाषागत ऊंचाइयों के उस चरम से भी अनभिज्ञ ही रह जाते|

3.6: द्विवेदी युगीन कविता : मुख्य प्रवृत्तियां, रचनाकार एवं रचनाएँ

द्विवेदी युगीन कविता की मुख्य प्रवृत्तियां

1. **राष्ट्रीय-भावना या राष्ट्र-प्रेम** - इस समय भारत की राजनीति में एक महान परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रयत्न तेज और बलवान हो गए। भारतेंदु युग में जागृत राष्ट्रीय चेतना क्रियात्मक रूप धारण करने लगी। उसका व्यापक प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा और कवि समाज राष्ट्र-प्रेम का वैतालिक बनकर राष्ट्र-प्रेम के गीत गाने लगा -

संदेश नहीं मैं यहां स्वर्ग लाया
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया |

लोक-प्रचलित पौराणिक आख्यानों,इतिहास वृत्तों और देश की राजनीतिक घटनाओं में इन्होंने अपने काव्य की विषय वस्तु को सजाया।इन आख्यानों,वृत्तों और घटनाओं के चयन में उपेक्षितों के प्रति सहानुभूति,देशानुराग और सत्ता के प्रति विद्रोह का स्वर मुखर है।

रुढ़ि-विद्रोह –

पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव एवं जन जागृति के कारण इस काल के कवि में बौद्धिक जागरण हुआ और वह सास्कृतिक भावनाओं के मूल सिद्धांतों को प्रकाशित कर बाहरी आडम्बरों का विरोध करने लगा । स्त्री-शिक्षा,बाल-विवाह, अनमेल विवाह, विधवा-विवाह, दहेज-प्रथा, अंधविश्वास आदि

विषयों पर द्विवेदी युग के कवियों ने रचनाएं लिखी हैं।कवियों ने समाज की सर्वांग उन्नति को लक्ष्य बनाकर इन सभी विषयों पर अपने विचार व्यक्त किए हैं -

हे ईश,दयामय, इस देश को उबारो ।

कुत्सित कुरीतियों के वश से इसे उबारो॥

अनय राज निर्दय समाज से होकर जूझो ।

इस युग के कवियों की धार्मिक चेतना भी उदार और व्यापक हुई। धार्मिक भावना केवल ईश्वर के गुण-गान तक सीमित नहीं रही,बल्कि उसमें मानवता के आदर्शों की प्रतिष्ठा है। विश्व-प्रेम तथा जनसेवा की भावना इस युग की धार्मिक भावना का मुख्य अंग है। गोपाल शरण सिंह की कविता से एक उदाहरण देखिए-

जग की सेवा करना ही बस है सब सारों का सार ।

विश्वप्रेम के बंधन ही में मुझको मिला मुक्ति का द्वार॥

मानवतावाद :-

इस काल का कवि संकीर्णताओं से ऊपर उठ गया है। वह मानव-मानव में भ्रातृ-भाव की स्थापना करने के लिए कटिबद्ध है। अत: वह कहता है-

जैन बौद्ध पारसी यहूदी,मुसलमान सिक्ख ईसाई।

..

..

..

कोटि कंठ से मिलकर कह दो हम हैं भाई-भाई॥

मानवता का मूल्यांकन इस युग के कवियों की प्रखर बुद्धि ने ही किया। उनकी दृष्टि में-

मैं मानवता को सुरत्व की जननी भी कह सकता हूं

नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया।

श्रृंगार की जगह आदर्शवादिता :

इस युग की कविता प्राचीन प्राचीन सांस्कृतिक आदर्शों से युक्त आदर्शवादी कविता है। इस युग के कवि की चेतना नैतिक आदर्शों को विशेष मान्यता दे रही थी,क्योंकि उन्होंने वीरगाथा काल तथा रीतिकाल की शृंगारिकता के दुष्परिणाम देखे थे। अत: वह इस प्रवृत्ति का उन्मूलन कर देश को वीर-धीर बनाना चाहता है-

रति के पति! तू प्रेतों से बढ़कर है संदेह नहीं,

जिसके सिर पर तू चढ़ता है उसको रुचता गेह नहीं।

मरघट उसको नंदन वन है,सुखद अंधेरी रात उसे

कुश कंटक हैं फूल सेज से,उत्सव है बरसात उसे॥

इस काल का कवि सौंदर्य के प्रति उतना आकृष्ट नहीं,जितना कि वह शिव की ओर आकृष्ट है।

नारी का उत्थान :–

इस काल के कवियों ने नारी के महत्त्व को समझा,उस पर होने वाले अत्याचारों का विरोध किया और उसको जागृत करते हुए कहा -

आर्य जगत में पुन: जननि निज जीवन ज्योति जगाओ ।

अब नारी भी लोक-हित की आराधना करने वाली बन गई। अत: प्रिय-प्रवास की राधा कहती है-

प्यारे जीवें जग-हित करें,गेह चाहे न आवै ।

जहां कवियों ने नारी के दयनीय रूप देखें,वहां उसके दु:ख पर आंसू बहाते हुए कहा -

अबला जीवन हाय! तुम्हारी यही कहानी।

आचल में है दूध और अआंखों में पानी ॥

प्रकृति -चित्रण :-

द्विवेदी युग के कवि का ध्यान प्रकृति के यथा-तथ्य चित्रण की ओर गया। प्रकृति चित्रण कवि के प्रकृति-प्रेम स्वरूप विविध रूपों में प्रकट हुआ। श्रीधर पाठक,रामनरेश त्रिपाठी,हरिऔध तथा मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओं में प्रकृति आलंबन,मानवीकरण तथा उद्दीपन आदि रूपों में चित्रित किया गया है। श्रीधर पाठक ने कश्मीर की सुषमा का रमणीय वर्णन करते हुए लिखा-

प्रकृति जहां एकांत बैठि निज रूप संवारति
पल-पल पलटति भेष छनिक छवि छिन-छिन धारति॥

आचार्य शुक्ल प्रकृति के विभिन्न अंगों के साथ मानवीय संबंध स्थापित करते हैं। रामनरेश त्रिपाठी के 'पथिक', 'स्वप्न' जैसे खंडकाव्यों में, हरिऔध के 'प्रियप्रवास' में, मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत','पंचवटी' आदि काव्यों में प्रकृति के विविध चित्र हैं। उपाध्याय जी व गुप्त जी आदि कवियों की काव्य-भूमि ही प्रकृति का स्वच्छंद प्रांगण है -

सुंदर सर है लहर मनोरथ सी उठ मिट जाती।
तट पर है कदम्ब की विस्तृत छाया सुखद सुहाती॥

इतिवृत्तात्मकता-

इतिवृत्तात्मकता का अर्थ है -वस्तु वर्णन या आख्यान की प्रधानता।आदर्शवाद और बौद्धिकता की प्रधानता के कारण द्विवेदी युग के कवियों ने वर्णन-प्रधान इतिवृत्तात्मकता को अपनाया।इस युग के अधिकांश कवि एक ओर तो प्राचीन ग्रंथों की महिमा, प्रेम की महिमा, मेघ के गुण-दोष, कुनैन, मच्छर,खटमल आदि शीर्षकों से वस्तु-वर्णन-प्रधान कविताओं को रच रहे थे और दूसरी ओर प्राचीन आख्यानों को नवीनता का पुट देकर उपस्थित किया जा रहा था, यद्यपि इस प्रकार की कुछ कविताएं मनोहारी हैं,हास्य-

विनोदात्मक हैं, किंतु अधिकतर नीरस हैं। इतिवृत्तात्मकता के कारण इस काव्य में नीरसता और शुष्कता है, कल्पना और अनुभूति की गहराई कम है, रसात्मकता एवं कोमल-कांत पदावली का उसमें अभाव है।

स्वच्छंदतावाद –

प्राचीन रुढ़ियों को तोड़कर नई शैलियों में नए काव्य विषयों को लेकर साहित्य-सर्जना की प्रवृत्ति को स्वच्छंदता कहा जाता है। हिंदी में स्वच्छंदतावादी काव्य का पूर्ण विकास छायावादी युग में हुआ। परंतु द्विवेदी युग में श्रीधर पाठक और रामनरेश त्रिपाठी में स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियां देखी जा सकती हैं। प्रकृति-चित्रण और नए विषयों को अपनाने के कारण रामचंद्र शुक्ल ने श्रीधर पाठक को हिंदी का पहला स्वच्छंदतावादी कवि कहा है।

भाषा संस्कार :

द्विवेदी जी के प्रयासों के परिणामस्वरूप इस समय में साहित्य के समस्त रूपों में खड़ी बोली का एकछत्र राज्य स्थापित हो गया। उसका रूखापन जाता रहा, उसमें एकरूपता स्थापित हो गई और वह अपने शुद्ध रूप में प्रकट हुई।श्री हरदेव बाहरी के शब्दों में - "मैथिलीशरण गुप्त ने भाषा को लाक्षणिकता प्रदान की, ठाकुर गोपालशरण सिंह ने प्रवाह दिया, स्नेही ने उसे प्रभावशालिनी बनाया और रूपनारायण पांडेय,मनन द्विवेदी, रामचरित उपाध्याय आदि ने उसका परिष्कार तथा प्रचार करके आधुनिक हिंदी काव्य को सुदृढ़ किया।"

काव्य रूप में विविधता:

इस युग में प्रबंध और मुक्तक,दोनों ही रूपों में काव्य रचनाएं हुईं। प्रबंध रचना के क्षेत्र में इस युग के कवियों को अति सफलता मिली। 'प्रिय-प्रवास', 'वैदही-बनवास', 'साकेत', तथा 'राचरित-चिंतामणि' इस काल के प्रसिद्ध महाकाव्य हैं। 'जयद्रथ-वध','पंचवटी','पथिक','स्वप्न' आदि प्रमुख खंडकाव्य हैं।

मुक्तक और गीत भी लिखे गए,परंतु अधिक सफलता प्रबंध काव्य प्रणयन में ही मिली।

5. विविध छंद :-

इस काल-खंड में विविध छंदों को अपनाने की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है,फिर भी पुराने छंदों और मात्रा-छंदों की ही प्रधानता रही। श्रीधर पाठक ने कुछ नए छंदों तथा मुक्त-छंदों का भी प्रयोग किया।

6. शैली :-

शैली की दृष्टि से इस युग का काव्य विविधमुखी है। गोपालशरण सिंह आदि पुराने ढ़ंग के और नई शैली के मुक्तक लिख रहे थे तथा उपाध्याय एवं गुप्त जी प्रबंध शैली को महत्त्व दे रहे थे । गीति-शैली के काव्यों का सृजन भी होने लगा था।काव्य के कलेवर के निर्माण में स्वच्छंदता से काम लिया गया।

7. अनुवाद कार्य :-

इन सबके अतिरिक्त अंग्रेजी और बंग्ला से अनुवाद करने की प्रवृत्ति, भक्तिवाद की ओर झुकाव आदि अन्य नाना गौण प्रवृत्तियां भी इसी काल में परिलक्षित हो रहीं थी ।

3.7 : द्विवेदी युगीन प्रमुख रचनाकार

1. महावीर प्रसाद द्विवेदी :

द्विवेदी जी का जन्म 1864 ईस्वी में रायबरेली के दौलतपुर गाँव में हुआ | द्विवेदी जी कवि, आलोचक, निबंधकार, अनुवादक और पत्रकार थे | इनके मौलिक और अनुवादित लगभग 80 ग्रन्थ हैं | इनकी मुख्य काव्य-कृतियाँ काव्य-मंजूषा, सुमन तथा अनुवादित में कुमारसंभवसार, गंगालहरी आदि प्रमुख हैं |

2. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

हरिऔध जी का जन्म 1865 ईस्वी में निजामाबाद में हुआ | हरिऔध जी ने हिन्दी के प्रथम महाकाव्य 'प्रिय-प्रवास' की रचना की | इसके अलावा पद्य प्रसून, चुभते चौपदे, रस कलस और वैदेही वनवास जैसे काव्यों की रचना की |

3. मैथिलीशरण गुप्त :

गुप्त जी का जन्म 1886 ईस्वी में चिरगाँव (झाँसी) में हुआ | उनके रचित काव्य-संग्रहों में रंग में भंग, भारत भारती, जयद्रथ वध, साकेत, पंचवटी, झंकार, यशोधरा, द्वापर, जयभारत, गुरुकुल, किसान, विष्णुप्रिया आदि प्रमुख है |

4. नाथूराम शर्मा 'शंकर' :

इनका जन्म 1859 ईस्वी में अलीगढ़ के हरदुआगंज में हुआ | इनके काव्य में देशप्रेम, समाज सुधार, हिन्दी भाषा प्रेम आदि की भावनायें प्रमुख रूप से निरूपित हुई हैं | इनके प्रमुख काव्यग्रन्थ अनुराग रत्न, शंकर-सरोज, शंकर सर्वस्व आदि हैं |

5. रामनरेश त्रिपाठी :

रामनरेश त्रिपाठी जी का जन्म 1889 ईस्वी में जौनपुर जिले के कोइरीपुर गाँव में हुआ | त्रिपाठी जी द्वारा रचित चार प्रमुख ग्रन्थ मिलन, पथिक, मानसी और स्वप्न आदि प्रकाशित हुए हैं |

6. गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही'

सनेही जी का जन्म 1883 ईस्वी में उन्नाव जिले के जोन्धरी गाँव में हुआ | इन्होने देशभक्ति पूर्ण कवितायेँ लिखी है | इन्होनें भारतोत्थान और भारत प्रशंसा आदि काव्य-ग्रन्थ लिखे |

इस प्रकार,हम कह सकते हैं कि द्विवेदी युग आधुनिक काव्य धारा का रमणीय तट है,जो उसे निश्चित और समुचित दिशा की ओर ले जा रहा है। उस समय प्रयोगात्मक काव्य जैसे भावी युगों के काव्य को विकसित होने का अवसर प्राप्त हुआ है।

3.8 : द्विवेदी युगीन प्रमुख रचनाएँ :

आधुनिक कविता के दूसरे पड़ाव(सन् 1903 से 1916) को द्विवेदी-युग के नाम से जाना जाता है। यह आधुनिक कविता के उत्थान व विकास का काल है।सन् 1903 में महावीर प्रसाद द्विवेदी जी 'सरस्वती' पत्रिका के संपादक बने।द्विवेदी जी से पूर्व कविता की भाषा ब्रज बनी हुई थी।लेकिन उन्होंने सरस्वती पत्रिका के माध्यम से नवीनता से प्राचीनता का आवरण हटा दिया।जाति-हित की अपेक्षा देशहित को महत्त्व दिया।हिंदू होते हुए भी भारतीय कहलाने की गौरवमयी भावना को जागृत किया।अतीत के गौरव को ध्यान में रखते हुए भी वर्तमान को न भूलने की प्रेरणा दी।खड़ी बोली को शुद्ध व्याकरण-सम्मत और व्यवस्थित बना कर साहित्य के सिंहासन पर बैठने योग्य बनाया।अब वह ब्रजभाषा रानी की युवराज्ञी न रहकर स्वयं साहित्यिक जगत की साम्राज्ञी बन गई।यह कार्य द्विवेदी जी के महान व्यक्तित्व से ही सम्पन्न हुआ और इस काल का कवि-मंडल उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उनके बताए मार्ग पर चला । इसलिए इस युग को द्विवेदी-युग का नाम दिया गया।

इस काल के प्रमुख कवि हैं - सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', श्रीधर पाठक,गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही,रामनरेश त्रिपाठी, नाथूराम शर्मा 'शंकर', सत्यनारायण 'कविरत्न', गोपालशरण सिंह, मुकुटधर पाण्डेय और सियारामशरण गुप्त, रामचरित उपाध्याय, जगन्नाथ दास रत्नाकर,लोचन प्रसाद पाण्डेय,रूपनारायण पाण्डेय आदि।

इन कवियों की प्रमुख काव्य -रचनाएँ इस प्रकार हैं :

- मैथिलीशरण गुप्त (1886-1965 ई.) : 1.रंग में भंग 2.यशोधरा 3. साकेत 4.पंचवटी 5. द्वापर 6. जयद्रथ वध 7.जयभारत 8.गुरुकुल 9.शकुंतला 10.चंद्रहास 11.भारत-भारती।
- अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध(1865-1941 ई.) : 1.प्रिय-प्रवास 2.वैदेही बनवास 3. चौखे-चौपदे 4. चुभते-चौपदे 5. परिजात 6.काव्योपवन 7.प्रेम-प्रपंच 8.पद्यप्रसून।
- श्रीधर पाठक(1859- 1928 ई.) : 1.एकांतवासी योगी 2. उजड़ा ग्राम 3.श्रांत-पथिक।
- महावीर प्रसाद द्विवेदी(1864-1938 ई.) : 1. काव्य-मंजूषा 2. कविता कलम 3.सुमन।
- रामचरित उपाध्याय (1872-1943 ई.) : 1. राष्ट्रभारती 2.देवदूत 3.भारतभक्ति 4.मेघदूत 5.सत्य हरिश्चंद्र 6. रामचरित 7. चिंतामणि (प्रबंध-काव्य)

- रामनरेश त्रिपाठी (1889-1962 ई.) : 1.पथिक 2.स्वप्न 3. मिलन 4.मानसी ।
- सियाराम शरण गुप्त (1895- 1963 ई.) : 1. मौर्य-विजय 2. नकुल 3. अनाथ 4. आत्मोत्सर्ग 5.बापू 6.विषाद 7.आर्द्रा 8.पाथेय 9. मृण्मयी 10. दैनिकी।
- लोचन प्रसाद पाण्डेय : 1. मेवाड़ प्रेम ।

इन कवियों में से मैथिलीशरण गुप्त इस युग के प्रतिनिधि कवि ठहरते हैं।

3.9 : सारांश

आधुनिक हिंदी साहित्य के निर्माण में महावीर प्रसाद द्विवेदी का योगदान अविस्मरणीय रहा है। इस युग की साहित्यिक और सांस्कृतिक चेतना को दिशा और दृष्टि प्रदान करने में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की महत्वपूर्ण भूमिका थी। भाषा,भाव और विषय की दृष्टि से उनके इस अतुलनीय योगदान के कारण इस युग को ' द्विवेदी युग' नाम दिया गया।

द्विवेदी युग में आकर स्वाधीनता आंदोलन अधिक शक्तिशाली हो गया था। भारतीय राजनीति में यह नौरोजी, गोखले और तिलक का युग था। पूरी चेतना ब्रिटिश साम्राज्यवाद और उपनिवेशवादी शक्तियों को देश से बाहर खदेड़ देने के लिए संकल्पबद्ध रूप में सामने आई। भारतीयता की तलाश में यह काव्य रामकृष्ण, शिवाजी आदि को अपनाकर एक नए रूप में प्रकट हुआ। नारी जागरण संबंधी आंदोलनों की सीधी प्रतिध्वनि ' प्रिय प्रवास', 'मिलन', 'यशोधरा', 'साकेत' जैसे काव्यों में सुनाई दी।

महावीर प्रसाद द्विवेदी इस युग में एक ऐसे सेनानायक के रूप में उभरे

जिन्होंने पूरे युग को प्रभावित किया। उनकी भूमिका न केवल हिंदी नवजागरण की दिशा में मील के पत्थर के समान रही अपितु भारतीय स्वाधीनता आंदोलन को गति व बल देने में भी उनका उल्लेखनीय योगदान रहा।हिंदी नवजागरण की दिशा में महावीर प्रसाद द्विवेदी की सबसे बड़ी देन काव्यभाषा के रूप में खड़ी बोली हिंदी की प्रतिष्ठा करना रहा। गद्य और पद्य दोनों के लिए खड़ी बोली हिंदी को सर्वमान्य बनाने के साथ-साथ उन्होंने खड़ी बोली गद्य को व्याकरणसम्मत रूप दिया। एक मानक भाषा के रूप में उसे आकार प्रदान किया। हिंदी में विराम चिन्हों का प्रयोग भी द्विवेदी जी के प्रयासों की देन है। अंग्रेजी, संस्कृत, मराठी तथा बंगला की उत्कृष्ट कृतियों को अनुदित कर उसके माध्यम से उन्होंने न केवल हिंदी साहित्य को समृद्ध किया अपितु हिंदी पाठकों का मानसिक विकास कर उनकी रुचि अधिक पुष्ट करना, समसामयिक, वैज्ञानिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक व सामाजिक हलचलों के प्रति उन्हें जाग्रत करना, स्वस्थ तथा निर्भीक आलोचना की नींव पुख्ता करना इत्यादि इस युग में मुख्य उद्देश्य थे।

3.10. अभ्यास हेतु प्रश्न :

1. द्विवेदी युग के नामकरण पर प्रकाश डालिए |
2. द्विवेदी युगीन कव्य-प्रवृत्तियों को स्पष्ट कीजिये |
3. द्विवेदी युगीन हिंदी कविता की स्थिति पर प्रकाश डालिए |
4. द्विवेदी युगीन प्रमुख कवियों का उल्लेख करते हुए उनकी रचनाओं पर प्रकाश डालिए |
5. द्विवेदी युगीन कविताओं में राष्ट्रीय चेतना के स्वरूप का विवेचन कीजिये |

3.11 आप ये भी पढ़ सकते हैं :-

1. रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास,नागरी प्रचारिणी सभा काशी

2.बच्चन सिंह ,आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास ,लोकभारती प्रकाशन ,इलाहाबाद

3.डॉ.राम विलास शर्मा,महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण ,राजकमल प्रकाशन दिल्ली

4. डॉ.राम विलास शर्मा,भारतेंदु युग और हिंदी की विकास परंपरा ,राजकमल प्रकाशन दिल्ली

5. रामेश्वर उपाध्याय ,आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी,सूचना प्रसारण मंत्रालय ,भारत सरकार

6. डॉ.रामचन्द्र तिवारी ,हिंदी आलोचना : शिखरों का साक्षात्कार,लोक भारती प्रकाशन ,इलाहाबाद

इकाई 4 : उत्तर छायावादी काव्यान्दोलन एवं गद्य चेतना-II

4.0 परिचय

प्रस्तुत इकाई में उत्तर छायावादी युग में सृजित काव्य एवं गद्य के स्वरूप का अध्ययन किया जाएगा। छायावादी काव्य की समाप्ति के बाद लिखी गई कविताओं में लौकिक समाज के बिम्ब एवं संवेदना, वैयक्तिक गीति काव्य और राष्ट्रीयता के स्वर ध्वनित होते सुनाई दिये मगर

यह स्थिति अधिक दिनों तक स्थिर नहीं रह पाई, समाज में परिवर्तित होती स्थितियों के साथ काव्य के स्वर भी परिवर्तित होते चले गए। उत्तर छायावाद में सौन्दर्योपासना, मानवता के प्रति आस्था, नारी-प्रेम, भक्ति और आराधना आदि बिन्दु समान हैं । बदली है तो अभिव्यंजना प्रणाली। इस युग की कविताएँ स्वतंत्रता की चेतना, राष्ट्रीयता के लिए संघर्ष और स्वतंत्रता के उपरांत उन्मुक्त उल्लास में रची गयी हैं।

सम्पूर्ण पृष्ठभूमि पर विचार करने पर यह पता चलता है कि देश में स्वतंत्रता को लेकर जनता ने जो सपने देखे थे आजादी मिलने के पश्चात उससे मोहभंग हो गया। समकालीन कवियों के काव्य में यह मोहभंग का अवसाद दिखने लगा है। सं 1960 ई. के बाद की पीढ़ी इलियट, पाउंड और बीटल कवियों से प्रभावित हो रही थी। सं 1960 ई. के बाद अस्वीकृति,निषेध और मोहभंग का प्रसार होने लगा। इस मोहभंग को अमृता प्रीतम, जाँनिसार अख्तर जैसे अनेक कवियों ने महसूस किया और अपने काव्यों के माध्यम से अभिव्यक्त किए। हिन्दी की अकविता, बांग्ला की क्षुधातर पीढ़ी और मराठी का दलित साहित्य जैसे अनेक आंदोलन उठ खड़े हुये। अतः कहा जा सकता है कि इस युग की काव्य धारा में जो साहित्य रचा गया वह आम जनता का साहित्य था। मोहभंग को साहित्य में दर्शाया गया।

4.1 इकाई के उद्देश्य

- उत्तर छायावादी काव्य के स्वरूप का विवेचन करना।
- प्रमुख छायावादोत्तर कवि और उनकी काव्य प्रवृतियों का विश्लेषण करना।
- प्रगतिवाद और प्रयोगवाद को परिभाषित करना।
- नयी कविता एवं नवगीत की विशेषताओं का वर्णन करना।
- समकालीन कविता एवं अन्य काव्य परिवर्तनों की पहचान करना।
- दलित चेतना, स्त्री चेतना तथा जनजातीय चेतना की कविताओं का मूल्यांकन करना।

4.2 उत्तर छायावादी काव्य का स्वरूप

उत्तर छायावादी युग संक्रमण का युग रहा। साहित्य के क्षेत्र में यह युग एक नए आंदोलन की शुरूआत कर रहा था । उत्तर छायावादी काव्य छायावाद के अंत और प्रगतिवाद के आरंभ का समय है। उत्तर छायावादी काव्य छायावाद का विकसित रूप है। छायावाद की अंतिम सीमा 1936 ई. मानी गई है। अतः 1936 ई. के बाद से उत्तर छायावाद युग का प्रारम्भ होता है। उत्तर छायावादी काव्य में राष्ट्रीय-अस्मिता, राष्ट्रीय चेतना, सांस्कृतिक-गौरव, प्रकृति प्रेम और वैयक्तिक अनुभूतिजन्य रचना की प्रधानता रही । प्रेम और मस्ती की रचनाएँ खूब हुईं, जो कि सकारात्मक भावनाओं का संचार करती रहीं । उत्तर छायावादी युग में तीन प्रकार का साहित्य रचा गया -

- **परिवेशगत संवेदना से युक्त काव्य एवं लौकिक काव्यधारा :** इस काव्यधारा के कवियों की श्रेणी में पंत, निराला और महादेवी आदि प्रमुख हैं । इन कवियों ने लौकिक एवं संवेदनायुक्त काव्य की रचना की है।

  व्यक्तिनिष्ठा एवं वैयक्तिक गीति काव्यधारा : वैयक्तिक गीति काव्य धारा के कवियों में हरिवंश राय बच्चन, नरेंद्र शर्मा, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', भगवती चरण वर्मा, शंभुनाथ सिंह, गोपाल सिंह नेपाली, आरसी प्रसाद सिंह आदि प्रमुख कवि हैं।

- **ओजपूर्ण एवं राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा :** इस काव्यधारा के अंतर्गत मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', रामधारी सिंह 'दिनकर' तथा सियारामशरण गुप्त, उदयशंकर भट्ट, श्यामनारायण पांडेय आदि कवि को रखा जा सकता है।

4.3 प्रमुख छायावादोत्तर कवि और उनकी रचनाएँ

प्रमुख छायावादोत्तर कवियों में पंत(स्वर्ण-किरण, स्वर्ण-धूलि, युग-पथ), निराला(अनामिका, परिमल ,गीतिका), महादेवी(नीरजा, यामा, संध्य-गीत, दीप शिखा), हरिवंश राय बच्चन (निशा-निमंत्रण, एकांत-संगीत, मिलन-यामिनी), नरेंद्र शर्मा(प्रभातफेरी, प्रवासी के गीत, पलाश वन, कामिनी), रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'(मधुलिका, अपराजिता, किरण बेला, वरर्षांत के बादल), माखनलाल चतुर्वेदी (द्वापर, सिद्धराज,जय भारत, बिष्णुप्रिया), बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'(कुंकुम, रश्मि रेखा, अपलक, क्वासि), रामधारी सिंह(रेणुका, हुंकार, रसवंती, द्वंद्वगीत), 'दिनकर'गोपाल सिंह नेपाली(पंछी, रागिनी, उमंग), भगवती चरण वर्मा(प्रेम-संगीत, मानव, एक दिन), आरसी प्रसाद सिंह(कलापी, जीवन और यौवन, नई दिशा) तथा सियारामशरण गुप्त (मृण्मयी, उन्मुक्त, दैनिकी) आदि कवियों को शामिल किया जा सकता है।

4.3.1 लौकिक एवं संवेदनायुक्त काव्य : लौकिक काव्य से अभिप्राय उस साहित्य से है जो लोक संवेदना से उपजकर उसका संचयन और प्रकटीकरण करता है। इसके साथ ही वह लोक जीवन से अविच्छिन्न रहकर लोक का कंठहार बना रहता है।

पं. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला :- छायावाद से हटकर निराला के गीत संभावनाओं से निर्मित हैं। उनके गीतों में लोकोन्मुखता की शक्ति का विकास होता गया। उनका लोकोन्मुख व्यक्तित्व प्रारम्भ से ही उनकी छायावादी कविताओं में रहा। निराला का जीवन संघर्ष का असर उनकी लेखनी पर भी पड़ा । उन्होंने प्रेम-सौन्दर्य के साथ जीवन के अन्य अनुभवों को भी समेटा । वे व्यक्तिगत प्रणय के साथ लोकजीवन के सुख-दुख, संघर्ष और यातना को भी गहराई के साथ चित्रित करते रहे। अतः उनकी व्यक्तिगत प्रणयानुभूति भी लोक-गंधित उभार लाती है। उनके लोकोन्मुखता की प्रवृति दो रूपों में सामने आई - (क) छायावाद से भिन्न प्रगतिवादी कविताएँ लिखना और (ख) छायावादी काव्यधारा को और अधिक लोकोन्मुख करना ।

ध्यातव्य है कि प्रगतिवादी कवियों की कविताओं में छंद, भाषा और भाव सभी छायावाद की दृष्टि से मुक्त हैं। इस प्रकार की कविताओं में 'कुकुरमुत्ता', 'गरम पकौड़ी', 'प्रेम-संगीत', 'रानी और कानी', 'खजोहरा', 'मास्को डायलाग्स', 'स्फटिक शिला' और 'नए पत्ते' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उपर्युक्त कविताओं की भाषा लोक भाषा है तथा शैली और मुहावरे भी लोक के हैं। निराला इस बात से अवगत थे कि लोक जीवन के लिए उसकी भाषा आवश्यक होती है, लोक जीवन के भाव, दृश्य और व्यापार के साथ उसकी भाषा विशेष महत्त्व रखती है ।

निराला ने छायावादी कविता 'अणिमा', 'अर्चना', 'आराधना' आदि स्वानुभूतिपरक गीत लिखने के साथ-साथ विविध क्षेत्रों के व्यक्तियों पर कविताएँ लिखी हैं जैसे - 'विजयलक्ष्मी पंडित', 'प्रेमानन्द जी', 'संत रविदास', 'प्रसाद जी', 'महात्मा बुद्ध' आदि। ये गीत कई तरह के है - प्रेम की संवेदना, प्रार्थनापरकता और मानवीय संवेदना आदि के गीत की अभिव्यक्ति हुई है। निराला की यह विशेषताएँ 1938 ई. से पूर्व की कविताओं में दृष्टिगोचर होती हैं । उनका अनुपात थोड़ा सा भिन्न अवश्य है। 'तुलसीदास' उत्तर छायावाद की इनकी विशिष्ट देन है, जिसमें भारत को सांस्कृतिक और सामाजिक पराजय के गर्त से निकालने का दृढ़ संकल्प है। लोकवादी कविताएँ निराला की इस अवधि की नयी देन हैं। इन कविताओं में ठहराव को तोड़ने की शक्ति है जो जन जीवन को समग्र रूप से जोड़ती है। इस अवधि की कविताओं में निराला की जीवनानुभूति है, उसमें टूटन और पराजय की प्रधानता है जो कि भक्ति की ओर अग्रसर करती है। कवि का असंतुलित मानस प्रेम, भक्ति, खुलेपन और उलझाव कुछ ऐसा समन्वित रूप प्रस्तुत करता है कि कविताएँ उस उलझाव से ग्रसित सी प्रतीत होती हैं। गौरतलब है कि निराला ने संवेदना और अनुभव के द्वारा जनजीवन को ग्रहण किया है । इसी वजह से जनजीवन समस्त संवेदना के साथ उनके काव्य में उभर कर आया ।

सुमित्रानंदन पंत :- उत्तर छायावाद युग के काव्य-साहित्य में देखे तो पंत अपने चिंतन और विषय में अधिक विकासशील रहे हैं। पंत के माध्यम से छायावाद को उत्तर छायावाद में नया चिंतन और नया विषय-जगत प्राप्त हुआ। 'युगांत' से 'ग्राम्या' तक पंत की काव्य-यात्रा निःसंदेह प्रगतिवाद के निश्चित व प्रखर स्वरों की उद्‌घोषणा करती है। 1936 ई. मे 'युगांत' की घोषणा कर के पंत ने 1939 ई. में 'युगवाणी' और 1940 ई. में 'ग्राम्या' की रचना की। पंत के 'युगांत' के बाद दो सोपानों पर काव्य का विकास होता है - मार्क्सवाद के भौतिक दर्शन और अरविंद दर्शन। पंत मार्क्सवाद के भौतिक दर्शन और जनजीवन के सत्यों की ओर उन्मुख हुये। निराला ने संवेदना और अनुभव से जन जीवन को अपनाने के साथ मार्क्सवादी दर्शन को चिंतन के स्तर पर ग्रहण किए। मार्क्सवादी दृष्टि से पंत ने अपनी कविताओं में ग्रामीण जीवन के यथार्थ को चित्रित किया है ।

बृहद्‌ ग्रंथ मानव जीवन का, काल ध्वंस से कवलित,
ग्राम आज है पृष्ठ जनों की करुण कथा का जीवित!
युग युग का इतिहास सभ्यताओं का इसमें संचित,
संस्कृतियों की ह्रास वृद्धि जन शोषण से रेखांकित।

'ग्राम्या' के बाद पंत अरविंद दर्शन से प्रभावित होते हैं। प्रगतिवाद के भौतिक दर्शन की ओर से उनके भटके हुये विचार पुनः आध्यात्मिक लोक की ओर उन्मुख होने लगते हैं। अतः विचार के स्तर पर छायावाद को एक नयी दिशा और आधार प्राप्त होता है। वे मार्क्स के भौतिकवाद से असन्तुष्ट होते हुये भी उसे आवश्यक मानते हैं, किन्तु पर्याप्त न मानकर ही पंत अरविंद दर्शन में भौतिकवाद एवं अध्यात्मवाद को समन्वित करने की अन्वेषणा में लग जाते हैं। 'स्वर्णकिरण', 'स्वर्णधूलि', 'शिल्पी', 'लोकायतन' आदि परवर्ती कविताओं में पंत ने समन्वय को स्वर दिए हैं। किन्तु इस विकास यात्रा में कवि का काव्यपक्ष दबता गया, जबकि धारणापक्ष उठता गया। वे मानव समाज की समस्याओं, उनके समाधानों तथा नवीन विचारों को अनुभूति स्तर पर न स्वीकार कर धारणा एवं आकांक्षा के स्तर पर स्वीकारते हैं ।

महादेवी वर्मा :- महादेवी वर्मा द्वारा रचित 'दीपशिखा' में भावधारा का उत्कर्ष रूप दिखाई देता है। अतः 'दीपशिखा' उनकी उत्कृष्ट रचना है। उनके काव्य का मुख्य विषय प्रेम रहा। प्रेम के दोनों पहलुओं संयोग और वियोग में उभरने वाले प्रेम के अनेक दृष्टियों को अपने अनुभव के आलोक में महादेवी वर्मा देखती हैं। महादेवी के काव्य की मूल संवेदना वेदना है, जो विरहजन्य है। करुण वेदना और निराशा से आक्रांत इनका प्रारम्भिक काव्य 'दीपशिखा' आलोक प्राप्त करने में सफल हो सका है। आशा, मिलन एवं उल्लास भाव अग्रसर है -

हुए शूल अक्षत मुझे धूलि चन्दन।
अगरु धूम-सी साँस सुधि-गंध सुरभित।

सब बुझे दीपक जला लूँ।
घिर रहा तम आज दीपक-रागिनी अपनी जगा लूँ।

महादेवी में गीति काव्य के उत्कर्ष की सुंदर भावनाएँ हैं। लेकिन रहस्यात्मकता का आवरण उनके प्रभाव की तीव्रता को कुंठित करने में सफल होता है। महादेवी वर्मा अपनी संवेदनाओं को अलग-अलग प्रतीकों और रूपकों में अभिव्यक्त करती हैं । लौकिक संवेदना रहस्यवादी आभास से लिपटकर एक नए अर्थ का विस्तार करती हैं, किन्तु उनकी लौकिक मूर्तता, प्रत्यक्षता तथा तीव्रता विलीन हो जाती है। महादेवी वर्मा की कविताओं में दीप, चन्दन, मंदिर, क्षितिज, आकाश, मेघ, करूण, धूल, सागर, विद्युत आदि प्रतीकों का प्रयोग, भाव की अभिव्यक्ति के लिए बार-बार हुआ है इसी कारण वे रहस्यात्मक संकेत में उलझ जाते हैं। इन सब के बावजूद महादेवी वर्मा छायावाद की विशिष्ट और समर्थ कवयित्री हैं और 'दीपशिखा' उनकी विशिष्ट काव्य कृति है। रहस्य एवं संकोच का आवरण होते हुये भी कवयित्री की अंतरंग-निजता अनेक गीतों में प्रवाहमान रहती है। । सूक्ष्म चित्रात्मकता उनकी काव्य की दूसरी विशेषता रही है। उनके चित्र; रूप-जगत और भाव-जगत दोनों के हैं। कवयित्री के मानसिक संदर्भ में ही रूप जगत के चित्र नियोजित होते हैं। इनके गीत आत्मानुभूति से उपजे, भाषिक उत्कृष्टता के साथ, स्वर लययुक्त, कोमलता , बिंब ग्रहण, पद संतुलन, शब्दों के चयन आदि सभी मायने में विशेष हैं ।

4.3.2 वैयक्तिक गीति काव्य

व्यक्तिनिष्ठा एवं वैयक्तिक गीति-काव्यधारा पर जब विचार करते हैं तो हम पाते हैं कि वैयक्तिक गीति काव्य तथा छायावादी काव्य में कवि दृष्टि एवं विषय की समानता रही है। व्यक्तिवादी कवियों की दृष्टि भी रोमानी रही। इनकी कविताओं में आत्मसंपृक्ति और उत्तेजना मिलती है। क्योंकि इनका संबंध वस्तु जगत से नहीं, अपितु वस्तुजगत की प्रक्रिया से उत्पन्न अपने निजी सुख-दुख के आवेग से संबद्ध थे। सौन्दर्य और प्रेम तथा उल्लास और विषाद की अनुभूति इनके काव्यों की विशेषता रही है। गीत को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया गया है, क्योंकि छायावादी काव्य की प्रकृति की ही भाँति व्यक्तिवादी काव्य की प्रकृति भी गीतात्मक ही रही। इनकी काव्य में संकोच, रहस्यात्मकता और आदर्शवादिता को महत्व नहीं दिया गया। । इनकी वेदना छायावादी कवियों की तरह सामान्य न होकर वैयक्तिक है जो अनुभव के बिम्ब को पूरी सफलता के साथ उकेरता है। व्यक्तिवादी गीति कविता 'मैं' को माध्यम बनाकर अपना अनुभव व्यक्त करती है। यहाँ 'मैं' अपने समूचे राग-विराग के साथ स्वतः निकलता है।

इस काव्य की प्रवृतियों में लौकिक प्रेम केंद्र विषय रहा। इन कविताओं में प्रेम के संयोग-वियोगजन्य उल्लास, उदासी, टूटन, पीड़ा, असंतोष आदि का सघन स्वर मुखर हुआ है। लौकिक सौंदर्य-आलंबन पर ठहरे होने के कारण इनका प्रेम अधिक मूर्त रूप धारण करता है। बच्चन के काव्य 'निशा निमंत्रण' और 'एकांत संगीत' प्रेम के अवसाद को मुखर करती है तो 'मिलन-यामिनी' मिलन की मादकता और उमंग को। नरेंद्र शर्मा के काव्य में लौकिक विरह की व्यथा की प्रधानता

है, तो अन्य कृतियों में प्रेयसी के सौंदर्य, भोग और ऊष्मा के मादक चित्र भी मौजूद हैं। इस धारा का मूल स्वर प्रेम है। अनुभवों के इन सत्यों को कवि का मन स्वच्छंद हृदय तथा निर्लिप्त भाव से गाना चाहता है। 'मधुकलश' में हरिवंश राय बच्चन ने अपने और सामाजिक तनाव को अनुभव करते हुये उसकी अभिव्यक्ति की हैं -

शत्रु मेरा बन गया है छल रहित व्यवहार मेरा,
कह रहा जग वासनामय हो रहा उद्गार मेरा।
क्या किया मैनें नहीं जो कर चुका संसार अबतक ?
वृद्ध जग को क्यों अखरती है क्षणिक मेरी जवानी?

सत्यतः इस धारा की कृतियों में जो निराशा और उदासी के स्वर आये हैं वह केवल प्रेम मूलक सौंदर्य के साथ; उनका स्वर जीवन के अन्य संदर्भों में भी मुखर हुआ है। देश की पराधीनता, सामाजिक रूढ़ियों आदि से गुजरता हुआ युवा मानस बार-बार अपने आप को टूटता हुआ पा रहा था। आत्मपीड़न, टूटन, कुंठा आदि के नए पर्त लपेट लेता और उसे अपनी काव्य के माध्यम से अभिव्यक्त करता चला जाता।

इन कवियों के पास भावुक हृदय के अनुभव थे। जीवन दृष्टि के अभाव में ये व्यक्तिवादी-अनुभव, निराशा, मृत्यु की छाया और नियति बोध से ग्रसित हैं। इनका अनुभव जहाँ अपनी तीव्रता में सूक्ष्म, परंतु खुले हुये बिंबों की रचना में एक नए साहित्यिक सौंदर्य की सृष्टि करते हैं, वहाँ अपने अकेलेपन, उदासी और अपने दोहराव में क्षयोन्मुख दृष्टिगोचर होने लगता है। इस धारा के कवि सामाजिक और आध्यात्मिक आदर्श से व्यक्ति को जोड़ने में बहुत ज्यादा सफल नहीं हो पाये, क्योंकि इनकी दृष्टि रोमानी थी । एक ओर काव्यात्मक दृष्टि से सपाट हो जाता है तो दूसरी ओर अपनी सार्थकता को किसी भी प्रकार प्रमाणित नहीं कर पाता। जैसे -

भटका हुआ संसार में
अकुशल जगत व्यवहार में
कितना अकेला आज मैं
संघर्ष में टूटा हुआ
दुर्भाग्य से लूटा हुआ
परिवार से छूटा हुआ
किन्तु अकेला आज मैं।" - एकांत संगीत

व्यक्तिवादी अनुभव यात्रा के दो परिणाम दिखाई देते हैं। पहला यह विश्वास कि जीवन क्षणभंगुर है। दूसरा यह कि कवि अपने गमों को भूलने मधु का सहारा लेता है। वह अपनी मादकता, प्रेम या उल्लास को तीव्र करने के लिए मधुशाला के मार्ग पर चल पड़ता है लेकिन वह मार्ग है - **'पाठकगण हैं पीनेवाले पुस्तक मेरी मधुशाला'**।

यथार्थतः यहाँ अभिव्यक्तिमूलक सादगी वैयक्तिक गीति कविता की बहुत बड़ी देन है। कवि अपने गहरे भावों की अभिव्यक्ति सीधे-सादे शब्दों में करता है। कवि की शक्तियाँ और अशक्तियाँ बड़े स्पष्ट रूप में सामने आती हैं। शक्तियों की यह विशेषता है कि वे अस्पष्ट बिंबों में

खुद को उलझाकर अपनी तीव्रता एवं प्रभाव नष्ट नहीं करती। अशक्तियाँ रहस्यात्मकता का लाभ उठाकर अपनी महानता को आभासित नहीं कर पाती हैं । इन कवियों की संवेदनाएँ व्यक्तिवादी हैं। इन कवियों की काव्य-भाषा संस्कृतनिष्ट होते हुये भी शब्द और पद हमें जाने-पहचाने से लगते हैं। इस धारा के प्रमुख कवियों में रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', नरेंद्र शर्मा तथा हरिवंश राय बच्चन आदि हैं।

हरिवंश राय बच्चन :- हरिवंश राय बच्चन वैयक्तिक गीति काव्य के सर्वोत्तम कवि हैं। वे मूलतः आत्मानुभूति के कवि हैं। इनकी रचनाएँ प्रभावोत्पादक एवं मर्मस्पर्शी हैं 'निशा निमंत्रण', 'एकांत संगीत' तथा 'मिलन यामिनी' के गीत इस दृष्टिकोण से गीतिकाव्य की उपलब्धियाँ हैं तो अवधारणाएँ अनुभूति के रंग में रंगी हुई हैं। हरिवंश राय बच्चन ने स्वानुभूति-जन्य-सौन्दर्य, सुख-दुख और प्रेम के गीत अति सहजता से गाए हैं। हरिवंश राय बच्चन ने अपनी गीतों में सहज भाषा तथा अनुभूति की निश्छलता के फलस्वरूप काव्य को नवीन गरिमा प्रदान की हैं। उन्होंने निर्मम भाव से अपनी जानी-पहचानी दुनिया को छोड़ कर यथार्थ की नयी दुनिया में प्रवेश किया। जो आज भी अपनी प्रभावोत्पादकता के लिए सुविख्यात हैं ।

नरेंद्र शर्मा :- नरेंद्र शर्मा के गीतों की विशेषता महत्वपूर्ण है। उनके गीतों में आत्मीयता व चित्रात्मकता है। सुख-दुख गीतों के माध्यम से सीधे उनके प्रेमपात्र को निवेदित है। माध्यम के अलावा किसी अवधारणा या छलकपट को अवसर नहीं मिलता। गीतों का परिवेश कवि के अनुभवों को जीवंत बनाता है। उनके गीतों को पढ़ने से अनुभव होता है कि जैसे उन्होंने हमारे ही अनुभवों को शब्दबद्ध किया है। नरेंद्र शर्मा के गीतों का विषय प्राकृतिक सौंदर्य, मानवीय सौंदर्य तथा उससे उत्पन्न विरह-मिलन की अनुभूतियाँ। कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

मैंने भी चाहा फिर आये
बिछुड़ा जीवन साथी मेरा।
कच्चे धागे सा सुख सपना
टूट गया सो टूट गया"
"फिर फिर रात और दिन आते
फिर फिर होता साँझ सवेरा,

नरेंद्र शर्मा ने सामाजिक यथार्थ के चित्रण के साथ ही साथ विसंगतियों के विरुद्ध विद्रोह के स्वर मुखर किए हैं। उनके गीतों में रूमानी दृष्टि की प्रधानता है तथा सामाजिक चिंतन का पुट विद्यमान है

'मेरे गीत बड़े हरियाले'
मैंने अपने गीत सघन बन
अन्तराल से खोज निकाले।

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' :- इस काव्यधारा के सुप्रसिद्ध कवि रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' के काव्य में तीव्र रोमानी संवेदना परिलक्षित होती है। रूपासक्ति, पीड़ा, वासना एवं जिजीविषा में इनका उद्दाम रूप दिखाई देता है साथ ही श्रृंगारिकता भी लक्षित होती है । उनके यायावर प्रवृति के परिणामस्वरूप उनके काव्य में समाज का यथार्थ रूप दृष्टिगोचर होता है।

4.3.3 राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा

प्रत्येक राष्ट्र अपनी सांस्कृतिक विशेषताओं से प्रसिद्धि प्राप्त करता है। संस्कृति राष्ट्र में समाहित होती है। आधुनिक युग में 'राष्ट्रीय' शब्द आधुनिकता के समावेश से प्रस्तुत हुआ है। संप्रदाय, जाति, धर्म, निश्चित भू-भाग आदि के स्थान पर समग्र देश, उसमें निवास करने वाली सभी जातियों,संप्रदायों, विभिन्न भूखंडों, रीति-रिवाजों के लोगों का संश्लिष्ट, सामूहिक रूप उभर कर सामने आया। राष्ट्रीयता के अर्थ का विकास राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा की कविताओं में सम्पूर्ण भारतवर्ष की अखंडता और एकता के रूप में हुआ। अंग्रेजी शासन के चलते पूरे भारतवर्ष ने यह महसूस किया कि चाहें वे किसी भी धर्म, जाति के हों पर हैं तो अंग्रेजों के गुलाम ही और जिस कारण उन्होंने समान यातना का भी अनुभव किया। उनके भीतर मुक्ति की चेतना समस्त राज्यों में एक साथ होने लगा। अतः राष्ट्रीयता का जो स्वरूप आधुनिक काल में विकसित हुआ, उसके मुख्य आधार हैं - अंग्रेजी शासन की स्थापना पूरे देश में होना, समस्त भारतीय प्रजा का अंग्रेजी शासन से उत्पन्न एक समान यातना का अनुभव करना, तथा पूरे देश में स्वाधीनता आंदोलन और मुक्ति चेतना का प्रसार होना।

भारतीय और पाश्चात्य राष्ट्रीयता के तत्त्वों में भिन्नता थी । पश्चिम में राष्ट्रीयता का विकास सबसे पहले होता है, खासकर इंग्लेंड में। भारतीय में जहाँ स्व-रक्षा का भाव प्रधान था, वहीं पाश्चात्य में स्व-विकास का। भारत में भाषा और संस्कृति में विविधता होते हुये भी राष्ट्रीय एकता प्रमुख है। प्राचीन आध्यात्मिकता तथा प्राचीन संस्कृति राष्ट्रीय एकता का वह मूल स्रोत है जो सबको सूत्रबद्ध करता है। अतः राष्ट्रीयता की मुख्य बातें जो लक्षित होती हैं, वह इस प्रकार है- प्रथमतः पराधीनता की यातना को अनुभव को महसूस करना तथा उस यातना से मुक्ति पाने के लिए किए गए प्रयत्न। द्वितीयक : अलगाव और पश्चिमी सभ्यता की भावना से आक्रांत होती भारतीय चेतना के लिए, एकता एवं स्वाभिमान का बल फूंकने के लिए अपनी प्राचीन संस्कृति के समुज्ज्वल रूप का प्रस्तुतिकरण, तथा तृतीयक : उपयोगी आधुनिक मूल्यों के संदर्भ में राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिकता का पुनर्विचार एवं पुनर्गठन। स्वतंत्रता के पश्चात राष्ट्रीयता के मुख्य तीन उद्देश्य रहें हैं - देश का विकास, राजनीतिक व्यवस्था की प्रतिष्ठा और नवीन राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय परिवेशों के कारण उत्पन्न समस्याएँ तथा उनके समाधान खोजने की चेष्टा। यही उद्देश्य तत्कालीन काव्य-परिवेश में दिखाई भी देते हैं |

राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति आधुनिक हिन्दी कविता में 'भारतेन्दु-युग' की कविताओं से प्रारम्भ होता है। 'भारतेन्दु-युग' से लेकर समकालीन कविताओं में राष्ट्रीयता का रूप विकसित होता रहा । दिनकर, मैथिलीशरण गुप्त, माखन लाल चतुर्वेदी, नवीन आदि कवियों की कविताओं में हम राष्ट्रीयता की झलक देखते हैं।

1938 ई. के आस पास राष्ट्रीय जीवन की यातना, मुक्ति और आक्रोश के स्वर में एक नए तरह का उभार लक्षित होता है। इस समय साहित्य का स्वर अधिक यथार्थवादी, उग्र और लोकोन्मुख होता गया। प्रगतिवाद ने शोषक और शोषितों के रूप को लक्षित किया साथ ही

भारतीय राष्ट्रीयता को उसके जन-जीवन से जोड़ा है। राष्ट्रीयता का संबंध राष्ट्र की आत्मा, चेतना और उसकी अस्मिता से होती है। यह चेतना अस्थिर रहती है और नये-नये परिस्थितियों में अनेक नये कोण उभारती है। इसका उदाहरण 'यशोधरा', 'पंचवटी', 'साकेत', 'कामायनी', 'प्रिय-प्रवास', 'राम की शक्तिपूजा' आदि महत्वपूर्ण काव्य हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रतिभा सम्पन्न कवियों ने संस्कृति के उदात्त अतीत रूप को वर्तमान जीवन के परिप्रेक्ष्य में स्वीकारा है। छायावादोत्तर कविताओं में यह प्रयास लक्षित होता है। राष्ट्रीय-सांस्कृतिक परिवेश का चित्रण इस कालावधि में प्रकाशित महत्वपूर्ण कृतियों में हुआ है। यथा - 'कुरुक्षेत्र', 'नकुल', 'रश्मिरथी', 'जय-भारत' आदि।

मैथिलीशरण गुप्त :- मैथिलीशरण गुप्त इस धारा के प्रमुख कवियों में से एक हैं। इन्होंने तत्कालीन राष्ट्रीय चेतना को अपने काव्य का विषय बनाया है। इनकी रचनाओं में वैविध्य की स्थिति देखी जा सकती है। महात्मा गांधी ने मैथिलीशरण गुप्त को राष्ट्र कवि कहे जाने का गौरव प्रदान किया।

मैथिलीशरण गुप्त की कविताएँ राष्ट्रीय विचारधारा की विशेषता से ओत-प्रोत हैं। राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में भारतीय संस्कृति का नवीनतम रूप प्रस्तुत हुआ है। उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं - 'यशोधरा', 'भारत-भारती', 'पंचवटी', 'द्वापर', 'सिद्धराज', 'जयद्रथ वध' आदि। उनकी कृतियों में राष्ट्रीयता, युगबोध तथा जन-जागरण की प्रवृति विद्यमान है। उपनी कृति 'अनघ' में सत्याग्रह की प्रेरणा देते हुये राष्ट्र-सेवा, राष्ट्र-रक्षा आदि की भावनाओं को चित्रित किया। मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत-भारती' राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत ऐसी रचना थी जिसमें उन्होंने भारतवासियों को पराधीनता की बेड़ियों से मुक्ति पाने का संदेश दिया है। देखें-

"शासन किसी परजाति का चाहे विवेक विशिष्ट हो।
संभव नहीं है किन्तु जो सर्वांश में वह इष्ट हो।।"

उनका मानना था कि कवि का कर्तव्य केवल मनोरंजन करना नहीं होता अपितु उसके द्वारा सृजित कविता लोककल्याण की विधायक भी होनी चाहिए।

"केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए।
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।।"

माखन लाल चतुर्वेदी :- माखन लाल चतुर्वेदी ने राष्ट्रीय-सांस्कृतिक विचारधारा की कविताएँ लिखीं। अपनी कविताओं के माध्यम से उन्होंने पराधीन राष्ट्र की व्यथा, स्वाधीनता-सेनानियों के अदम्य उत्साह, अंग्रेज़ों के अत्याचारों आदि का बखूबी चित्रण किया। माखन लाल चतुर्वेदी की 'रसिक मित्र' पहली रचना है जो ब्रजभाषा में प्रकाशित हुई थी। उनकी भाषा प्रवाहपूर्ण, सुबोध, ओज और प्रसाद गुण से पूर्णतः सम्पन्न है। उनकी शैली भावप्रधान है। माखन लाल चतुर्वेदी की भाषा-शैली पर आलोचकों ने बेडौल होने का आरोप लगाया। उनकी कविताओं की भाषा में कहीं बुंदेलखंडी का ग्राम्य प्रयोग है तो कहीं कठिन संस्कृत शब्दों का प्रयोग है। नियमों में बंधकर काव्य की

रचना उन्हें स्वीकार्य नहीं था। उनके लिए काव्य में कुछ महत्वपूर्ण था तो उसकी अभिव्यक्ति और उसकी मौलिकता। उन्होंने जनमानस में समझौते के खिलाफ चेतना जाग्रत की। वे लिखतें हैं -

"अमर राष्ट्र, उद्दंड राष्ट्र , उन्मुक्त राष्ट्र , यही मेरी बोली
यह सुधार समझौतों वाली, मुझको भाती नहीं ठिठोली।"

माखन लाल चतुर्वेदी की काव्य में मुख्यतः राष्ट्रीयता, प्रेम, प्रकृति और अध्यात्म का पुट विद्यमान है। इनकी सबसे महत्वपूर्ण और प्रसिद्ध रचना 'पुष्प की अभिलाषा' है। इस कविता के माध्यम से इन्होंने सम्पूर्ण स्वतन्त्रता सेनानियों के मनोभावों को चित्रित किया है-

"चाह नहीं मैं सुरबाला के
गहनों में गूँथा जाऊँ,
चाह नहीं, प्रेमी-माला में
बिंध प्यारी को ललचाऊँ,
चाह नहीं, सम्राटों के शव
पर हे हरी डाला जाऊँ,
चाह नहीं देवों के सिर पर
चढ़ूँ भाग्य पर इठलाऊँ।
मुझे तोड़ लेना वनमाली!
उस पथ पर देना तुम फेंक,
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने
जिस पथ जावें वीर अनेक।"

रामधारी सिंह दिनकर :- राष्ट्रकवि के नाम से प्रसिद्द दिनकर जी हिंदी साहित्य के इस कालावधि के सबसे सशक्त कवि हैं। रामधारी सिंह दिनकर का महत्त्व राष्ट्रीय एवं ओजपूर्ण कविताएँ लिखने के लिए है। इनकी रचनाओं में राष्ट्रप्रेम के साथ-साथ विचार और संवेदना का समन्वय भी दिखाई देता है-

भारत नहीं स्थान का वाचक, गुण विशेष नर का है,
एक देश का नहीं, शील यह भू-मण्डल भर का है।
जहाँ कहीं एकता अखण्डित, जहाँ प्रेम का स्वर है,
देश-देश मे वहाँ खड़ा, भारत जीवित भास्वर है।"

व्यक्तिगत प्रेम सौंदर्यमूलक कविताएँ और राष्ट्रीय कविताएँ कवि की संवेदना से स्पंदित हैं। सहजता, लोकोन्मुखता इनकी कविताओं की विशेषताएँ हैं। साथ ही मानव जीवन के अस्तित्व की समग्र संचेतना से ओत-प्रोत काव्य-पंक्तियाँ भविष्य के लिए उसे सावधान भी करती हैं -

'सावधान मनुष्य ! यदि विज्ञान है तलवार,

तो इसे दे फेंक, तजकर मोह, स्मृति के पार'

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' : - इन्होंने प्रेम, सौंदर्य एवं राष्ट्रीय- सांस्कृतिक भावनाओं का चित्रण किया है । जिसमें से राष्ट्रीयता प्रमुख है। कवि क्रांति का पक्षधर है-

सावधान! मेरी वीणा में, चिनगारियाँ आन बैठी हैं,
टूटी हैं मिजराबें, अंगुलियाँ दोनों मेरी ऐंठी हैं।
कंठ रुका है महानाश कामारक गीत रुद्ध होता है,
आग लगेगी क्षण में, हृत्तलमें अब क्षुब्ध युद्ध होता है,
झाड़ और झंखाड़ दग्ध हैं -इस ज्वलंत गायन के स्वर से
रुद्ध गीत की क्रुद्ध तान हैनिकली मेरे अंतरतर से!

राष्ट्रीय धारा के मान्य कवि बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के काव्य ग्रन्थों में 'कुमकुम', 'रश्मिरेखा', 'अपलक', 'क्वासि', 'उर्मिला' (महाकाव्य), तथा 'मृत्यु के बाद प्राणार्पण' (खंड काव्य) आदि प्रमुख हैं। उन्होंने प्रकृति को मानव चिरपोषिका के रूप में स्वीकार किया। प्रकृति का मानवी रूप भी उनके काव्य में चित्रित है। उद्यान का वर्णन देखने लायक है -

"फूली-फूली विपिन भर में डोलती है चमेली
मानो मुग्ध, श्वसुर गृह में, पा गई प्रेम-बेली।" - उर्मिला

सुन्दर एवं अनूठा एक और उदाहरण देखा जा सकता है जहाँ विरह-व्यथा से पीड़ित प्रकृति भी कवि को अश्रु-विगलिता सी प्रतीत होती है- **"टपक टप-टप चले विटप के अश्रु कण**
मूल विपदा-मानो बह चली री।" -रश्मिरेखा

सियारामशरण गुप्त :- गांधीवाद की अभिव्यक्ति इनकी रचनाओं में परिलक्षित होती है।-

क्षुद्र सी हमारी नाव, चारो ओर है समुद्र,
वायु के झकोरे उग्र रुद्र रूप धारे हैं।
शीघ्र निगल जाने को नौका के चारो ओर,
सिंधु की तरंगे सौ-सौ जिव्हाएँ पसारे हैं' ।।
सुनसान कानन भयावह है चारो ओर,
दूर दूर साथी सभी हो रहे हमारे हैं।
काँटे बिखरे हैं, कहाँ जावें कहाँ पावें ठौर,
छूट रहे पैरों से रुधिर के फुहारे हैं' ।।

गाँधी जी पर इनकी अटूट आस्था थी इसलिए इनकी रचनाओं में गाँधीवाद की अमिट छाप दिखती है। डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है......... "गाँधीवाद में इनकी अटूट आस्था थी, इसलिए इनकी सभी रचनाओं पर अहिंसा, सत्य, करुणा, विश्वबंधुत्व, शांति आदि गाँधीवादी मूल्यों का गहरा प्रभाव दिखाई देता है।

इनके काव्य में देश की ज्वलंत घटनाओं तथा समस्याओं का चित्रण हुआ है। इनके काव्यो में आधुनिक मानवता की करुणा, यातना और द्वंद का मिश्रित रूप उभरा है, भले ही उसकी पृष्ठभूमि अतीत हो या वर्तमान। ग़रीबों की लाचारी और बालहठ का सुन्दर चित्रण भी हैं -

मैं तो वही खिलौना लूंगा मचल गया दीना का लाल
खेल रहा था जिसको लेकर राजकुमार उछाल-उछाल।
व्यथित हो उठी मां बेचारी- था सुवर्ण-निर्मित वह तो !
'खेल इसी से' लाल, नहीं है राजा के घर भी यह तो !

कवि ने राष्ट्रीयता के साथ-साथ अंतर्राष्ट्रीयता को भी महत्व दिया है। आधुनिक अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में 'उन्मुक्त' कविता सियारामशरण गुप्त की महत्वपूर्ण कृति है जिसमें कवि ने अपने तरीके से युद्ध की अनिवार्यता, त्याग, बलिदान, यातना, विभीषिका तथा मानवीय करुणा का अद्‌भुत समन्वय किया है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

उत्तर छायावादी युग में साहित्य कितने प्रकार के लिखे गये?

युगांत की घोषणा कब और किस कवि ने की?

महादेवी के प्रारंभिक काव्य का नाम बताइए, जो करुण वेदना एवं निराशा से आक्रांत होकर लिखा गया।

मूल स्वर 'प्रेम' किस काव्यधारा में है?

किस कवि ने 'मधुशाला' की रचना की?

राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्याधारा के सर्वाधिक सशक्त कवि का नाम बताइए।

गतिशील काव्य

प्रगतिवाद का उदय छायावाद के पश्चात एक सशक्त साहित्यिक आंदोलन के रूप में हुआ। 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना के साथ प्रगतिवाद का उदय माना जाता है। हिन्दी काव्य में प्रगतिवाद का प्रारम्भ सं 1936 ई. में हुआ। 1936 ई. से 1943 ई. की कविता प्रगतिवादी कविता है। हिन्दी के वे कवि जिन्होंने साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित होकर काव्य रचना की, वे कवि प्रगतिवादी कवि कहलाए। इस साहित्य में मूल रूप से कार्ल-मार्क्स की विचारधारा की प्रधानता है। केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, रामविलस शर्मा, त्रिलोचन आदि कवि

इस धारा के प्रमुख कवियों में से हैं। इन कवियों के अतिरिक्त सुमित्रानंदन पंत, निराला, रामधारी सिंह 'दिनकर', आदि कवि की कविताओं में भी प्रगतिवादी तत्व उपलब्ध होते हैं।

राजनीतिक क्षेत्र में जो विचारधारा साम्यवाद या मार्क्सवाद कहलाती है, वही साहित्यिक क्षेत्र में प्रगतिवाद कहलाती है। साम्यवादी विचारधारा के अनुरूप लिखी गई कविता प्रगतिवादी कविता है। इस विचारधारा के आधार पर दो वर्गों मे समाज को बांटा जा सकता है - शोषक और शोषित वर्ग।

प्रगतिवाद रचना और आलोचना के क्षेत्र में सर्वथा नवीन दृष्टिकोण लेकर आया। यह रचना का उद्देश्य सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति को ही मानता है। चूंकि प्रगतिवादी कविता स्पष्ट भाषा में सामाजिक जीवन की वास्तविकता को लेकर चली ।

प्रमुख साहित्यकार :

केदारनाथ अग्रवाल :- इनकी कविताओं में मानव और प्रकृति के सौंदर्य का बड़ा सहज और उन्मुक्त रूप दृष्टिगोचर होता है-

हवा हूँ, हवा मै बसंती हवा हूँ।
चढ़ी पेड़ महुआ, थपाथप मचाया;
गिरी धम्म से फिर, चढ़ी आम ऊपर,
उसे भी झकोरा, किया कान में 'कू',
उतरकर भगी मैं, हरे खेत पहुँची -
वहाँ, गेंहुँओं में लहर खूब मारी।

भावुकता, रूमानी आदर्शवाद इनकी कविता की प्रमुख विशेषता है। केदारनाथ अग्रवाल की प्रमुख काव्य-संग्रह 'अपूर्वा', 'गुलमेंहदी' तथा 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' है। प्रकृति चित्रण को उदाहरण स्वरूप देखा जा सकता है -

"आज नदी बिलकुल उदास थी सोयी थी अपने पानी में,
उसके दर्पण पर बादल का वस्त्र पड़ा था
मैंने उसको नहीं जगाया दबे पाँव वापस घर आया।"
- फूल नहीं रंग बोलते हैं

नागार्जुन :- नागार्जुन का प्रगतिवादी कवियों में महत्वपूर्ण स्थान है। नागार्जुन के यहाँ मुख्यतः तीन तरह की कविताएँ हैं। पहला- कुछ गंभीर कविताएँ, कलात्मक और संवेदनात्मक हैं, जिनमें नागार्जुन ने मानव मन की रागात्मक और सौंदर्यमयी छवियों को अंकित किया है। दूसरा - उद्बोधनात्मक कविताएँ हैं। जैसे- 'बादल को घिरते देखा है', 'चंदना', 'रवीन्द्र के प्रति, 'तिलकित भाल' आदि। तीसरी कोटि की वे कविताएँ हैं, जो राजनीतिक अव्यवस्था, सामाजिक कुरूपता तथा

धार्मिक अंधविश्वास पर करारा व्यंग्य करती हैं। जनमानस के भीतर की आग को समझने वाला क्रांतिकारी कवि यथार्थ के चित्रण से चूकता नहीं-

सत्य स्वयं घायल हुआ, गई अहिंसा चूक
जहाँ-तहाँ दगने लगी शासन की बंदूक
जली ठूँठ पर बैठकर गई कोकिला कूक
बाल न बाँका कर सकी शासन की बंदूक

व्यवस्था के प्रति कवि की संवेदनशीलता को 'शिक्षा-पद्धति' पर एक व्यंग्य के रूप में देखा जा सकता है -

"घुन खाये शहतीरों पर कि बारहखड़ी विधाता बाँचे,
फटी भीत है, छत छूती है, आले पर बिस्तुइया नाचे,
बरसा कर बेबस बच्चों पर मिनट-मिनट में पाँच तमाचे,
इसी तरह से दुखरन मास्टर गढ़ता है आदम के साँचे।"

-युगधारा

गजानन माधव मुक्तिबोध :- मुक्तिबोध जनवादी कवि हैं। उनकी दृष्टि मार्क्सवादी रही। मुक्तिबोध ने फेंटेसी का प्रयोग यथार्थ के चित्रण के लिए किया। अतः इस प्रकार उनकी रचनाओं में नाटकीयता है। 'चाँद का मुह टेढ़ा है', 'भूरी-भूरी खाक धूल', 'अंधेरे में' प्रमुख व महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं।

त्रिलोचन :- 'मिट्टी की बारात' त्रिलोचन की प्रमुख काव्य कृति है। इन्होंने छोटी किन्तु तीव्र कविताएँ लिखी हैं। 'ताप के तापे हुये दिन', 'उस जनपद का कवि हूँ', 'धरती' आदि प्रमुख रचनाएँ हैं।

प्रमुख विशेषताएँ :

जीवन और जगत के नए दृष्टिकोण से प्रगतिवाद का संबंध है। प्रगतिवाद सामाजिक यथार्थ से उत्पन्न होता है। समाज में जो घटित हो रहा है प्रगतिवादी कवियों ने उसे ही अपनी कविताओं के माध्यम से हमारे समक्ष रखा है। अतः प्रगतिवादी काव्य की प्रमुख विशेषताएँ अग्रांकित हैं -

शोषितों की दीनता का चित्रण : प्रगतिवादी कविताओं में शोषितों की दीनता का चित्रण पूरे यथार्थ रूप में हुआ है। प्रगतिवादी कवियों ने शोषित और शोषकों के बीच का तुलनात्मक चित्र प्रस्तुत करके सामाजिक विषमता का उद्‌घाटन किया है। दिनकर की कविता की पंक्तियों को उदाहरणस्वरूप देखा जा सकता है -

"श्वानों को मिलता दूध, वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं।
माँ की छाती से चिपक, ठिठुर, जाड़े की रात बिताते हैं।"

सामाजिक यथार्थ का चित्रण : प्रगतिवादी कवियों के काव्य में कल्पना, मनोरंजन को कहीं भी स्थान नहीं मिला। उन्होंने यथार्थ के धरातल पर उतरकर काव्य की रचना की है। उनके पास

सामाजिक यथार्थ को देखने की दृष्टि है। कवि कभी सामाजिक विषमता को उजागर करता है तो कभी विक्षोभ व्यक्त करता है; यथा -

"बरसा कर बेबस बच्चों पर मिनट-मिनट में पाँच तमाचे
इसी तरह से दुखरन मास्टर गढ़ता है आदम के साँचे।"

क्रान्ति की भावना : मार्क्सवाद में सामाजिक समता के लिए क्रान्ति का समर्थन किया गया है। प्रगतिवादी कवियों ने भी क्रान्ति को ही प्राचीन कु-रीतियों के विनाश का माध्यम माना हैं। प्रगतिवादी कवियों ने हिंसा को समता के लिए उचित माना है -

"काटो-काटो काटो कर लो, साइत और कुसाइत क्या है।
मारो-मारो मारो हसियां, हिंसा और अहिंसा क्या है।"

बौद्धिकता एवं व्यंग्य-प्रसार : बौद्धिकता का स्वरूप जन जीवन की समस्याओं में परिलक्षित होता है, सामाजिक सुधार की मानसिकता से प्रगतिवादी कवि व्यंग्य को अधिक पसंद करते हैं। पूंजीवादी, शोषण की प्रवृति, आधुनिक राजनीति आदि को अपने व्यंग्य का विषय बनाते हैं। डॉ. नामवर सिंह लिखते हैं - "हिन्दी कविता में व्यंग्य कविता का जितना सुंदर विकास प्रगतिवाद में हुआ, उतना कहीं नहीं।" कागजी योजना एवं कागजी कार्यान्वयन की आजादी पर नागार्जुन के तीव्र प्रहार को देखा जा सकता है -

"कागज की आजादी मिलती,
ले लो दो-दो आने।"

जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण : प्रगतिवादी कवि को जीवन की स्वीकृति के कवि कहा जाता है। प्रगतिवाद की महत्वपूर्ण विशेषता सकारात्मक दृष्टिकोण है। प्रगतिवाद कवि भयानक और अंधकार निराशा में भी एक प्रकार का सकारात्मक दृष्टिकोण रखते हैं; यथा -

"रोज कोई भीतर चिल्लाता है कि कोई काम बुरा नहीं
बशर्ते कि आदमी खरा हो,
फिर भी मैं उस ओर अपने को ढो नहीं पाता।"

नारी चित्रण : प्रगतिवादी कवियों ने नारी के यथार्थ रूप का चित्रण अपनी कविताओं में किया है। उनके यहाँ नारी न तो कोई कल्पना लोक की परी है और न ही सौन्दर्य वृतियों की पराकाष्ठा। प्रगतिवादी कवियों ने उस नारी का चित्रण किया है जो रात-दिन पुरुष के साथ सामाजिक और आर्थिक विषमताओं को झेलती है। निराला द्वारा रचित 'तोड़ती पत्थर' कविता की पंक्तियों को देखा जा सकता है -

"वह तोड़ती पत्थर,
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर।

गुरु हथौड़ हाथ, करती बार-बार प्रहार,
सामने तरु मालिका अट्टालिका प्राकारा॥"

शैलीगत विशेषताएँ : सरल भाषा का प्रयोग कर प्रगतिवादी कवियों ने उसे संप्रेषणीय बनाया। मुक्त छंद तथा अलंकारविहीन शैली का प्रयोग किया। इनके बिम्ब भी सीधे साधे हैं। उसमें कहीं बनावट नहीं। सुमित्रानंदन पंत की पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं-

"तुम वहन कर सको जन मन में मेरे विचार।
वाणी मेरी चाहिए तुम्हें क्या अलंकार॥"

सामाजिक विषमता को उजागर करने का महत्वपूर्ण प्रयास प्रगतिवादी कवियों ने किया है। प्रगतिवाद का ऐतिहासिक महत्व काव्य-प्रवृत्ति के रूप में तथा व्यापक साहित्यिक आंदोलन के रूप में है । प्रगतिवादी कवियों ने साहित्य के रचना-संसार को महत्त्व दिया।

4.5 प्रयोगवाद

हिंदी साहित्य-इतिहास के गहन अध्ययन से ज्ञात होता है कि आधुनिकतावाद का आरंभ प्रयोगवाद से ही होता है। प्रगतिवाद के बाद का काल प्रयोगवाद के नाम से अभिहित किया गया है। सं 1943 ई. अज्ञेय द्वारा संपादित 'तार सप्तक' के प्रकाशन से प्रयोगवाद का प्रारम्भ माना जाता है। प्रयोगवादी कवि 'प्रयोग' करने में विश्वास करते हैं। अज्ञेय लिखते हैं - "...संगृहीत कवि प्रयोग को कविता का विषय मानते हैं। वे किसी स्कूल के नहीं हैं, किसी मंजिल पर पहुँचे हुये नहीं हैं, अभी राही नहीं हैं, राही नहीं! राहों के अन्वेषी।" दूसरे सप्तक में अज्ञेय ने इसका खंडन कर के लिखा - "प्रयोग का कोई वाद नहीं है। हम वादी नहीं रहे, नहीं हैं। न प्रयोग अपने आप इष्ट या साध्य है।"

प्रयोगवाद का मूल आधार व्यक्तिवाद है। प्रगतिवाद में जहाँ सामूहिकता को बल दिया गया, प्रयोगवाद में ठीक उससे विपरीत व्यक्तिवाद को महत्त्व मिला। यहाँ वैयक्तिकता छायावाद के अर्थ से भिन्न है। यह मुख्यतः शहरी जीवन की जटिलता से संबद्ध है। इसमें यथार्थ का अमूर्तन मिलता है। प्रयोगवादी कवियों ने अपने व्यक्तिगत सुख-दुख को, अपनी व्यक्तिगत संवेदनाओं को नए-नए माध्यमों से व्यक्त किया और जिसे उन्होंने भोगा उसे अभिव्यक्ति प्रदान की। प्रयोगवाद साहित्य में नवीन प्रयोग पर बल देता है। वह सामाजिक पक्ष का साहित्य में उपेक्षा करता है। प्रयोगवादी कवि केवल प्रयोगशीलता को ही काव्य का धर्म नहीं मानता, बल्कि काव्य के काला पक्ष और रूप पक्ष पर भी बल देता है।

प्रयोगवाद कवियों ने भी यथार्थ को अपनी कविताओं में स्थान दिया। भावुकता के स्थान पर वे ठोस बौद्धिकता को स्वीकार करते हैं। मध्यवर्गीय व्यक्ति जीवन की समस्त जड़ता, अनास्था, पराजय, कुंठा और मानसिक संघर्ष के सत्य को बड़ी बौद्धिकता के साथ उद्‌घाटित करते हैं।

प्रयोगवादी कविताओं में मध्यवर्गीय व्यक्ति की पीड़ा को अनेक स्तरों पर उभारा गया है। इन्होंने कल्पना का रंगीन आवरण हटा कर दमित यौन-वासनाओं के नग्न रूप को स्पष्ट किया है। प्रयोगवादी कवि पीड़ा-बोध का चित्रण कुछ इस प्रकार करते हैं-

"दुख सब को माँजता है और
चाहे स्वयं सब को मुक्ति देना वह न जाने, किन्तु
जिनको माँजता है
उन्हें यह सीख देता है कि सब को मुक्त रखें।"

\- **अज्ञेय**

प्रमुख साहित्यकार :

अज्ञेय :- प्रयोगवादी काव्यधारा के प्रवर्तक के रूप में अज्ञेय जाने जाते हैं। तार सप्तक के प्रकाशन से ही अपनी प्रयोगधर्मिता का परिचय देते हैं। उनका प्रयोगवाद संवेदना के धरातल के आस पास से गुजरता है। अज्ञेय अपनी रचनाओं में काव्य के सत्य पर विचार करते हैं। जिजीविषा, प्रकृति के प्रति लगाव, मध्यवर्गीय जनता की पीड़ा आदि को व्यक्त करना इनकी रचनाओं की प्रमुख विशेषताएँ हैं । अज्ञेय समाज के यथार्थ का चित्रण भी अपनी कविताओं में करते हैं। समाज में व्याप्त खोखली सभ्यता तथा नागरिक जीवन में व्याप्त डसने की जहरीली प्रवृति पर अज्ञेय कुछ इस प्रकार व्यंग्य करते हुये लिखते हैं-

"साँप तुम सभ्य तो हुये नहीं
नगर में बसना भी तुम्हें नहीं आया।
एक बात पूछूँ, दोगे उत्तर
फिर कहाँ सीखा डसना
यह विष कहाँ पाया?"

इनकी महत्वपूर्ण रचनाओं में 'भग्नदूत' प्रथम काव्य संग्रह है। 'हरी घास पर क्षण भर', 'चिंता', 'बावरा अहेरी', 'आँगन के पार द्वार', 'कितनी नावों में कितनी बार' आदि हैं।

मुक्तिबोध :- मुक्तिबोध की रचनाओं में प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का रासायनिक मिश्रण है। मुक्तिबोध आत्मसंघर्ष व सामाजिक अनुभवों के कवि हैं। उन्होंने अपनी कविताओं में फेंटेसी का प्रयोग किया है। 'चाँद का मुह टेढ़ा है', 'भूरी-भूरी खाक धूल', 'अंधेरे में' प्रमुख व महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं। मुक्तिबोध ने दीन-हीन शोषित सर्वहारा के प्रति सहानुभूति व्यक्त की है। वे शोषणमुक्त समाज की आशा करते हुये लिखते हैं -

"समस्या एक
मेरे सभ्य नगरों और ग्रामों में
सभी मानव
सुखी, सुंदर व शोषण मुक्त
कब होंगे?"

शमशेर बहादुर सिंह :- शमशेर बहादुर सिंह मूलतः प्रयोगवादी कवि हैं। इनके काव्य में प्रयोग की प्रवृति अधिक मात्रा में है। इनकी काव्यों में 'कुछ कविताएँ', 'कुछ और कविताएँ', 'चुका भी हूँ नहीं मैं' आदि। प्रेम और प्रकृति सौंदर्य इनकी कविताओं की मुख्य विशेषताएँ हैं । इनके प्रेम में गहरी आसक्ति विद्यमान है -

"तुम मुझसे प्रेम करो
जैसे मछलियाँ
लहरों से करती हैं।"

नरेश मेहता :- आरंभ में नरेश मेहता पर प्रगतिवाद का प्रभाव था। इनका प्रिय विषय 'प्रकृति चित्रण' रहा। 'महाप्रस्थान', 'समय देवता', 'वैन पाखी! सुनो!!', 'संशय की एक रात', 'बोलने दो चिड़ को' आदि इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं ।

प्रमुख विशेषताएँ :

व्यक्तिवाद :- प्रयोगवदी कवियों ने वैयक्तिकता पर बल दिया। प्रयोगवादी कवियों ने व्यक्तगत जीवन के सुख-दुख को काव्य का विषय बनाया। अज्ञेय ने 'नदी के द्वीप' नामक कविता में व्यक्ति और समाज को व्यक्त किया। प्रयोगवादी कवियों ने अपने विक्षोभ, कुंठा, निराशा, सफलता-असफलता को कविता के माध्यम से अभिव्यक्त कर के आत्मतृप्ति का अनुभव किया।

यथार्थवादिता :- प्रयोगवादी कवियों का दृष्टिकोण यथार्थवादी है। प्रयोगवादी कविताओं की विषय-वस्तु, प्रतीक, उपमान, भाषा आदि यथार्थ पर आधारित है। प्रयोगवादी कवि अपने अनुभवों को यथार्थ रूप में व्यक्त करते हैं।

आधुनिक युग-बोध :- प्रयोगवादी कवियों ने यातना, घुटन, संत्रास, कुंठा, द्वंद और निराशा को अपने काव्य का विषय बनाया। वर्तमान जीवन के कटु सत्य को पूरी ईमानदारी के साथ व्यक्त किया गया है। प्रयोगवादी कविता में मानव सत्ता की अभिव्यक्ति हूई। दुख जीवन का कटु सत्य है, उस सत्य का मानव जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसकी अभिव्यक्ति अज्ञेय बड़े सटीक शब्दों में करते हैं -

"दुख सबको मांजता है
और
चाहे सबको मुक्ति देना वह न जाने किन्तु
जिनको मांजता है,
उन्हें यह सीख देता है कि सबको मुक्त रखें॥"

विचारधारा से स्वतन्त्रता :- प्रयोगवाद की महत्त्वपूर्ण विशेषता नामवर सिंह 'वाद के विरुद्ध विद्रोह' को मानते हैं। प्रयोगवादी कवियों का मानना था कि कोई भी वाद मनुष्य के सत्य तक नहीं पहुँचा सकती। यथा -

यह जो दिया लिये तुम चले खोजने सत्य, बताओ
क्या प्रबन्ध कर चले
कि जिस बाती का तुम्हें भरोसा
वही जलेगी सदा
अकम्पित, उज्ज्वल एकरूप, निर्धूम?

उपमानों की नवीनता :- प्रयोगवाद के कवियों ने पारंपरिक उपमानों की जगह नवीन उपमान, नवीन रूपक एवं नवीन अलंकारों के अन्वेषण किए हैं। यौन विषयक वर्जनाओं की अभिव्यक्ति हेतु विविध प्रतीकों का सहारा लिया गया है। उपमानों के आभास अग्रांकित उदाहरण में देखे जा सकते हैं -

"प्यार का बल्ब फ्यूज हो गया।
मेरे सपने इस तरह टूट गये जैसे भुंजा हुआ पापड़।
वह रेशमी मिठास मिलन के प्रथम दिनों की।
पूर्वदिशि में हड्डी के रंग वाला बादल लेता है।"

काव्यभाषा तथा छंद :- प्रयोगवादी कविता में सहज, सरल एवं संप्रेषणीयता भाषा का प्रयोग किया गया है। इन कवियों ने छंदमुक्त, लयमुक्त तथा तुकमुक्त रचनाएँ की। प्रयोगवादियों ने मुक्त छंद का प्रयोग किया, जिससे उनकी कविताएँ गद्यात्मक बन गयीं। उनकी कविताओं में भाव एवं लय समाहित है। इस संदर्भ में अज्ञेय की कुछ पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं -

"उड़ गई चिड़िया
कांपी, फिर
थिर हो गई पत्ती।"

प्रतीक एवं बिम्ब :- प्रयोगवादी कवियों ने नए उपमान, नए प्रतीक एवं नए बिम्ब का प्रयोग किया। नए उपमानों की आवश्यकता मानते हुये अज्ञेय 'कलगी बाजरे की' कविता में लिखते हैं -

"देवता अब इन प्रतीकों के कर गए हैं कूच।
कभी वासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है॥"

अतः कहा जा सकता है कि प्रयोगवादी कविता एक विलक्षण कविता है। प्रयोगवादी कवियों ने प्रयोग पर बल दिया तथा यथार्थ की अभिव्यक्ति की।

4.6 नयी कविता

हिंदी साहित्येतिहास के आधुनिक सृजन-क्षेत्र में कई परिवर्तनकारी क्षण आये जिनमें हिन्दी कविता के क्षेत्र में 1950 ई. के आस पास एक बदलाव की दिशा देखने को मिलती है, उस समय की कविता को 'नयी कविता' नाम दिया गया, वस्तुतः यह प्रयोगवादी कविता के विकास का अगला चरण है। पश्चिम के विभिन्न वादों और विचारकों का प्रभाव नई कविता पर रहा। इनमें फ्रायडवाद, मार्क्सवाद तथा अस्तित्ववाद का विशेष रूप से उल्लेख है।

'डॉ. रामविलास शर्मा' नयी कविता की शुरुआत 'नयी कविता' नामक पत्रिका के प्रकाशन से मानते हैं। नयी कविता का आरंभिक समय हम 1954 ई. के तीसरी 'तार सप्तक' को भी मान सकते हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध में लाखों लोगों की मौत हुई, चारों ओर हिंसा तथा दंगे फैले हुये थे। इस इस परिस्थिति से अस्तित्ववाद का जन्म हुआ। अस्तित्ववादी दर्शन का प्रभाव नयी कविता के कवियों पर भी पड़ा। आजादी से लोगों को जो उमीदें थी वह आजादी के बाद मोह भंग हो गया। इस धारा के कविता में असंतोष और अस्वीकृति का स्वर विद्यमान है। नयी कविता नयी परिस्थितियों में संघर्षरत मानव के भोगे हुये यथार्थ के जीवन का सत्य है। अतः नयी कविता के कवियों के पास नयी दृष्टि, नयी विषय वस्तु, नयी सोच, नया सौन्दर्य तथा नया शिल्प है। इसमें आधुनिक जीवन का बोध, अकेलापन, टूटन आदि लक्षित होते हैं । नई कविता में दो तत्व प्रमुख हैं- अनुभूति की सच्चाई और बुद्धिमूलक यथार्थवादी दृष्टि। वह अनुभूति क्षण की हो या एक समूचे काल की, किसी सामान्य व्यक्ति की हो या विशिष्ट पुरूष की, आशा की हो या निराशा की, अपनी सच्चाई में कविता के लिए और जीवन के लिए भी अमूल्य है। नई कविता में बुद्धिवाद नवीन यथार्थवादी दृष्टि के रूप में भी है और नवीन जीवन-चेतना की पहचान के रूप में भी। यही कारण है कि तटस्थ प्रयोगशीलता नई कविता के कथ्य और शैली-दोनों की विशेषता है।

प्रमुख कवि :

जीवन को पूर्णरूपेण 'जीवन-जीने की लालसा' और सत्य मानकर स्वीकार करने के रूप में देखे जाने वाले 'नयी कविता' के प्रमुख कवियों में हमें विषय वैविध्य देखने को मिलता है। अज्ञेय, नरेश मेहता, गिरिजाकुमार माथुर जैसे कवि जहाँ प्रयोगवादी थे, मुक्तिबोध, शमशेर बहादुर सिंह जैसे कवि मार्क्सवादी तो धर्मवीर भारती, कुँवरनारायण जैसे कवि प्रगतिवादी थे। नयी कविता के प्रमुख कवियों का परिचय आग्रंकित है -

अज्ञेय :- 'तार सप्तक' पत्रिका के संपादक अज्ञेय का मानना था कि जीतने भी काव्य के प्रतिमान है, सारे पुराने व मैले हो गए हैं, अतः कविता में नये प्रतिमानों कि आवश्यकता है। अज्ञेय की कविताएँ आकार में भले छोटी हों पर अर्थ की दृष्टि से बहुत गहरे और व्यंग्यपूर्ण होती हैं। उदाहरण के लिए उनकी 'कलगी बाजरे की' तथा 'साँप के प्रति' कविता को देखा जा सकता है।

धर्मवीर भारती :- इन्होंने मिथकों की नयी व्याख्या की। इनकी कृतियों में रूमानियत का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। 'अंधा युग', 'ठंडा लोहा', 'कनुप्रिया', 'सात गीत वर्ष' आदि इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं।

रघुवीर सहाय :- रघुवीर सहाय 'दूसरा सप्तक' के प्रसिद्ध कवि हैं। उनकी कविताओं में सामाजिक जागरूकता मिलती है। बदलाव के स्वर इनकी कविताओं में लक्षित होता है। वे जनपक्षीय कविता की रचना करते हैं। 'सीढ़ियों पर धूप में', 'आत्महत्या के विरुद्ध', 'हँसों-हँसो जल्दी हँसो', 'लोग भूल गए हैं' आदि इनके प्रमुख काव्य संग्रह हैं।

मुक्तिबोध :- मुक्तिबोध नयी कविता के श्रेष्ठ कवियों में से एक हैं। उनकी रचनाएँ : 'ब्रह्मराक्षस', 'एक भूतपूर्व विद्रोही का आत्म-कथन', 'चाँद का मुह टेढ़ा है' आदि है। सर्व-स्वानुभूति के स्वर उनकी कविता की पंक्तियों में प्राप्त होते हैं -

दुख तुम्हें भी है,
दुख मुझे भी।
हम एक ढहे हुए मकान के नीचे
दबे हैं।

जीवन में आने वाले संघर्षों के प्रति अंतर्द्वंद्व भाव से अभिव्यक्त मुक्तिबोध की काव्य-पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं-

"पीस गया वह
दो कठिन पाटो के बीच
ऐसी ट्रेजेडी है नीच।"

मुक्तिबोध के काव्य में जीवन और समाज में व्याप्त करुणा, विसंगति, विडम्बना और अराजकता का स्वर है। इन्होंने जीवन की कटुता, संत्रास आदि को अनूठे ढंग से व्यक्त किया है।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना :- सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविताओं में आरंभ में व्यक्तिवादी धारा का प्रभाव था, किन्तु बाद में वे प्रगतिशील काव्याधरा की ओर झुकें। इनकी कविता में आत्मीयता व निजता का भाव है। सहज, सरल व सपाट भाषा में इन्होंने अपनी विचारधारा की अभिव्यक्ति की है। 'काठ की घंटिया', 'जंगल का दर्द' इनकी प्रमुख काव्य कृतियाँ हैं

प्रमुख विशेषताएँ :

सत्यतः नयी कविता कोई वाद नहीं है, जो अपने कथ्य और दृष्टि में सीमित हो। कथ्य की व्यापकता और सृष्टि की उन्मुक्तता नई कविता की सबसे बड़ी विशेषता है। नयी कविता में वस्तुतः दो तरह की धाराएँ हैं। एक धारा वो थी जो अस्तित्ववाद तथा आधुनिकतावाद से प्रभावित थी तो दूसरी मार्क्सवाद से। नयी कविता की प्रमुख विशेषताएँ निम्न हैं -

मोहभंग की अभिव्यक्ति :- व्यक्ति में बढ़ती हुई बेरोजगारी,अत्याचार ने निराशा व कुंठाएँ पैदा कर दी। इन सारे परिस्थितियों से लोग घुटन महसूस करने लगा था। नयी कविता के कवियों ने अपनी वाणी द्वारा उन्हीं भावों की अभिव्यक्ति की; जिस यथार्थ को वे जी और अनुभव कर रहे थे। गिरिजाकुमार माथुर ने इस तरह के भावों को कुछ इस प्रकार व्यक्त किया है -

"जिंदगी है भार हुई
दुनिया है बहुत बोर

दंभी पाखंडी बहुरूपिये
हैं बड़े लोग।"

धर्मवीर भारती 'ठंडा लोहा' में कुंठा और घुटन के भाव की अभिव्यक्ति करते हुये लिखते हैं -

"अपनी कुंठाओं की
दीवारों में बंदी
मैं घुटता हूँ।"

अनुभूतिपरकता :- अनुभूति की अभिव्यक्ति नयी कविता में प्रधान है। मनुष्यों का दर्द मूलतः एक है और आज का कवि बड़ी ईमानदारी के साथ, उसे संवेदनापूर्ण तरीके से अभिव्यक्त करता है। अज्ञेय के शब्दों में

"आखेँ थी,
दर्द सभी में था
जीवन का दर्द सभी ने जाना था।"

क्षणवाद की अनुभूति :- नयी कविता जीवन के साथ चलने की आग्रह करती है। आज का युग मानव क्षण को महत्त्व देता है। नये कवि की दृष्टि में प्रत्येक क्षण का महत्त्व है। क्षण की अनुभूति कवि को सदैव एक सी नहीं लगती। जीवन में कभी सुख का क्षण आता है तो कभी दुख का। रामदारश मिश्र लिखते हैं -

"मैंने क्षण-क्षण
तीखे मीठे अनुभवों को पिया है।"

अकेलापन तथा अजनबीपन :- बढ़ते औद्योगीकरण ने मनुष्य को भावात्मक स्तर पर अकेला, असहाय और स्वार्थी बना दिया है। नयी कविता में व्यक्ति के उस अकेलेपन और अजनबीपन के भाव को व्यक्त किया गया है। श्रीकांत वर्मा की कविताओं में इस तरह के भाव बार-बार आते हैं। उदाहरण के लिए देखें -

"सच मानो मैं अकेला हूँ
इतना अकेला जितना प्रत्येक नक्षत्र
एक दूसरे से।"

वैयक्तिकता :- नयी कविता में व्यक्ति-विशेष की आशा, निराशा, आस्था-अनास्था की अभिव्यक्ति हुई है। भीड़ बनाम अकेला व्यक्ति का विवाद प्रमुख है नयी कविता में। नयी कविता के कवियों ने अपनी कविता में अतिशय वैयक्तिकता की अभिव्यक्ति की है। लक्ष्मीकान्त वर्मा के शब्दों में -

"मेरी प्यास सामूहिक प्यास नहीं
मेरी प्यास अपनी है
अपनी मर्यादा से प्रतिष्ठित है।"

काव्य-भाषा :- आज का कवि समस्त शासन और व्यवस्था तंत्र को तोड़ने के साथ भाषा तंत्र को भी तोड़ना चाहता है। नयी कविता मे संकोच और झिझक नहीं है। कवि धूमिल के शब्दों में -

“न कोई छोटा है न कोई बड़ा है
मेरे लिए हर एक आदमी
एक जोड़ी जूता है”

अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि नई कविता हिन्दी काव्य के विकास का एक महत्त्वपूर्ण सोपान है। प्रोफेसर महावीर सरन जैन का कथन है कि "हिन्दी की नई कविता पर सबसे बड़ा आक्षेप यह है कि उसमें अतिरिक्त अनास्था, निराशा, विशाद, हताशा, कुंठा और मरणधर्मिता है। उसको पढ़ने के बाद जीने की ललक समाप्त हो जाती है, व्यक्ति हतोत्साहित हो जाता है, मन निराशावादी और मरणासन्न हो जाता है। लेकिन यह कि नई कविता ने पीड़ा, वेदना, शोक और निराशा को ही जीवन का सत्य मान लिया है। नई कविता सामाजिक यथार्थ तथा उसमें व्यक्ति की भूमिका को परखने का प्रयास करती है। इसके कारण ही नई कविता का सामाजिक यथार्थ से गहरा संबंध है। परंतु नई कविता की यथार्थवादी दृष्टि काल्पनिक या आदर्शवादी मानववाद से संतृष्ट न होकर जीवन का मूल्य, उसका सौंदर्य, उसका प्रकाश जीवन में ही खोजती है।

4.7 नवगीत

साठवें दशक के आसपास जब कविता- नई कविता के रूप में विकसित हो रही थी तब गीत- नवगीत के रूप में विकसित हुआ। नई कविता ने तुक और छंद के बंधन तोड़ दिये लेकिन नवगीत इन सबके साथ रहते हुए नवीनता की ओर बढ़ा। निराला ने अपनी एक रचना में इस ओर संकेत करते हुए कहा है- नव गति, नव लय, ताल, छंद नव। यही आगे चलकर नवगीत की प्रमुख प्रवृत्तियाँ या विशेषताएँ भी बनीं। इसके साथ साथ नवगीत में नया कथन, नई प्रस्तुति, प्रगतिवादी सोच, नए उपमान, नए प्रतीक, नए बिम्ब, समकालीन समस्याएँ और परिस्थितियाँ प्रस्तुत करते हुए इस विधा को नई दिशा दी गई। यही एक गीत को नवगीत बनाते हैं। आवश्यक नहीं कि एक नवगीत में इन सभी चीज़ों का समावेश हो लेकिन होना ज़रूरी है। नवगीत में छंद आवश्यक है लेकिन वह पारंपरिक न हो, नया छंद हो और उसका निर्वाह भी किया गया हो। छंद में बहाव हो लय का सौंदर्य हो, ताकि गीत में माधुर्य बना रहे। हिंदी वाङ्मय के आधुनिक काल में रचे जा रहे साहित्य में समकालीन हिन्दी कविता की महत्वपूर्ण विधा ‘नवगीत’ है। डॉ. शम्भूनाथ सिंह 1960 ई. के उपरांत नवगीत परम्परा को स्वीकार करते हैं तथा अज्ञेय को ही इस परम्परा का सूत्रधार मानते हैं। नई कविता का ही गीतात्मक रूप नवगीत है। गीतात्मकता जब नई कविता से जुड़ गई तो नवगीत कहलाने लगी। अतः इसकी रूपरेखा छठे दशक के उतरार्द्ध में तैयार की गई। अज्ञेय, शम्भूनाथ सिंह, नरेश मेहता, धर्मवीर भारती, श्रीकांत वर्मा, ठाकुरप्रसाद सिंह आदि कवियों ने नवगीत के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

नवगीत के सशक्त समर्थक डॉ. रामदरश मिश्र के अनुसार - “नयेपन को स्पष्ट करने के संबंध में आज के गीतों का ‘नवगीत’ नाम सार्थक हो सकता है, किन्तु फिर भी लगता है कि यह

एक आंदोलन बन गया है, क्योंकि नवगीत अपने को समूची नयी कविता का अंग न मानकर स्वयं में पूर्ण समझ रहा है तथा अनेक सम्मेलनी गवैये गीतकार गीत को नवगीत बना देने वाले कुछ उपकरणों को चुन-चुनकर सायास आयोजन द्वारा नवगीत रचना कर रहे हैं।" रामदरश मिश्र नवगीत को परिभाषित करते हुये लिखते हैं - "अनुभूति की सच्चाई, नवीन सौंदर्य बोध, आकार लघुता, नवीन बिम्ब प्रतीक, उपमान योजना, इसकी सामान्य विशिष्टता है, इन सभी गीतों में लोक जीवन का रस है।"

कस्बा-कस्बा गाता चल ओ साथी
टोले-गाँव जगाता चल ओ साथी
रात रहे जो भूखे उनकी रोटी
कैसे छिनी बताता चल ओ साथी
सत्तू औ' गुड़ जिनको नहीं कलेवा
लंच-डिनर समझाता चल ओ साथी । (लाल नील धारा,पृ.14)

डॉ. शंभुनाथ सिंह द्वारा दी गयी नवगीत की परिभाषा - "नवीन पद्धति और विचारों के नवीन आयामों तथा भाव सरणियों को अभिव्यक्त करने वाली गीत जब भी और जिस युग में लिखे जायेंगे, नवगीत कहलायेंगे।" जीवन के संघर्ष और लोकधर्मी अनुभूतियों से अपना संबंध नवगीत जोड़ता है। गीतों को माध्यम बनाकर जीवन के अनुभवों को उतारा गया। नवगीतों में लोक जीवन की अभिव्यक्ति, वर्तमान विसंगतियों का चित्रण, सहज संप्रेषणीयता तथा आम आदमी के दुख और संघर्ष के गीत गाये गए। यथा-

"रूप के भाग में चीर
अपने तो भाग, मजदूर के भाग हैं
भाल पै स्याम लकीर।"

- रमेश रंजक

नवगीत में चमत्कार एवं आडंबर के स्थान पर सरल व सपाट भाषा का प्रयोग किया गया है। यहाँ सृजनात्मकता का भी प्रयोग हुआ है। इसमें गद्यात्मकता का समावेश है। जीवन से लिए गए प्रतीक एवं जीवन के मर्मस्पर्शी बिंबों के चित्र विद्यमान है। आर. पी. सिंह 'गीतांगिनी'(1958) के अनुसार प्रगति और विकास की दृष्टि से उन रचनाओं का बहुत मूल्य है, जिनमें नयी कविता की प्रगति का पूरक बनकर 'नवगीत' का निकाय जन्म ले रहा है । नवगीत नयी अनुभूतियों की प्रक्रिया में संचयित मार्मिक समग्रता का आत्मीयतापूर्ण स्वीकार होगा, जिसमें अभिव्यक्ति के आधुनिक निकायों का उपयोग और नवीन प्रविधियों का संतुलन होगा ।

4.8 समकालीन कविता व अन्य काव्य परिवर्तन

हिंदी साहित्येतिहास के आलोचकों के अनुसार प्रगतिवाद तथा प्रयोगवाद कविता का विकास समकालीन कविता के रूप में देखा जा सकता है। सं 1960 ई. के बाद हिन्दी कविता को अनेक नाम दिये गए, जिनमें प्रमुख हैं - समकालीन कविता, साठोत्तरी कविता, अकविता, सहज कविता, अति कविता, नूतन कविता, विचार कविता आदि। संक्षेप में कहा जा सकता है कि नयी कविता आंदोलन के बाद जिस काव्य धारा आंदोलन का आगमन होता है उसे समकालीन कविता कहा गया।

जनता में जो उमंग व उत्साह था वह स्वतन्त्रता के बाद मोह भंग हो गया। समकालीन कविता समाज की मान्यताओं से मोह भंग करती है। सूखा, भूखमरी, बेरोजगारी जैसी समस्याओं ने जनता के कष्टों को बढ़ा दिया। अतः साठोत्तरी कविता में अस्वीकृति, असंतोष और विद्रोह का स्वर बहुत स्पष्ट रूप में सामने आया। यह स्वर कहीं व्यंग्य रूप में तो कहीं खुले रूप में उभरे। जीवन की प्रामाणिक अनुभूतियों को जीवन परिवेश में अभिव्यक्त किया गया। समकालीन कवियों में प्रमुख हैं - रघुवीर सहाय, धूमिल, अरुण अमल, दूधनाथ सिंह, मंगलेश डबराल, अशोक वाजपेयी, जगदीश चतुर्वेदी, रमेश रंजक आदि।

प्रमुख विशेषताएँ :

विचारों से मुक्ति :- समकालीन कविताओं में राजनीतिक विचारधारा से कवियों का कोई सरोकार नहीं है। समकालीन कवियों के लिए व्यक्ति सत्ता तथा उनकी अनुभूति ही काव्य तथा जीवन का दर्शन है। उदाहरण -

"कुछ लोग मूर्तियाँ बनाकर,
फिर बेचेंगे क्रांति की
कुछ और लोग, सारा समय
कसमें खायेंगे लोकतन्त्र की।"

औद्योगिक सभ्यता :- बढ़ते मशीनीकरण एवं औद्योगीकरण ने व्यक्ति को समाज में अकेला व स्वार्थी बना दिया है। महानगरों की भीड़ में आज व्यक्ति अकेला हो गया है। इसलिए समकालीन कवियों ने औद्योगीकरण की आलोचना की।

नारी के प्रति दृष्टिकोण :- समकालीन कविता में नारी के प्रति पतनोन्मुख दृष्टिकोण है। नारी के प्रति असम्मान का भाव देखा गया है। नारी को समाज ने हमेशा से ही वस्तु के रूप में ही देखा है, उसी सच्चाई को समकालीन कवि अपनी कविताओं में व्यक्त करते हैं।

व्यर्थता-बोध :- पराजय एवं विद्रोह की भावना ही समकालीन कवियों को व्यर्थता-बोध की ओर ले गयी। इन्हें यथार्थ के प्रति कुंठा ने असहाय बना दिया । इनके यहाँ विरोध के स्वर में ऊब है, व्यंग्य नहीं। देखें -

"चारों तरफ मुर्दानी है
भीड़ है और कूड़ा है
हर व्यस्तता

और अधिक अकेला कर जाती है।"

अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि समकालीन कविता में भारतीय समाज कि जड़ता, विसंगति, विडम्बना, आक्रोश की अभिव्यक्ति पूर्ण रूप से हुई है। जीवन की निर्भय वास्तविकताओं से जो अनुभूतियाँ मन में उभरती है समकालीन कवि उसी अनुभूति को अभिव्यक्त करते हैं।

<u>'अपनी प्रगति जांचिए'</u>

13. 'नयी कविता' पत्रिका का प्रकाशन कब हुआ?

नयी कविता' की शुरुवात 'नयी कविता' पत्रिका से किसने मानी है?

15. नयी कविता के एक प्रमुख कवि का नाम बताइए।

किस कवि की रचनाओं को 'वृहत्तर जिज्ञासा का काव्य' कहा गया?

किस कवि की कविताओं ने समकालीन कविता को प्रभावित किया?

18. नवगीत की रूपरेखा कब तैयार की गयी?

19. सात के दशक के बाद की कविता को क्या नाम दिया गया?

लित चेतना, स्त्री चेतना और जनजातीय चेतना की कविताएँ

चेतना सदैव झकझोरने, जगाने तथा अपने इर्द-गिर्द देखने की प्रेरणा देती है। हिन्दी में दलित चेतना, स्त्री चेतना एवं जनजातीय चेतना की रचनाएँ काफी मात्रा में होती आ रही हैं । साहित्य से आत्म चेतना का बल प्राप्त हुआ। दलित साहित्य की शुरुआत हीरा डोम द्वारा रचित 'अछूत की शिकायत' से मानी जाती है। ओमप्रकाश वाल्मीकि का 'जूठन' से दलित-साहित्य की रचनाएँ फलने-फूलने लगती हैं । 'सदियों का संताप' एवं 'तुम सब क्या करोगे' वाल्मीकि जी कृत काव्य-संग्रह महत्त्वपूर्ण हैं । श्योराज सिंह, डॉ वियोगी, डॉ. सी. वी.भारती, निर्मला पुतुल, सुशीला टाकभोरे, चन्द्रकान्त बराठे, डॉ सुमन पाल, रमणिका गुप्ता आदि उल्लेखनीय रचनाकार हैं । हिन्दी साहित्य में दलित चेतना, स्त्री चेतना तथा जनजातीय चेतना की काफी मात्रा में कविताएँ लिखी गई हैं और लिखी जा रही हैं।

5.9.1 निराला की कविता में दलित एवं जनजातीय चेतना

निराला का महत्वपूर्ण स्थान आधुनिक हिन्दी साहित्य में है। निराला का योगदान दलित चेतना से जुड़ी कविताओं में रहा। रामविलास शर्मा निराला को क्रान्ति का कवि कहते हैं। निराला की क्रान्ति हर तरह के बंधन से मुक्ति चाहती है। उनकी रचनाओं में दलितों तथा पीड़ितों के प्रति गंभीर मानवीय करुणा है। दलित-शोषित, सामान्य जन के संस्पर्श की एक शक्तिशाली उद्घोषणा उनकी काव्यात्मक उपलब्धि है -

"मैंने 'मैं' शैली अपनाई
देखा दुखी एक निज भाई
दुख की छाया पड़ी हृदय में मेरे
झट उमड़ वेदना आई।"

निराला ने अपनी पक्षधरता, अपनी निष्ठता और सरोकारों को असंदिग्ध रूप से प्रमाणित किया है। दलित तथा पिछड़ों से जल्दी जल्दी पैर बढ़ाकर अपने बराबर खड़े होने की बात करते हैं-

"जल्द-जल्द पैर बढ़ाओ, आओ, आओ
आज अमीरों की हवेली, किसानो की होगी पाठशाला
धोबी, पासी, चमार, तेली, खोलेंगे अंधेरे का ताला
एक पाठ पढ़ेंगे, टाट बिछाओ।"

निराला सामाजिक विषमता के विरुद्ध प्रभावी आवाज़ उठाते हैं। उनके काव्य का मूल स्वर विद्रोही एवं क्रांतिकारी भावनाओं से युक्त है। यथा -

"चाट रहे जूठी पत्तल वे कभी सड़क पर खड़े हुये।
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुये॥"

निराला के गीतों में सदियों से पीड़ित, उपेक्षित एवं प्रताड़ित दलितों के प्रति करुणा है। उन्हें यह देखर कर क्षोभ होता है कि लोग वानरों को तो पुए खिला रहे हैं, किन्तु वहीं दीन-हीन मानव की उपेक्षा करने में लज्जा नहीं आती। अपनी कविता में इसे ही चित्रित करते हुये निराला लिखते हैं -

"मेरे पड़ोस के वे सज्जन
करते प्रतिदिन सरिता मज्जन।
झोली से पुए निकाल लिए
बढ़ते कपियों के हाथ दिए
देखा भी नहीं उधर फिर कर
जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर
चिल्लाया किया दूर दानव
बोला मैं 'धन्य श्रेष्ठ मानव'॥"

निराला की कविताओं में सामाजिक विषमता पर आक्रोश व्यक्त हुआ है। अपनी कविताओं के माध्यम से वे शोषण का विरोध, दलितों की दशा का चित्रण करते हुये उनके प्रति

सहानुभूति व्यक्त करते हैं तथा साथ ही पूँजीपतियों की प्रवृतियों का विरोध किया। 'तोड़ती पत्थर' नाम कविता में निराला एक ऐसी गरीब स्त्री का चित्रण करते हैं, जो कि हृदयस्पर्शी है -

"वह तोड़ती पत्थर
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर
वह तोड़ती पत्थर।
नहीं छायादार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार।"

निराला 'भिक्षुक' नामक कविता में एक गरीब भिक्षुक की दयनीय स्थिति का वर्णन करते हैं -

"वह आता
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक
चल रहा लकुटिया टेक
मुट्ठी भर दाने को-भूख मिटाने को
मुँह फटी-पुरानी झोली को फैलाता।"

'कुकुरमुत्ता' कविता में सामाजिक विषमता की बात करते हुये पूँजीपतियों को वे कहते हैं कि उनकी रंगो-आब, चमक-दमक गरीबों के शोषण पर आधारित है -

"अबे सुन बे गुलाब
भूल मत, जो पाई खुशबू रंग-ओ-आब।
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा है कैपिटलिस्ट।"

अतः देखा जा सकता है कि 'कुकुरमुत्ता' में दलित चेतना का व्यंग्यात्मक विस्फोट मिलता है तो 'तोड़ती पत्थर' में मजदूर वर्ग की स्थिति मज़दूरनी के प्रतिरूप में मिलता है। निराला के काव्य चेतना का मूल आधार सामाजिक दलन और आर्थिक शोषण की पीड़ा से मानव को मुक्ति दिलाना है। इसी मुक्ति के लिए निराला कहते हैं - 'जागो फिर एक बार'।

4.9.2 नागार्जुन एवं जनचेतना

कवि नागार्जुन एक जनवादी कवि के रूप में अपने समय-समाज की विसंगतियों को यथार्थ रूप में चित्रित करते हैं। नागार्जुन की कविताओं में समाज में बढ़ती बेरोजगारी, भुखमरी, गरीबी, अकाल तथा अभावभरी जिंदगी का यथार्थ आदि दिखाई देता है। 'अकाल और उसके बाद' कविता में नागार्जुन 'भूख' का चित्रण कुछ इन शब्दों में करते हैं -

"कई दिनों तक चूल्हा रोया चक्की रही उदास।
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास॥
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त।

कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त॥"

जनवादी क्रान्ति का व्यापक रूप नागार्जुन के काव्य में सुनाई देता है। उनके यहाँ मध्यवर्ग प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित न हो कर भी क्रान्ति की प्रक्रिया में शामिल है। प्रशासन तंत्र से उसका संबंध है। कवि ने मजदूर, किसान, व्यापारी, नेता, जमींदार सब पर दृष्टिपात करते हुये अपने काव्य में उसका चित्रण यथार्थ रूप में किया है। किसान कवि नागार्जुन की भूमिका एक क्रांतिकारी कवि के रूप में अति महत्वपूर्ण है। 'लाल भवानी' नामक कविता की कुछ पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं -

"सेठों और जमींदारों को नहीं मिलेगा एक छदाम,
खेत-खान-दूकान-मिलें सरकार करेगी दखल तमाम;
खेत-मजूरों और किसानों में जमीन बंट जायेगी;
नहीं किसी कमकर के सिर पर बेकारी मंडरायेगी;
x x x
नौकरशाही का यह रद्दी साँचा होगा चूराम-चूर,
सुजला, सुफलता के गायेंगे गीत प्रसन्न किसान-मजदूर;
इन कानों को तृप्ति मिलेगी, तब उस मस्त तराने में,
लाल भवानी प्रकट हुई है सुना कि तेलंगाने में।"

नागार्जुन के जनवादी क्रान्ति स्वर एक-एक शब्द में, एक-एक पंक्ति में मुखरित हुये हैं। नागार्जुन लिखते हैं - "कुछ विद्वानों का हिन्दी विरोधी रुख मिथिला निवासियों के लिए सर्वथा घातक है।....हिन्दी मिथिला के अंदर घुस अवश्य आई है।" (चुनी हुई रचनाएँ - 3) हिन्दी और मैथिली के बीच हिन्दी और तमिल की अपेक्षा दूरी बहुत कम है इसलिए हिन्दी घुस आई है। जातीय चेतना का अंतर्विरोध आंचलिक बोध से स्पष्ट है। 1962 में यह चेतना उन्नत हुई, जब नागार्जुन ने कहा कि - "हमारी केंद्रीय सरकार अंग्रेजी के बिना एक क्षण भी अपना काम नहीं चला सकती, हिन्दी-बांग्ला-तमिल आदि के बगैर तो वह बीसियों साल निभा लेगी।" केंद्र सरकार की नीति के समतुल्य विचार करने पर यह अधिक स्पष्ट हुआ कि विभिन्न जातियों की भाषा-संस्कृति का दमन हिन्दी नहीं कर रही, अपितु अंग्रेजी कर रही है।

1975 में 'हुकूमत की नर्सरी' कविता में नागार्जुन के स्पष्ट होते हैं-

"दुनिया हमसे पूछती है
लोथ की अखंडता किस काम की?
पुराने रोगों के अपने ही किटाणुओं ने ही तो
तुमको लोथ बना रखा है न?
तमिलनाडु, बंगाल, नागाभूमि, मिजोरम, केरल...
गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब, कर्नाटक, आंध्र...

इनको तुम कब तक नयी दिल्ली की जमींदारी बनाकर रखोगे
क्यों नहीं इन सभी प्रदेशों का 'संघशासन'
फेडरल राज्य हो, संयुक्त राज्य हो?"

4.9.3 डॉ° रामकुमार वर्मा एवं दलित चेतना

दलित चेतना के रूप में रामकुमार वर्मा द्वारा रचित 'एकलव्य' को साठोत्तरी कविता में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। यद्यपि 'एकलव्य' छठे दशक से पूर्व लेखनी का विषय बन चुका था, साहित्य के क्षेत्र में वह छठे दशक के आस-पास ही प्रकाशन के रूप में प्रस्तुत था। 'एकलव्य' में सदियों से उपेक्षित दलित-चेतना का अद्वितीय धनुर्धर एकलव्य अपना परिचय देता है। वह परिचय निश्चित ही दलित चेतना को अमरता प्रदान करती है -

"जय! गुरुदेव!
एकलव्य दास हूँ!
है निषाद वंश मेरा, श्री हिरण्यधनु है मेरे पिता
तृण के समान हूँ मैं मार्ग में जो पदों का
भर बार-बार निज शीश ले,
बढ़ता है नवल हरीतिमा में मोद से।
एक ही चरण से खड़ा है जन्म काल से
अपनी तपस्या में। मैं एक ऐसा तृण हूँ।"

तथाकथित दलित व्यक्तियों के प्रति तत्कालीन सामाजिक स्थिति बुरी थी। दलित समुदाय से आए किसी भी दलित व्यक्ति को अपना शिष्य बनाना तथाकथित उच्च वर्ग के लोग पाप समझते थे। यही कारण था कि दलित निषाद पुत्र एकलव्य को द्रोणाचार्य धनुर्विद्या हेतु अपना शिष्य नहीं बनाते। एकलव्य ने द्रोणाचार्य की मिट्टी की प्रतिमा बनाकर बाण-विद्या का अभ्यास किया और अद्वितीय तथा महान धुनर्धुर बना। द्रोणाचार्य जैसे सवर्ण विद्वान को यह सहन नहीं हुआ और वे गुरु दक्षिणा में एकलव्य से उसके हाथ का अंगूठा मांग लिया -

"गुरु-प्राण-पूर्ति करे सब काल के लिए
जय गुरुदेव! यह रही मेरी दक्षिणा।
क्षण में ही अर्धचंद्र-मुख-बाण से,
तूर्ण से निकाल कर लिया बाम कर में
गुरु-मूर्ति के समीप हाथ रख दाहिना
एक ही आघात में अंगुष्ठ काटा मूल से।"

4.9.4 नरेश मेहता के काव्य में दलित-चेतना

साठोत्तरी कवि नरेश मेहता के द्वारा रचित सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'शबरी' में दलित-चेतना मुखरित हुई है। इस रचना में नरेश मेहता दिखाते हैं कि शबरी नामक दलित स्त्री कभी भी सवर्णों के

तिरस्कार का शिकार नहीं हुई। सवर्ण नारी सूर्पणखाँ का नाम जहाँ कोई लेना नहीं चाहता, वहीं दूसरी ओर असवर्ण अथवा दलित नारी शबरी को महर्षि बाल्मीकी ने भी अमरता प्रदान की है। साठोत्तरी कविता में दलित-चेतना की प्रतीक शबरी को सम्माननीय स्थान दिया गया है। यथा -

"त्रेता युग की व्यथामयी
यह कथा दीन नारी की
राम-कथा से जुड़कर
पावन हुई, उसी शबरी की।
बदल गया था सतयुग
का सारा समाज त्रेता में,
वन-अरण्य की ग्राम्य-सभ्यता
नागर थी त्रेता में।"

'शबरी' नामक कविता में नरेश मेहता ने दलित चेतना को साकार किया है। भील जाति की स्त्री शबरी भले ही दलित महिला थी किन्तु साहित्य में उनका महत्त्व श्रेष्ठ था। शबरी महान तपस्विनी त्याग तथा परिश्रम की साक्षात प्रतिमूर्ति थीं। शबरी के माध्यम से नरेश मेहता दलित चेतना को साकार कर के देखते हैं -

"शबरी की दिनचर्या अब
पूजा प्रबंध था करना,
अब थी अभिभावक पूरी
सब पर निगरानी रखना।
अब कभी-कभी प्रवचन में उल्लेखित होती शबरी
मानो वह परम सती हो
हो भक्त शिरोमणि शबरी।"

4.9.5 जगदीश गुप्त का काव्य और दलित चेतना

साठोत्तरी कविता के दलित चेतना काव्य में जगदीश गुप्त का महत्वपूर्ण योगदान है। काव्य के क्षेत्र में जगदीश गुप्त द्वारा रचित दलित-चेतना पर आधारित काव्य 'शम्बूक' मील का पत्थर साबित हुआ। 'शम्बूक' नामक पात्र पर आधारित इस काव्य की रचना हुई, जो महान तपस्वी था। भगवान राम द्वारा शम्बूक के घोर तपस्या करते समय उसके सिर को काट दिया गया। दलितों के प्रति शोषण, अपमान तथा अन्याय की यह विषाक्त भावना समाज के मस्तक पर निश्चित ही कलंक है। साठोत्तरी कविता में इस कलंक को धोने का प्रयास किया गया है। जगदीश गुप्त द्वारा रचित 'शम्बूक' उसका अच्छा उदाहरण है -

"हे राम!
तुम्हारी रची
रक्त की भाषा में
हर बार

तुम्ही से कहता है
शम्बूक मूक,
तज कर्म-वेद-पथ,...
मानव समाज की
ऊर्ध्वमुखी मर्यादा में
तुम गए चूक।"

तपस्या करने का अधिकार हर व्यक्ति को होता है चाहे वह तथाकथित उच्च वर्ग का व्यक्ति हो या फिर तथाकथित निम्न वर्ग का ही व्यक्ति क्यों न हो। उच्च तथा निम्न वर्ग समाज की देन है।

4.9.6 रामधारी सिंह दिनकर और दलित तथा जनजातीय चेतना

रामधारी सिंह दिनकर साठोत्तरी हिन्दी कविता में दलित तथा जनजातीय चेतना के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। अत्याचार तथा अन्याय के विरुद्ध उनकी कविता विद्रोह की आवाज़ बुलंद करती है। उनकी रचनाएँ दलितों, शोषितों, उपेक्षितों, पीड़ितों के प्रति सहानुभूति दर्शाती हैं । साथ ही उनकी कविता सामाजिक जड़ता तथा सामाजिक विषमता को तोड़ने के लिए संघर्ष का भाव जगाती है। दिनकर की इस विधान की सर्जन है 'रश्मिरथी' जिसका नायक कर्ण उपेक्षितों, दलितों एवं अपमानितों का प्रतिनिधि है। 'महाभारत' तथा 'रश्मिरथी' के कर्ण में जो भिन्नता है वह कवि की दलित-चेतना की उपज है। अतः इसी परिप्रेक्ष्य में 'रश्मिरथी' दलित-चेतना का दस्तावेज है।

वर्ण-व्यवस्था और संघर्ष से उपजे जातिवाद के नाकार और विद्रोह का चिंतन है 'दलित-चेतना'। जातिवाद का विरोध करते हुये दिनकर ने 'रश्मिरथी' में कर्ण-चरित के निर्माण को नयी भावना की स्थापना का प्रयास कहा है। यहाँ जाति-धर्म के ठेकेदारों से रश्मिरथी का कर्ण सीधे टकराता है। यह टकराव एक नयी दिशा की ओर इशारा करती है। कर्ण दलित, प्रताड़ित, निरीह, निर्धन जन का सखा सहचर बनकर विधि-विधान के विरुद्ध खड़ा होता है -

"जग में जो भी निर्दलित प्रताड़ित जन हैं,
जो भी निरीह हैं, निन्दित हैं, निर्धन हैं,
यह कर्ण उन्हीं का सखा, बंधु, सहचर है,
विधि के विरुद्ध ही उसका रहा समर है।"

'रश्मिरथी' खंड काव्य का आरंभ शौर्य प्रदर्शन के बहाने इस सामाजिक विसंगति के विरोध से ही हुआ। हस्तिनापुर में आयोजित शौर्य प्रदर्शन में पहुँचकर कर्ण का अर्जुन को ललकारना द्रष्टव्य है -

"तूने जो-जो किया, उसे मैं भी दिखला सकता हूँ।

चाहे तो कुछ नयी कलाएँ भी सिखला सकता हूँ।"

कर्ण जातिवाद का विरोध करते हुये कहता है -

"जाति-जाति रटते, जिनकी पूजा केवल पाषंड।
मैं क्या जानूँ जाति? जाति है ये मेरे भुजदंड।"

कर्ण के माध्यम से दिनकर ने दलितों में एक नयी चेतना का संचार किया। आधुनिक मानव को पौरुष के प्रति आस्थावान बनाने में कर्ण से अधिक उपयुक्त उदाहरण कोई नहीं हो सकता। कवि कर्ण के माध्यम से व्यक्ति-मानव की प्रतिष्ठा का प्रयास कराते हैं। दिनकर के द्वारा रचित 'परशुराम की प्रतीक्षा' कृति महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इस कृति में कवि उसी यथार्थ को प्रस्तुत करते हैं कि भेदभाव समाज को कमजोर बना रही है।

"वैषम्य घोर जब तक यह शेष रहेगा,
दुर्बल का दुर्बल यह देश होगा।"

4.9.7 सुभद्रा कुमारी चौहान एवं स्त्री चेतना

आधुनिक युग की राष्ट्रीय काव्यधारा की प्रतिनिधि कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान भारतीय स्वाधीनता संग्राम की प्रथम राष्ट्र कोकिला के रूप में पहचानी जाती हैं। इसी काव्यधारा की भूमि पर उनका काव्य पुष्पित व पल्लवित हुआ है। सुभद्रा कुमारी राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा के उन रचनाकारों में से एक हैं जो सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध आवाज़ उठाती हैं। उन्होंने साहित्य का सदुपयोग राजनीतिक आंदोलन के लिए किया।

जब स्त्रियों को केवल परदे के अंदर रहने की अनुमति हुआ करती थी, उसे केवल अक्रियशील प्राणी के रूप में देखा जाता था, ऐसे समय में सुभद्रा कुमारी ने स्त्री चेतना को जगाया। स्वतन्त्रता संग्राम में सक्रिय भूमिका निभाने में उनका सम्पूर्ण जीवन व्याप्त रहा। उसके अतिरिक्त साहित्य लेखन तथा सामाजिक प्रगति एवं नारी जागरण के लिए उनका जीवन समर्पित रहा। 'झाँसी की रानी' नामक कालजयी कविता लिखकर सुभद्रा कुमारी ने रानी लक्ष्मीबाई के साहस, वीरता व शौर्य का चित्रण किया। इस कविता के माध्यम से वे लक्ष्मीबाई की तरह समस्त नारी जाति को वीरांगना बनने की प्रेरणा देती हैं। इस कविता के विषय में सुभद्रा कुमारी की बेटी सुधा चौहान ने अपनी पुस्तक 'सुभद्रा कुमारी चौहान' में लिखा है - " 'झाँसी की रानी' कविता वह मशाल थी जिसके प्रकाश की किरणों से गुलामी का अंधेरा कट रहा था। सुभद्रा के हृदय का देश-प्रेम इस कविता के माध्यम से न जाने कितने दिलों में भी देश-प्रेम की लौ जला देता था।"

'झाँसी की रानी' कविता आधुनिक युग की ऐसी हिन्दी वीर कविता है, जो अपनी सहज-सरल भाषा के कारण लोक मानस का अंग बना हुआ है। उदाहरण स्वरूप कुछ पंक्तियाँ देखें -

"सिंहासन हिल उठे राजवंशों ने भृकुटी तानी थी

*** *** *** ***

बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।"

असहयोग आंदोलन में भाग लेने के लिए कवयित्री पंद्रह करोड़ भारतीय महिलाओं से आह्वान करती हैं। अत्याचार और आक्रोश के विरुद्ध का स्वर उनकी 'विजया दशमी' नामक कविता में कुछ इस प्रकार मुखर होती है - **"पंद्रह कोटि असहयोगिनियाँ**

दहला दें ब्रह्मामण्ड सखी।
भारत-लक्ष्मी लौटाने को
रच दें लंका काण्ड सखी।"

4.9.8 स्त्री चेतना और अरुण कमल की कविता

आधुनिक युग के कवियों में अरुण कमल का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने वर्तमान शोषणमूलक व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह की आवाज़ बुलंद की है। उनकी रचनाओं में मानवीय व्यवस्था के निर्माण हेतु आकुलता परिलक्षित होती है। 'स्वप्न' नामक कविता में वे परंपरा के बीच जकड़ी हुई स्त्री की चेतनात्मक मनोस्थिति का चित्रण करते हैं -

"वह बार-बार भागती रही
बार-बार हर रात एक ही सपना देखती
ताकि भूल न जाये मुक्ति की इच्छा
मुक्ति न भी मिले तो बना रहे मुक्ति का स्वप्न
बदले न भी जीवन तो जीवित बचे बदलने का यत्न"

स्त्री की उपस्थिति अरुण कमल की कविताओं में महत्वपूर्ण है। 'अपनी केवल धार' कविता-संग्रह में संग्रहित 'धरती और भार' शीर्षक कविता में कवि ने एक ऐसे गर्भवती नारी के प्रति सहानुभूति व्यक्त की है जो डोल हाथ में टाँगे पानी भरने जाती है। कविता में कवि के डर को दिखाया गया है जो एक गर्भवती स्त्री को पानी भरते जाते देख रहा है। कवि को डर है कि रुखड़ी गली से होकर जाने से पेट डोल जाएगा और गर्भ का शिशु झूल जाएगा। जामुन की डाल-सी कमजोर हो गई उस गर्भवती नारी के चित्रण द्वारा कवि भारतीय स्त्रियों की स्थिति को चित्रित करते हैं। यहाँ अपने परिवार के लिए पानी लाने वाली उस गर्भवती स्त्री की विवशता का चित्रण इस कविता में हुआ है। देखें -

"दोनों हाथों से लटके हुए डोल
अब और तुम्हें खींचेंगे धरती पर
झोर देंगे देह की नसें
उकस जाएंगी हड्डियाँ
ऊपर-नीचे डोलेगा पेट
और थक जाएगा बउआ..."

अरुण कमल की एक अन्य कविता है 'ओह बेचारी कुबड़ी बुढ़िया'। इस कविता में कवि ने अपनी गली की उस कुबड़ी बुढ़िया की करुण कथा कही है जिसकी अचानक मृत्यु हो गई -

"अचानक ही चल बसी

हमारी गली की कुबड़ी बुढ़िया
अभी तो कल ही बात हुई थी
जब वह कोयला तोड़ रही थी
आज सुबह भी मैंने उसको
नल पर पानी भरते देखा।"

4.9.9 समकालीन अन्य कविताएँ एवं चेतना के स्वर

हिंदी साहित्य काव्यधारा में स्त्री चेतना एवं जनजातीय चेतना को लेकर काफी मात्रा में कविताएँ लिखी गई हैं और लिखी जा रही हैं। यहाँ कवयित्री 'निर्मला पुतुल' का नाम उल्लेखनीय है। स्त्री की पीड़ा, उसके एकांत स्वरों को सुनती कवयित्री निर्मला पुतुल स्त्री के भीतर खौलते इतिहास को पढ़ने की चेष्टा करती हैं। वे लिखती हैं -

"बाबा, मत व्याहना उस देश में
जहाँ मुझसे मिलने जाने खातिर
घर की बकरियाँ बेचनी पड़े तुम्हें"

सामाजिक जिम्मेदारियों का निर्वाह करते हुये कठपुतलियों सी नाचती हुई स्त्री की अन्तर्मन की पीड़ा को पढ़ने का प्रयास करती कवयित्री समाज से स्त्री को समझाते हुये लिखती हैं -

"क्या तुम जानते हो
पुरुष से भिन्न
एक स्त्री का एकांत
घर-प्रेम और जाति से अलग
एक स्त्री को उसकी अपनी जमीन
के बारे में बता सकते हो तुम।
बता सकते हो
सदियों से अपना घर तलाशती
एक बेचैन स्त्री को
उसके घर का पता।"

एक तरफ जहाँ कवयित्री स्त्री की खामोशी व अन्तर्मन की बात सुनती हैं तो दूसरी ओर अपनी दूसरी कविता में सबको नगाड़े की तरह बजने की कल्पना कर सबको जगाने की चाह रखती हैं -

"चाहती हूँ मैं
नगाड़े की तरह बजें मेरे शब्द
और निकाल पड़ें लोग
अपने-अपने घरों से सड़क पर।"

दलित साहित्य के महत्वपूर्ण रचनाकार ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताओं को देखें तो इन्होंने जातिवाद से ग्रस्त और उसके संस्कारों की तिलमिलाहट को महसूस किया और अपनी कविताओं में व्यक्त किया। देखें - **"तुमने कहा-**

ब्रह्मा के पाँव से जन्मे शूद्र
और सिर से ब्राह्मण
उन्होंने पलटकर नहीं पूछा-
ब्रह्म कहाँ से जन्मा?"

समकालीन कविता दलित कविता के रूप में उनकी ओर से विद्रोह की आवाज़ बुलंद कर रही है। एक बड़ा हिस्सा समकालीन कविता के माध्यम से उनकी बोली में गूँजती है। आज की कविताओं में समाज में स्त्री की स्थिति तथा उसमें परिवर्तन काव्य में देखने को मिलती है। स्त्री पर केन्द्रित 'केरल की लोकधुन' पर अनामिका ने लिखी। जो बलात्कार को झेलती है, जिन्हें यातना तोड़कर बिखराती नहीं। यह कविता उन छोटी-छोटी लड़कियों की एहसास पर लिखी गयी है। कविता का कुछ अंश देखें - **"आरारी अरारिआरो...**

...उफ, अम्मा, मैंने भी
लेकिन हथियार नहीं डाले
कि जो बाजरा कूटकर
रोटियाँ खिलाई थीं तुमने-
मैंने उनकी
सैरियत तो दी-
मानो न, अम्मा, दी, बिलकुल दी...जल्दी तो हार नहीं मानी।
थोड़ा-सा खून बहा, उसके छपाके से बांबी के फूल रंग गए,
ओ अम्मा, ओ अम्मा-
मत रोओ लेकिन कि
एक छपाका खून ही तो था,
वो फिर से बन जाएगा।
....आरारी अरारिआरो..."

इस प्रकार समकालीन कविता में दलित चेतना, स्त्री चेतना एवं जनजातीय चेतना के स्वर मुखरित हुआ हैं।

<u>'अपनी प्रगति जांचिए'</u>

20. 'शम्बूक' नामक काव्य किस कवि द्वारा रचित है?
21. किस कवयित्री को राष्ट्रीय-कोकिला कहा जाता है?
22. 'रश्मिरथी' की रचना किस कवि ने की?

23. ‘परशुराम की प्रतीक्षा’ नाम कृति किस कवि द्वारा रचित है?

4.10 सारांश

छायावाद काव्यधारा के बाद विभिन्न प्रकार के साहित्य की रचना हुई। रचनाओं के विषयों में विविधता होने के कारण इसे न छायावाद में रखा जा सकता था न किसी अन्य वाद के अंतर्गत बांधा जा सकता था। राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा जो भारतेन्दु युग से चली आ रही थी उसका स्वर इस काल तक मुखर हुआ। निराला संवेदना व अनुभव के द्वारा जन-जीवन को अपनाते हैं। उनके काव्य में मार्क्सवाद या समाजवाद के दर्शन स्पष्ट रूप से सामने नहीं आते। उन्होंने यथार्थ को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है।

सं 1936 ई. में जहाँ पंत युगांत की घोषणा करते हैं वही सं 1939 ई. में युगवाणी और ग्राम्या की रचना करते हैं। पंत मार्क्सवाद, भौतिक-जीवन तथा जन-जीवन के सत्यों की ओर उन्मुख हुये। उन्होंने मार्क्सवादी सिद्धान्त की अभिव्यक्ति की है। वे ग्रामीण जीवन के विभिन्न छवियों का चित्रण मार्क्सवादी दृष्टि से करते हैं।

महादेवी ने अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम ‘गीति’ को बनाया। छायावादी काव्य प्रकृति के समान इनके काव्य प्रकृति भी गीतात्मक है। ‘दीपशिखा’ उनकी महत्वपूर्ण काव्य कृति है। लौकिक संवेदना रहस्यवादी आभास ने एक पंक्ति में होकर नये का विस्तार काव्य में किया। इस कारण लौकिक मूर्तता, प्रत्यक्षता तथा तीव्रता वहाँ से विलीन हो जाती है। निजता उनके गीतों में प्रवाहमान रहती है। सूक्ष्म चित्रात्मकता उनके गीतों में व्याप्त है।

व्यक्तिवादी कवियों की दृष्टि रोमानी रही। वस्तु जगत के प्रति इन कवियों की प्रतिक्रिया भी अत्यंत भावुक रही है। इनकी कविताओं में आत्मसंपृक्ति और उत्तेजना मिलती है। जो बड़े स्पष्ट रूप से अपने वैयक्तिक प्रेम संवेग एवं सुख-दुख को व्यक्त करने के लिए छटपटाते रहते हैं। इनकी वेदना छायावाद कवियों की तरह सामान्य न होकर वैयक्तिक है जो अनुभव के बिम्ब को पूरी सफलता के साथ उकेरता है। व्यक्तिवादी गीति कविता ‘मैं’ को माध्यम बनाकर अपना अनुभव व्यक्त करती है। यहाँ ‘मैं’ अपने समूचे राग-विराग के साथ निर्व्याज भाव से स्वतः निकलता है। वैयक्तिक गीति काव्य में कहीं-कहीं प्रगतिवादी कविता जैसा विद्रोह ध्वनित हुआ। बच्चन के ‘बंगाल का काल’, नरेंद्र शर्मा के ‘अग्निशस्य’, अंचल की ‘किरण बेला’ तथा शंभुनाथ सिंह के ‘मन्वंतर’ आदि में। वैयक्तिक अस्वीकृति की प्रबल भावना तथा समाज में व्याप्त असंतोष की भावना के कारण इस धारा के कवियों में विद्रोही भावना दृष्टिगोचर होती है।

राष्ट्रीयता का अर्थ राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा की कविता में सम्पूर्ण भारतवर्ष की एकता और अखंडता के रूप में विकसित हुआ। इस धारा की कविताओं में राष्ट्रीयता का जो स्वरूप आधुनिक काल में विकसित हुआ, उसके तीन आधार हैं - प्रथम अंग्रेजी शासन की स्थापना पूरे देश में होना, द्वितीय समस्त भारतीय प्रजा का अंग्रेजी शासन से उत्पन्न एक सम यातना का अनुभव करना, तथा तृतीय पूरे देश में स्वाधीनता आंदोलन और मुक्ति चेतना का प्रसार होना। इस काल

में सबसे अधिक सशक्त कवि दिनकर थे। विचार एवं संवेदना का समन्वय इनके काव्यों में परिलक्षित होता है। राष्ट्रीयता का मूल रूप से चित्रण विदेशी शासन के अत्याचारों, उनसे प्रसूत जन-यातनाओं और जनता के मन में उठती हुई क्रोध, असंतोष की ललकारों के रूप में मुख्यता से हुआ है। दिनकर, मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, माखन लाल चतुर्वेदी, नवीन आदि कवियों की कविताओं में हम राष्ट्रीयता की झलक देखते हैं।

छायावाद के बाद प्रगतिवाद का उदय हुआ, जो एक सशक्त साहित्यिक आंदोलन के रूप में उभरा। प्रगतिवादी काव्यधारा से हिन्दी के कवि काफी प्रभावित रहें। इस काव्य धारा में नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह, त्रिलोचन तथा मुक्तिबोध आदि कवि प्रमुख रहें। इस धारा के काव्य में समाज में जो घटित हो रहा है प्रगतिवादी कवियों ने उसे ही अपनी कविताओं के माध्यम से हमारे समक्ष रखा है। 1943 ई. में अज्ञेय द्वारा तारसप्तक के प्रकाशन से 'प्रयोगवाद' की स्थापना होती है। प्रयोगवादी कवि काव्य में नए प्रयोग पर बल देते हैं। उनका कहना था कि सारे प्रतिमान, सारे बिम्ब पुराने हो गए हैं अतः काव्य में नए प्रतिमानों की, नए बिंबों की आवश्यकता है। इन कवियों ने केवल प्रयोगशीलता को ही काव्य का धर्म नहीं माना, बल्कि काव्य के कला पक्ष और रूप पक्ष पर भी बल दिया। प्रयोगवादी कवियों ने समाज की तुलना में व्यक्ति को, उनके अनुभवों को महत्ता प्रदान की।

नयी कविता प्रयोगवाद का ही विकसित रूप है। 'नयी कविता' नामक पत्रिका के प्रकाशन से डॉ. रामविलस शर्मा नयी कविता का आरंभ मानते है। क्षणबोध, वैयक्तिक अनुभूति, व्यक्ति की स्वतंत्रता, लघु मानव की महत्ता, अकेलापन का चित्रण आदि इस कविता की पहचान है। नयी कविताओं में कवियों ने सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति की है। धर्मवीर भारती ने नयी कविता को पुराने और नये मानव मूल्यों के टकराव से उत्पन्न तनाव की कविता कहा है। मुक्तिबोध के अनुसार नयी कविता मूलतः एक परिस्थिति का भीतर पलते हुये मानव हृदय की कविता है।

समकालीन हिन्दी कविता की महत्वपूर्ण विधा है 'नवगीत। छठे दशक के उत्तरार्द्ध में इसकी रूप रेखा तैयार हुई। जीवन के संघर्ष और लोकधर्मी अनुभूतियों से नवगीत ने अपना अनुभव जोड़े रखा। इस विधा आम-आदमी के दुख और संघर्ष के गीत गाये गए हैं। नवगीत में चमत्कार एवं आडंबर के स्थान पर सरल व सपाट भाषा का प्रयोग किया गया है।

नयी कविता आंदोलन के बाद जिस काव्य धारा आंदोलन का आगमन होता है उसे समकालीन कविता कहा गया। समकालीन कविता समाज की मान्यताओं से मोह भंग की कविता है। अतः साठोत्तरी कविता में अस्वीकृति, असंतोष और विद्रोह का स्वर बहुत स्पष्ट रूप में सामने आया। यह स्वर कहीं व्यंग्य रूप में तो कहीं खुले रूप में उभरे। जीवन की प्रामाणिक अनुभूतियों को जीवन परिवेश में अभिव्यक्त किया गया।

हिन्दी साहित्य में दलित चेतना, स्त्री चेतना और जनजातीय चेतना की कविताएँ अधिक मात्रा में लिखी गयी हैं। आठवें एवं नौवें दशक से हिन्दी में दलित साहित्य का सृजन देखा जा सकता है। दलित चेतना से जुड़ाव व उसके प्रभाव निराला की कविताओं में देखा जा सकता है। निराला की काव्य चेतना का मूल आधार सामाजिक दलन और आर्थिक शोषण की पीड़ा से मानव को मुक्ति दिलाना है। यह चेतना दलित चेतना से निर्मित है।

नागार्जुन एक जनवादी कवि के रूप में अपने समय-समाज की विसंगतियों को यथार्थ रूप में चित्रित करते हैं। नागार्जुन की कविताओं में समाज में बढ़ती बेरोजगारी, भुखमरी, गरीबी, अकाल तथा अभावभरी जिंदगी का यथार्थ आदि दिखाई देता है। दलित चेतना के रूप में रामकुमार वर्मा द्वारा रचित 'एकलव्य' को साठोत्तरी कविता में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। 'एकलव्य' में सदियों से उपेक्षित दलित-चेतना का अद्वितीय धनुर्धर एकलव्य अपना परिचय देता है। नरेश मेहता द्वारा रचित 'शबरी' में भी दलित-चेतना का रूप उभरा है। साठोत्तरी कविता में दलित चेतना की प्रतीक शबरी को सम्मानीय रूप प्रदान किया गया। साठोत्तरी कविता के दलित चेतना काव्य में जगदीश गुप्त का महत्वपूर्ण योगदान है। काव्य के क्षेत्र में जगदीश गुप्त द्वारा रचित दलित-चेतना पर आधारित काव्य 'शम्बूक' मील का पत्थर साबित हुआ। रामधारी सिंह दिनकर की रचनाएँ दलितों, शोषितों, उपेक्षितों, पीड़ितों के प्रति सहानुभूति दर्शाती हैं, साथ ही उनकी कविता सामाजिक जड़ता तथा सामाजिक विषमता को तोड़ने के लिए संघर्ष का भाव जगाती है। दिनकर की इस विधान की सर्जन है 'रश्मिरथी' जिसका नायक कर्ण उपेक्षितों, दलितों एवं अपमानितों का प्रतिनिधि है।

प्रथम राष्ट्रीय-कोकिला सुभद्रा कुमारी चौहान ने नारी चेतना को उस वक्त जगाया जब स्त्रियों को केवल परदे के अंदर रहने की अनुमति हुआ करती थी। उन्होंने 'झाँसी की रानी' जैसी कालजयी कविता लिखकर समस्त नारी जाति को लक्ष्मी बाई की तरह वीरांगना बनने की प्रेरणा देकर नारी जागरण का उद्घोष किया। वहीं दूसरी तरफ आधुनिक काल के समकालीन कवि अरुण कमल मानवीय व्यवस्था के निर्माण हेतु आकुलता परिलक्षित होती है। समाज में स्त्री की स्थिति और भूमिका में होने वाला परिवर्तन भी आज की कविताओं में देखने को मिलता है।

इकाई -5 हिंदी गंद्य के प्रमुख विधाओं का उद्भव और विकास-I

5.0 परिचय

जैसा कि हम सभी जानते हैं यह पाठ्यक्रम गद्य साहित्य पर आधारित है| इस पाठ्यक्रम का मुख्य उद्देश्य है आपको साहित्य के प्रमुख रूपों से सैद्धांतिक तथा व्यवहारिक रूप से परिचय कराना| इस इकाई में गद्य के विविध रूप लिए गए हैं तथा उन रूपों की विशेषताओं को बताने का प्रयास किया गया है| वास्तव में इस इकाई का उद्देश्य आपको साहित्य के गूढ़ से गूढ़ प्रश्नों की ओर ले जाने का एक छोटा सा प्रयास है|संसार की सभी भाषाओं में पहले पद रचना हुई और गद्य का विकास बाद में हुआ| हिंदी साहित्य के विगत कालों में धार्मिक उपदेश, जीवन चरित लेखन आदि के माध्यमों से ब्रज भाषा का प्रयोग सीमित दायरे में होता था| आधुनिक काल में प्रजातांत्रिक आदर्शों के कारण जीवन का ढांचा बदलने लगा तथा शिक्षा, शासन, उद्योग, विज्ञान आदि सभी क्षेत्रों में गद्य की अनिवार्यता हो गई जिसका प्रभाव साहित्य पर पड़ा| आगे चलकर हिंदी साहित्य के आधुनिक काल को गद्य युग कहा गया| जब भारत में अंग्रेजों ने अपने पैर जमाने शुरू किए तो जनसंपर्क के माध्यम के रूप में हिंदी का प्रयोग होने लगा |19वीं शताब्दी के प्रारंभ में लल्लू लाल, सदल मिश्र, इंशाअल्ला खां आदि ने अरबी फारसी मिश्रित गद्य लिखा| भारतेंदु काल में सामान्य जीवन से संबंधित विषयों पर गद्य लिखे जाने लगे और विषय के अनुसार भाषा का प्रयोग होने लगा| नाटक, उपन्यास कहानी, निबंध, व्यंग आदि सभी विधाओं में रचनाएं होने लगीं| इन सभी के लेखक अपनी-अपनी प्रवृत्ति के अनुसार भाषा का प्रयोग करते रहे| भारतेंदु काल में व्याकरण व्यवस्था कमजोर रही| इस समय राजा लक्ष्मण सिंह, राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद, देवकीनंदन खत्री, प्रताप नारायण मिश्र, लाला श्रीनिवास दास, बालकृष्ण भट्ट, बद्रीनारायण चौधरी आदि प्रमुख गद्य लेखक रहे| आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और सरस्वती पत्रिका का योगदान हिंदी के विकास में प्रमुख रूप से रहा| धीरे-धीरे हिंदी का शुद्ध रूप सामने आने लगा और प्रामाणिक व्याकरण का ग्रंथ प्रकाशित हुआ| दिवेदी काल में विज्ञान विषयों से संबंधित निबंध, संस्मरण, आत्मकथा, पत्रकारिता आदि विषयों पर भी लेखनी चलने लगी थी| अनुवाद भी बढ़-चढ़कर हो रहे थे| इस तरह दिवेदी युग में गद्य साहित्य का चौमुखी विकास हुआ| इस युग के गद्यकारों में प्रेमचंद, श्यामसुंदर दास, चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' ,सरदार पूर्ण सिंह, आचार्य रामचंद्र शुक्ल आदि प्रमुख हैं| इसी समय प्रसिद्ध कवियों में अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानंदन पंत आदि रहे| छायावादी युग में केवल कविताएं ही नहीं लिखी गई बल्कि गद्य

विधाओं में भी विद्रोह की छटा दिखाई देती है| भाषा में लाक्षणिक और कलात्मक शब्दावली दिखाई देती है| इसके साथ ही गद्य साहित्य में जीवन के अंतर्द्वंदों की मनोवैज्ञानिक परख का स्वागत हुआ| रेडियो नाटकों तथा भाव चित्रों का पर्याप्त विकास हुआ| महादेवी वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, बेचन शर्मा 'उग्र', राम कुमार वर्मा, नंददुलारे वाजपेयी, वियोगी हरि, राय कृष्णदास की गलियों में यह विशेषताएं दिखाई देती हैं| धीरे-धीरे गद्य बदल रहा है| अब अर्थ ग्रहण में ध्वनि और लाक्षणिकता की प्रधानता है| वर्तमान युग में गद्य का क्षेत्र बड़ा ही व्यापक हो गया है| सामयिक पत्र-पत्रिकाओं के प्रचलन के कारण गद्य के विकास की असीम संभावनाएं दिखाई देती हैं| प्रस्तुत इकाई में गद्य की विभिन्न विधाओं को चर्चा का विषय बनाया गया है, साथ ही भारतेंदु, द्विवेदी, शुक्ल और शुक्लोत्तर युगीन आलोचना का विस्तार से विवेचन करते हुए नई समीक्षा को लिया गया है, साथ ही आलोचना के प्रकारों को रेखांकित किया गया है| इस इकाई में दक्षिणी हिंदी साहित्य का सामान्य परिचय देते हुए उसके स्वरूप और विकास को देकर उसके क्षेत्र का निर्धारण किया गया है|

5.1 इकाई के उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई हिंदी गद्य की प्रमुख विधाओं का उद्भव और विकास से संबंधित है| हिंदी गद्य परंपरा का अपना महत्व रहा है| इस इकाई में गद्य की प्रमुख विधाओं की विस्तार से जानकारी दी गई है|

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के पश्चात आप-

- हिंदी गद्य की साहित्यिक पृष्ठभूमि को जान और समझ सकेंगे |
- आप नाटक, निबंध, उपन्यास, कहानी, एकांकी जैसी प्रसिद्ध गद्य विधाओं को जान और समझ सकेंगे तथा इनसे संबंधित रचनाओं की व्याख्या भी कर सकेंगे |
- गद्य की विभिन्न विधाओं के मानदंडों को विद्यार्थी समझ सकेंगे |
- गद्य साहित्य में आलोचना के महत्व और उसकी आवश्यकता को जाना जा सकेगा |
- विद्यार्थी रेखाचित्र और संस्मरण का अंतर जान और समझ सकेंगे |
- जीवनी और आत्मकथा की विशेषताओं का विद्यार्थी परिचय पा सकेंगे |
- बदलते समय के साथ रिपोर्ताज़ की आज की आवश्यकता और मांग को जा ना जा सकेगा |
- बदलते समय के साथ यात्रा साहित्य की उपादेयता को विद्यार्थी जान पाएंगे |
- पत्र साहित्य और डायरी साहित्य के लेखन कौशल को विद्यार्थी जान और समझ पाएंगे |

. इस इकाई के द्वारा विद्यार्थी दक्खिनी हिंदी साहित्य के स्वरूप विकास और क्षेत्र को जान और समझ सकेंगे |

5.2 नाटक

मानवीय राग, मनोभाव, विचार, अनुभूति, स्वप्न और कला की कलात्मक अभिव्यक्ति ही साहित्य है| साहित्य की विविध विधाएं जैसे काव्य, उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी आदि सभी अपने अपने ढंग से जीवन की व्याख्या करते हैं| नाटक, काव्य का एक रूप है जो रचना श्रवण द्वारा ही नहीं अपितु दृष्टि द्वारा भी दर्शकों के हृदय में रस अनुभूति करती है उसे नाटक या दृश्य काव्य कहते हैं| नाटक में श्रव्य काव्य से अधिक रमणीयता होती है| दृश्य- श्रव्य काव्य होने के कारण यह लोक चेतना से अपेक्षाकृत अधिक घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है| नाट्यशास्त्र में लोक चेतना को नाटक के लेखन और मंचन की मूल प्रेरणा माना गया है| नाटक के लिए यह माना जाता है कि इसमें ली जाने वाली कथा प्रसिद्ध होनी चाहिए, अनेक रस होने चाहिए, 5 से लेकर 10 तक अंक होने चाहिए, नाटक का नायक धीरोदात्त और प्रसिद्ध वंश का होना चाहिए, इसमें अंगीरस के रूप में श्रंगार और वीर रस को लिया जाना चाहिए, उपसंहार में मंगल दिखाया जाना चाहिए| हिंदी में नाटकों का प्रारंभ भारतेंदु हरिश्चंद्र से माना जाता है| इस काल के भारतेंदु तथा उनके समकालीन नाटककारो ने लोक चेतना के विकास के लिए नाटकों की रचना थी इसलिए इस समय की सामाजिक समस्याओं को नाटकों में अभिव्यक्त होने का अच्छा अवसर मिला| भारतेंदु से पहले नौटंकी की तरह रचनाएं लिखी जाती थी और मंच तो होते नहीं थे इसलिए खुले स्टेज पर इन्हें खेला जाता था| अमानत लखनवी की रचना 'इंदर सभा' इस कड़ी की पहली रचना है| इसके पश्चात मदारी लाल की 'इंदर सभा', 'हवाई इंदर सभा'आदि रचनाएं लिखी गईं तथा पारसी नाटक मंडलियों ने इन सभाओं को अपनाया| भारतेंदु हरिश्चंद्र इन्हें नाटकाभास कहते थे| उन्होंने इनकी पैरोडी के रूप में 'बंदर सभा' लिखी थी| इस तरह भारतेंदु से पूर्व नाट्य परंपरा के कुछ प्रयास दिखाई देते हैं किंतु 1850 से 1868 तक हिंदी रंगमंच का उदय और प्रचार-प्रसार होने लगा| इस समय कुछ रंग संस्थाएं स्थापित हुई और नाट्य सृजन की दृढ़ परंपरा का निर्माण हुआ| भारतेंदु ने कई नाटकों की रचना की किंतु सन 1885 में उनकी मृत्यु के पश्चात यह परंपरा रुक सी गई और पुनः बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में सिनेमा के आगमन ने पारसी रंगमंच को सर्वथा समाप्त कर दिया| थोड़े बहुत नाटक लिखे जाते रहे| जयशंकर प्रसाद, उपेंद्रनाथ अश्क, सेठ गोविंददास, जगदीश चंद्र माथुर, डॉ रामकुमार वर्मा आदि ने नाटकों की रचना की| स्वतंत्रता के पश्चात कई स्थाई रंगमंच बने और अच्छे नाटकों के साथ

साथ कलाकारों को भी प्रोत्साहन दिया गया| पृथ्वीराज कपूर ने पृथ्वी थिएटर की स्थापना की और कई नाटकों की प्रस्तुति दी| यदि हम प्रमुख नाटककारों को देखें तो भारतेंदु हरिश्चंद्र, जयशंकर प्रसाद, जगदीश चंद्र माथुर, कमलेश्वर, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ,रामकुमार वर्मा, मोहन राकेश, स्वदेश दीपक, हरिकृष्ण प्रेमी आदि| समय के साथ हास्य एवं व्यंगपरक नाटक, सामाजिक नाटक,लोक नाटक, नुक्कड़ नाटक , ऐतिहासिक नाटक लिखे गए| नाटक के प्रमुख तत्वों में कथावस्तु, पात्र योजना(रस एवं अभिनय) संवाद योजना, संकलन त्रय, भाषा शैली एवं उद्देश्य को लिया जाता है| उपन्यास, कहानी आदि के लिए भी उपर्युक्त हे तत्व माने गए हैं| कथावस्तु एक स्वस्थ बीज की तरह होनी चाहिए जैसे स्वस्थ बीज होने पर अच्छा वृक्ष तैयार होता है उसी तरह अच्छी विषय वस्तु होने पर अच्छी रचना तैयार होती है| रचनाओं के लिए पात्र योजना का विशेष महत्व होता है क्योंकि मूल पात्र के इर्द-गिर्द कथा घूमती है तथा गौण पात्र कथा को आगे बढ़ाने में सहायक होते हैं| रचना में संवाद छोटे और प्रभावी होने चाहिए| संवादों से ही पात्रों के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है| चरित्रों के अभिनय से ही दर्शक या पाठक में रस का संचार होता है और वह आनंद की अनुभूति करते हैं| संकलन त्रय मैं देश, काल और वातावरण को लिया जाता है |

किसी भी रचना के लिए इन तीनों का विशेष महत्व होता है| भाषा के बिना रचना अधूरी होती है क्योंकि भाषा ही लेखक के संप्रेषण का आधार होती है| नाटक, उपन्यास, कहानी, एकांकी आदि के लिए संप्रेषण युक्त भाषा का होना अत्यंत आवश्यक है| इन रचनाओं में भाषा सरल और स्वाभाविक होनी चाहिए| कोई भी रचना उद्देश्य के बिना पूरी नहीं होती क्योंकि हर एक रचनाकार या कलाकार किसी उद्देश्य को लेकर ही अपनी रचना का सृजन करता है| उपन्यास, नाटक या कहानी बिना उद्देश्य के अधूरे रहते हैं| इस प्रकार विद्यार्थी यह ध्यान दें कि नाटक, उपन्यास और कहानी के लिए यही छः तत्व मान्य हैं|

5.3 निबंध

गद्य लेखन की एक विधा निबंध है| इस शब्द का प्रयोग किसी विषय की तार्किक और बौद्धिक विवेचना करने वाले लेखों के लिए भी किया जाता है| अंग्रेजी में इसे कंपोजीशन और एस्से के अर्थ में ग्रहण किया जाता है| आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार संस्कृत में भी निबंध का साहित्य है| प्राचीन संस्कृत साहित्य के निबंधों में धर्मशास्त्र के सिद्धांतों की तार्किक व्याख्या की जाती थी, उनमें व्यक्तित्व की विशेषता नहीं होती थी जबकि वर्तमान काल के निबंध संस्कृत के निबंधों से ठीक उल्टे हैं| इनमें व्यक्तित्व या वैयक्तिकता का गुण प्रधान

दिखाई देता है| निबंध में ऐसे ठोस रचना नियमों और तत्वों का निर्देश नहीं दिया जा सकता जिनका पालन करना निबंधकार के लिए आवश्यक हो| निबंध एक ऐसी कलाकृति है जिसके नियम लेखक द्वारा ही आविष्कृत होते हैं |हिंदी साहित्य कोश के अनुसार- 'लेखक बिना किसी संकोच के अपने पाठकों को अपने जीवन अनुभव सुनाता है और उन्हें आत्मीयता के साथ उनमें भाग लेने के लिए आमंत्रित करता है, उसकी यह घनिष्ठता जितनी सच्ची और सघन होगी, उसके निबंध का पाठकों पर उतना ही सीधा और तीव्र असर होगा| इसी आत्मीयता के फलस्वरूप निबंध-लेखक पाठकों को अपने पांडित्य से अभिभूत नहीं करना चाहता|'निबंध के दो विशेष गुण होते हैं- व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति और आत्मीय या अनौपचारिक स्तर| हिंदी साहित्य में आधुनिक युग में भारतेंदु और उनके सहयोगी से निबंध लिखने की परंपरा का आरंभ होता है| निबंध परंपरा को भारतेंदु युग, द्विवेदी युग, शुक्ल युग और शुक्लोत्तर युग में बांटा जा सकता है|आचार्य रामचंद्र शुक्ल का निबंध परंपरा में महत्वपूर्ण स्थान है और इनके निबंध चिंतामणि भाग 1 और भाग 2 में संकलित हैं| इन्होंने विचारात्मक और भावात्मक दोनों प्रकार के निबंध लिखे हैं| समय के साथ हिंदी निबंध लेखन में विशेषताएं और विचारात्मक निबंधों के साथ-साथ ललित निबंध भी लिखे गए| हिंदी के प्रमुख निबंधकारों में भारतेंदु हरिश्चंद्र, प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बालमुकुंद गुप्त, सरदार पूर्ण सिंह, महावीर प्रसाद द्विवेदी, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, महादेवी वर्मा, कुबेरनाथ राय, विद्यानिवास मिश्र, नंददुलारे वाजपेई आदि|

5.4 उपन्यास

आधुनिक काल में जितनी भी गद्य विधाएं दिखाई देती हैं उनमें उपन्यास का महत्वपूर्ण स्थान है| अंग्रेजी में इसे 'नावेल' के नाम से जाना जाता है| जहां एक ओर हिंदी के प्रथम चरण में लिखे गए उपन्यासों में मनोरंजन और समाज सुधार की भावना दिखाई देती है वहीं दूसरी ओर द्वितीय तृतीय और चतुर्थ चरण में लिखे गए उपन्यासों में समय के साथ बदलते गए विषयों की विविधता दिखाई देती है| उपन्यास में बड़े ही सहज ढंग से जीवन का स्वाभाविक चित्रण होता है| 'उप' का अर्थ होता है निकट और 'न्यास' का अर्थ होता है रखना अर्थात किसी भी रचना को पाठक के निकट रखना उपन्यास कहलाता है| उपन्यास को वास्तविक जीवन की कहानी तथा मानव के क्रियाकलापों का अध्ययन माना गया है| भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने उपन्यास की अनेक परिभाषाएं दी हैं| मुंशी प्रेमचंद मानते हैं- ' मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ| मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्य को खोलना उपन्यास का मूल तत्व है'| इसी तरह शिवदान सिंह चौहान कहते हैं- ' उपन्यास का क्षेत्र

अपरीसीमित है| वह साहित्य का एक नया और संश्लिष्ट रूप विधान है'| उपन्यास का महत्व निर्विवाद है| इसमें जीवन की विविध कठिनाइयों और विषमताओं के चित्रण के साथ ही साथ उनके समाधान का भी मार्ग खोजा जा सकता है, जिसके द्वारा जीवन की समस्याएं सुनाई जा सकती हैं| यह एक यथार्थवादी साहित्यिक विधा है |हिंदी के प्रारंभिक उपन्यास अंग्रेजी और बांग्ला भाषाओं में लिखित उपन्यासों के अनुवाद मात्र हैं| वास्तव में हिंदी के मौलिक उपन्यास भारतेंदु युग की देन हैं| हिंदी उपन्यास की विकास यात्रा को चार भागों में बांट सकते हैं- भारतेंदु युग(प्रथम चरण), द्वितीय चरण(प्रेमचंद युग), तृतीय चरण(प्रेमचंदोत्तर युग),अति आधुनिक युग| प्रथम चरण में भारतेंदु युग को लिया जा सकता है और यह समय 1850 से 1915 तक माना जा सकता है| लाला श्रीनिवास दास का 'परीक्षा गुरु' हिंदी का प्रथम मौलिक उपन्यास माना जाता है किंतु आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने श्रद्धाराम फिल्लौरी के उपन्यास 'भाग्यवती' को हिंदी का पहला उपन्यास माना है| इस समय के उपन्यासकारों में राधाकृष्ण दास, बालकृष्ण भट्ट, देवकीनंदन खत्री,किशोरी लाल गोस्वामी, अयोध्या सिंह उपाध्याय , बृज नंदन सहाय, मिश्र बंधु आदि प्रसिद्ध उपन्यासकार हैं| इस समय सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यास अधिक लिखे गए| द्वितीय चरण प्रेमचंद युग को माना जा सकता है |और यह चरण 1916 से 1936 तक माना जाता है| प्रेमचंद हिंदी कथा साहित्य के अग्रदूत हैं| इन्होंने हिंदी उपन्यासों को तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों के दलदल से निकाल कर मानवतावादी उपन्यासों की भूमि पर ला खड़ा किया| इस काल में प्रेमचंद के अलावा जयशंकर प्रसाद, विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक', पांडे बेचन शर्मा 'उग्र' ,चतुरसेन शास्त्री, वृंदावन लाल वर्मा, भगवती चरण वर्मा आदि| प्रेमचंद के पश्चात का युग तृतीय चरण माना जाता है जो 1936 से 1960 के बीच का है| इस समय उपन्यास साहित्य के कथ्य में कई परिवर्तन दिखाई देते हैं| मनोविज्ञान, व्यंग्य, यथार्थवाद इस समय के उपन्यासों की विषयवस्तु बने| इस समय के प्रसिद्ध उपन्यासकारों में जैनेंद्र, इलाचंद्र जोशी, यशपाल, अज्ञेय,अमृतलाल नागर,भगवती प्रसाद बाजपेई, निराला, इलाचंद जोशी हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि| अति आधुनिक युग सन 1960 के बाद का माना जाता है| इस चतुर्थ चरण के प्रसिद्ध उपन्यासकारों में धर्मवीर भारती, नागार्जुन, उपेंद्रनाथ अश्क, राजेंद्र यादव, फणीश्वरनाथ रेणु, काशीनाथ सिंह, शिवप्रसाद सिंह, नरेश मेहता, मोहन राकेश, कमलेश्वर, शैलेश मटियानी महिला उपन्यासकारों में अमृता प्रीतम, कंचनलता सब्बरवाल, कृष्णा सोबती, नासिरा शर्मा ,मन्नू भंडारी, उषा देवी मित्रा, शिवानी, मृदुला गर्ग आदि|मनोरंजन प्रधान उपन्यास, सामाजिक उपन्यास, उपदेश प्रधान उपन्यास, ऐतिहासिक उपन्यास, मनोवैज्ञानिक उपन्यास, आंचलिक उपन्यास, हास्य और व्यंग्य परक उपन्यास आदि को इसके प्रकारों में लिया जा सकता है| 21वीं सदी में उपन्यासों की स्थिति बदल रही है और इस पर समय के परिवर्तन का गहरा प्रभाव दिखाई देता है |

5.5 कहानी

शायद जब से मनुष्य का जन्म हुआ होगा तभी से कहानी का भी जन्म हो गया होगा| पहले व्यक्ति अपने अनुभवों को सीधे-सीधे कहता होगा| धीरे-धीरे यही अनुभव और घटनाएं बांटने की क्रिया कहानी बन गई होगी| हिंदी गद्य साहित्य की एक महत्वपूर्ण और प्रिय विधा कहानी है| जैसे-जैसे मनुष्य का विकास हुआ वैसे-वैसे कहानी का विकास होता रहा| जैसे-जैसे मनुष्य का जीवन सरलता से जटिलता की ओर बढ़ता गया वैसे-वैसे कहानी भी सरल से जटिल होती गई और आज जीवन में तर्क है बुद्धि है तो कहानियों में भी बुद्धि की प्रधानता हो गई है| कहानी का वर्तमान स्वरूप आधुनिक युग की देन है| भले ही हम वेदों में कहानी के मूल रूप का आभास ना पाए किंतु उनमें कहानियों की व्यापक लंबी परंपरा रही है | महाभारत, बौद्ध साहित्य, पुराण, हितोपदेश, पंचतंत्र आदि कहानी के भंडार हैं | अंग्रेजी में कहानी को 'स्टोरी' के नाम से जाना जाता है | अब तो कहानियां भी अत्यंत संक्षिप्त हो चली हैं और लघु कहानी के रूप में आम आदमी के बीच में प्रिय होती जा रही हैं | कहानी का शाब्दिक अर्थ होता है 'कहना' | मुंशी प्रेमचंद मानते हैं कि- 'कहानी एक रचना है जिसमें जीवन के किसी एक अंग या मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य रहता है | उसके चरित्र, उसकी शैली तथा कथा विन्यास सब उसी एक भाग को पुष्ट करते हैं|'कहानी एक कथात्मक संक्षिप्त गद्य रचना है यह आकार में छोटी होती है और इसमें कथा तत्व की प्रधानता होती है| कहानी में विषय की एकता के साथ-साथ प्रभाव की एकता का होना भी आवश्यक होता है| कहानी को एक ही बैठक में पढ़ा जा सकता है और इसमें कौतूहल तथा मनोरंजन के गुण विद्यमान होते हैं | कहानी में जीवन का यथार्थ होता है जो कल्पित होते हुए भी सत्य लगता है | कहानी में तीव्रता और गति का होना आवश्यक होता है | कहानी में एक मूल भावना का विस्तार आख्यानात्मक शैली में होता है | कहानी में प्रेरणा बिंदु का विस्तार होता है और यह अपने आप में पूर्ण होती है | कहानी की रूपरेखा पूर्ण रूप से स्पष्ट और संतुलित होती है | इसमें मनुष्य के पूर्ण जीवन का नहीं बल्कि उसके चरित्र का एक अंग चित्रित होता है | इसमें घटनाएं व्यक्ति केंद्रित होती हैं | हिंदी कहानी हिंदी साहित्य की प्रमुख तथा गद्यात्मक विधा है | आधुनिक हिंदी कहानी का आरंभ बीसवीं सदी में हुआ | पिछली एक सदी में हिंदी कहानी ने आदर्शवाद, यथार्थवाद, प्रगतिवाद, मनोविश्लेषणवाद, आंचलिकता ने आज के दौर से गुजरते हुए लंबी यात्रा की और अनेक उपलब्धियां हासिल की हैं | प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, अज्ञेय, जैनेंद्र, यशपाल, फणीश्वर

नाथ रेणु, उषा प्रियंवदा, मन्नू भंडारी, उदय प्रकाश, ओम प्रकाश वाल्मीकि आदि हिंदी के प्रमुख कहानीकार हैं | आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने किशोरीलाल गोस्वामी द्वारा लिखित कहानी 'इंदुमती' को हिंदी की पहली कहानी माना है किंतु अलग-अलग विद्वानों ने अपने मत सामने रखते हुए अलग-अलग कहानियों को हिंदी की पहली कहानी माना है| कहानी परंपरा को प्रसाद पूर्व युग, प्रसाद युग और प्रसादोत्तर युग में बांटा जा सकता है | नाटक और उपन्यास की तरह कहानी के भी मुख्य छः तत्व माने जाते हैं|

5.6 एकांकी

आधुनिक एकांकी वैज्ञानिक युग की देन है | आज मनुष्य जीवन के संघर्ष में व्यस्त है | अति व्यस्तता के कारण आधुनिक मानव के पास इतना समय नहीं कि वह बड़े-बड़े नाटकों, उपन्यासों या महाकाव्यों को पढ़ कर आनंदित हो सके इसीलिए गीत, कहानी, एकांकी, लघु कहानी आदि लिखे जा रहे हैं | जिस तरह नाटक में कई अंक होते हैं उसी तरह एकांकी में केवल 1 अंक होता है | अंग्रेजी में इसे 'वन एक्ट प्ले' कहा जाता है | एकांकी में किसी भी एक समस्या या घटना को लेकर बड़े सुंदर ढंग से एक ही अंक में मंच पर मंचित किया जा सकता है और दर्शक उसका आनंद भी उठाते हैं | जैसे आज फास्ट फूड युवाओं के बीच लोकप्रिय हो रहा है उसी तरह एकांकी जैसी विधा आज के युवाओं को अपनी ओर आकर्षित कर रही है | इस विधा ने नाटक से स्वतंत्र अपना रूप प्रतिष्ठित कर लिया है | एकांकी में जीवन की एकरूपता, कौतूहल की स्थिति, संक्षिप्त रूपरेखा, चरित्र चित्रण की तीव्रता, कथा की संक्षिप्तता और प्रभावशीलता तथा घटना न्यूनता बड़ी त्वरित गति से घटित होते हैं और दर्शक के मन पर तीव्र गति से प्रभाव डालते हैं | पश्चिम में एकांकी बीसवीं शताब्दी में और विशेषकर प्रथम महायुद्ध के पश्चात अत्यंत प्रचलित और लोकप्रिय हुआ | हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में उसका व्यापक प्रचलन इस शताब्दी के चौथे दशक में हुआ | पूर्व और पश्चिम दोनों के नाट्य साहित्य में उसके निकटवर्ती रूप मिलते हैं | संस्कृत नाट्य शास्त्र में नायक के चरित्र, रस आदि के आधार पर रूपकों और उपरूपकों के जो भेद किए गए उनमें से अनेक को डॉ कीथ ने एकांकी नाटक कहा है| इस प्रकार दशरूपक और साहित्य दर्पण में वर्णित प्रहसन, नाटिका, वीथी, गोष्ठी, विलासिका, प्रकाशिका को आधुनिक एकांकी के निकट समझना होगा | साहित्य दर्पण में 'एकांकी' शब्द का प्रयोग भी हुआ है| एकांकी का रचना विधान देखा जाए तो इसे 20 से 30 मिनट में प्रदर्शित किया जा सकता है , इसका एक अंक होता है | एकांकी में संकलन त्रय को अनिवार्य माना गया है | इसमें कम से कम उपकरणों के सहारे ज्यादा से ज्यादा प्रभाव उत्पन्न किया जाता है | इसकी कथा अत्यंत सक्षिप्त होती है, एक ही मुख्य घटना होती है, एक ही

मुख्य चरित्र होता है, एक ही चरमोत्कर्ष होता है, लंबे भाषणों के बजाय छोटे संवाद होते हैं| एकांकी की अद्भुत संभावनाओं के कारण आधुनिक काल में इसका विकास अनेक दिशाओं में हुआ है | इसके प्रकारों में रेडियो रूपक, संगीत और काव्य रूपक, स्वगत नाट्य विकसित हुए| भारतेंदु युग से इसका आरंभ माना जा सकता है | प्रसाद का एकांकी 'एक घूंट' दूसरा चरण है | तीसरे चरण में भुवनेश्वर प्रसाद के 'कारवां' को लिया जा सकता है और चौथे चरण में रामकुमार वर्मा के 'रेशमी टाई' को लिया जाता है | भारतेंदु युग में दो प्रकार के एकांकी लिखे गए या तो एकांकी का अनुवाद हुआ या मौलिक एकांकी लिखे गए | आगे चलकर ऐतिहासिक एकांकी लिखे गए और कुछ अनुवाद भी दिखाई देते हैं | तीसरे चरण में कई एकांकीकार हुए जिन्होंने विभिन्न विषयों को अपना कर एकांकी लिखे | आगे चलकर साम्यवादी, राजनैतिक तथा सामाजिक समस्याओं को लेकर एकांकी की रचना हुई| डॉ रामकुमार वर्मा को एकांकी परंपरा की सबसे सशक्त कड़ी माना जाता है | इस समय लिखे गए एकांकी शिल्प की दृष्टि से मजबूत दिखाई देते हैं | इसके अतिरिक्त उनमें बौद्धिक उत्सुकता, चुटीलापन, अंतर्द्वंद की अभिव्यक्ति, मानसिक विश्लेषण, संवादों की कसावट, मार्मिक स्थलों का चयन, यथार्थ प्रस्तुतीकरण के प्रति आग्रह दिखाई देता है | इसके अतिरिक्त विषय भी अनेक प्रकार के मिलते हैं जैसे प्रेम, विवाह, क्रूरता, वर्ग संघर्ष, देश प्रेम, पौराणिक आख्यान, सामाजिक कुरीतियां, सत्याग्रह आदि | आज नए-नए एकांकी लिखे जा रहे हैं | अब एब्सर्ड एकांकी भी लिखे गए हैं | प्रसिद्ध एकांकीकारों में उदय शंकर भट्ट, लक्ष्मीनारायण मिश्र, सेठ गोविंददास,जगदीशचंद्र माथुर,डॉ लक्ष्मीनारायण लाल, मोहन राकेश, विष्णु प्रभाकर, गंगाधर शुक्ला, विनोद रस्तोगी, उपेंद्रनाथ अश्क, कमलेश्वर, मनोहर चौहान, जयनाथ नलिन, रामवृक्ष बेनीपुरी, धर्मवीर भारती, मोहन सिंह सेंगर आदि हैं|

5.7 आलोचना

आलोचना या समालोचना किसी वस्तु या विषय की उसके लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए उसके गुण दोषों और उपयुक्तता का विवेचन करने वाली साहित्यिक विधा है | हिंदी आलोचना का प्रारंभ उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में भारतेंदु युग से माना जाता है | आलोचना का शाब्दिक अर्थ है 'अच्छी तरह देखना' | यह शब्द 'लुच' धातु से बना है जिसका अर्थ है 'देखना' | इसे अंग्रेजी में 'क्रिटिसिज्म' के नाम से जाना जाता है | संस्कृत में प्रचलित टीका, व्याख्या या काव्य सिद्धांत निरूपण के लिए भी आलोचना शब्द का प्रयोग कर लिया जाता है | आचार्य रामचंद्र शुक्ल का स्पष्ट रूप से मानना है कि आधुनिक आलोचना संस्कृत के काव्य सिद्धांत निरूपण से स्वतंत्र है | इसका कार्य है किसी साहित्यिक रचना की अच्छी तरह परीक्षा करके उसके रूप गुण और अर्थव्यवस्था का निर्धारण करना |

डॉ श्यामसुंदर दास आलोचना की परिभाषा देते हुए कहते हैं- 'यदि हम साहित्य को जीवन की व्याख्या माने तो आलोचना को उस व्याख्या की व्याख्या मानना पड़ेगा'| व्यक्तिगत रुचि के आधार पर किसी रचना की निंदा या प्रशंसा करना आलोचना का धर्म नहीं है | किसी भी कृति की व्याख्या और विशेषण के लिए आलोचना में पद्धति और प्रणाली का विशेष महत्व होता है | आलोचना करते समय आलोचक अपने व्यक्तिगत राग- द्वेष, रुचि-अरुचि से तभी बच सकता है जब वह पद्धति का अनुसरण करे |

5.7.1 भारतेंदु युगीन हिंदी आलोचना

भक्तिकालीन और रीतिकालीन आलोचना अपने युगीन साहित्य के मूल्यांकन के लिए निर्मित हुई थी | किंतु हिंदी साहित्य के आगामी विकास के लिए आलोचना में भी विकास तथा परिवर्तन आवश्यक था इसीलिए भारतेंदु काल में जहां गद्य की अन्य सभी विधाएं नए सिरे से विकसित हुईं, वहीं हिंदी आलोचना में नए कार्य आरंभ हुए | विभिन्न विधाओं के लिए विभिन्न प्रकार की आलोचनाओं का विकास हुआ | यह हिंदी आलोचना के विकास का आरंभिक दौर था | खड़ी बोली गद्य अपने प्रारंभिक रूप में था उस समय हिंदी साहित्य के क्षेत्र में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने प्रवेश किया | उन्होंने राजा शिवप्रसाद तथा राजा लक्ष्मण सिंह की आपस में विरोधी शैलियों में समन्वय स्थापित किया और मध्यम मार्ग अपनाया| भारतेंदुकालीन हिंदी आलोचना, आलोचना की प्रारंभिक स्थिति में बुनियादी सवालों से जूझती रही | इस काल के मुख्य आलोचक हैं भारतेंदु हरिश्चंद्र, बालकृष्ण भट्ट और बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन',प्रताप नारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी, राय कृष्णदास आदि| यही भारतेंदु का समकालीन एवं सहयोगी साहित्यकार मंडल भारतेंदु मंडल के नाम से प्रसिद्ध हुआ | हिंदी साहित्य में यह समय भारतेंदु युग के नाम से जाना जाता है| भारतेंदु मंडल संस्कृत आलोचना की वेदवती धारा से अछूता दिखाई देता है | इसके पास परंपरा, आधुनिकता, राष्ट्रवाद, समाज के सीधे-सीधे प्रश्न हैं | उदारवाद जागरण के सामान्य प्रश्नों से ही यह मंडली साहित्य को देखती है | भारतेंदु का चिंतन उनकी मौलिकता को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है | इस युग की अन्य विधाओं के साथ आलोचना को भी नवजागरण के साथ जोड़ा गया है | भारतेंदु युग में गद्य के अन्य अंगों के साथ-साथ आलोचना विधा भी नया रूप धारण करके आगे बढ़ी \ उसके स्वरूप और प्रकार में नए तत्वों का समावेश हुआ | साहित्यिक विवेचना में बौद्धिकता की प्रधानता हो गई | उपन्यास, कहानी, निबंध, नाटक आदि के साथ साथ उनकी आलोचनाएं भी लिखी जाने लगीं | इस नवीन आलोचना के विकास में तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा | इस आलोचना के प्रवर्तकों में भारतेंदु, प्रेमघन, बालकृष्ण भट्ट, श्रीनिवास दास, बालमुकुंद गुप्त, प्रताप नारायण

मिश्र आदि प्रसिद्ध हैं| 'आनंद कादंबिनी' नामक पत्रिका के द्वारा प्रेमघन ने पुस्तकों की विस्तृत और गंभीर आलोचना प्रारंभ की |

5.7.2 द्विवेदी युगीन हिंदी आलोचना

महावीर प्रसाद द्विवेदी एक ऐसे साहित्यकार थे जो बहु भाषाविद होने के साथ-साथ साहित्य के इतर विषयों में भी समान रुचि रखते थे | उन्होंने सरस्वती पत्रिका का 18 वर्षों तक संपादन कर हिंदी पत्रकारिता में एक महान कीर्तिमान स्थापित किया | वह हिंदी के पहले समालोचक थे जिन्होंने समालोचना की कई पुस्तकें लिखीं | खड़ी बोली हिंदी की कविता के प्रारंभिक और महत्वपूर्ण कवि थे | आधुनिक हिंदी कहानी उन्हीं के प्रयत्नों से एक साहित्यिक विधा के रूप में मान्यता प्राप्त कर सकी | वह भाषाशास्त्री, अनुवादक थे, इतिहासज्ञ, अर्थशास्त्री और विज्ञान में गहरी रुचि रखने वाले थे | वे युगांतर लाने वाले साहित्यकार थे | दूसरे शब्दों में कहें तो वह युग निर्माता थे | वह अपने चिंतन और लेखन के द्वारा हिंदी प्रवेश में नवजागरण पैदा करने वाले साहित्यकार थे| राजनीति और अर्थशास्त्र के साथ उन्होंने आधुनिक विज्ञान से परिचय प्राप्त किया और इतिहास तथा समाजशास्त्र का अध्ययन गहराई से किया | आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्विवेदी की निबंध दृष्टि पर अपने विचार देते हुए मानते हैं कि उनके निबंध विचारात्मक श्रेणी में आएंगे | विचार की वह गूढ़ गुंफित परंपरा उनमें नहीं मिलती जिससे पाठक की बुद्धि उत्तेजित होकर किसी नई विचार पद्धति पर दौड़ पड़े|हम सभी यह अच्छी तरह से जानते हैं कि आचार्य द्विवेदी के समय ही भाषा का परिष्कार हुआ और भाषा व्याकरण की दृष्टि से परिपुष्ट हुई| आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती पत्रिका का संपादन करते हुए संपादकीय टिप्पणियों, स्वतंत्र समालोचनात्मक निबंध, साहित्यिक कवि चर्चाएं लिखी हैं और जिस आलोचना साहित्य का निर्माण किया है उसका स्थाई महत्व है | वह अपनी आलोचना में कहते हैं कि काव्य में सरल भाषा होनी चाहिए और साथ ही व्याकरण के नियम तथा भाषा संस्कार पर भी उन्होंने बल दिया | वह एक प्रगतिशील विचारक थे | उनके इस विचार को 'कविता का भविष्य' निबंध में देखा जा सकता है | डॉ नामवर सिंह ने इन्हे लोकवादी समीक्षक माना है | द्विवेदी जी की आलोचना दृष्टि उस पूरे युग की सर्जनात्मक चेतना की प्रेरक, उन्नायक एवं परिष्कारक के रूप में दिखाई देती है|निसंदेह रूप में या कहा जा सकता है कि दिवेदी जी हिंदी आलोचना के आधार स्तंभ हैं जिन्होंने हिंदी के शैशवकालीन साहित्य को अपनी समष्टिगत नैतिक आदर्शों और परंपरा तथा नवीनता का समावेश कर चलना सिखाया | वह अपने युग के सबसे बड़े आलोचक माने जाते हैं | इस काल में मिश्र बंधुओं ने हिंदी में पहली बार ऐतिहासिक और सैद्धांतिक आलोचना का प्रारंभ किया और तुलनात्मक आलोचना का इसी

समय जन्म हुआ | पंडित पदम सिंह शर्मा ने 'बिहारी' नामक रचना में बिहारी को श्रंगार रस का सर्वश्रेष्ठ कवि माना | इस तरह रामचंद्र शुक्ल से पूर्व हिंदी आलोचना जगत देव और बिहारी के द्वंद का अखाड़ा बन गया था|

5.7.3 शुक्ल युग में आलोचना

आचार्य रामचंद्र शुक्ल केवल हिंदी साहित्य के आलोचक नहीं हैं बल्कि वे भारतीय आलोचना कि उस महान परंपरा एवं संस्कृति की एक महत्वपूर्ण कड़ी हैं जो भरतमुनि से प्रारंभ होती है | आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने आलोचना सिद्धांत का निरूपण अतीत की महान साहित्यिक सांस्कृतिक विरासत के साथ ही अपने समय के श्रेष्ठ साहित्य को जानने समझने के क्रम में किया है | उनकी आलोचना सच्चे अर्थों में 'सभ्यता समीक्षा' सिद्ध होती है | उनके आलोचना सिद्धांत को किसी एक आयाम में नहीं बांधा जा सकता | सिद्ध और नाथ साहित्य पर विचार करते समय शुक्ल जी सांप्रदायिक शिक्षा का सवाल उठाते हैं | रामचरितमानस की आलोचना के क्रम में वे मार्मिक स्थलों की पहचान पर बल देते हैं | रामचंद्रिका की सीमाओं का निर्देश करते हुए वह साहित्य में स्थानीय रंगत का मुद्दा उठाते हैं | बिहारी के प्रसंग में वह भाषा की समासशक्ति की बात करते हैं | घनानंद पर विचार करते हुए वह उन्हें ब्रजभाषा का श्रेष्ठ कवि मानते हैं | पंत के संदर्भ में वे सच्चे स्वच्छंदतावाद के आयाम को प्रस्तुत करते हैं | आचार्य शुक्ल जी को भारतीय साहित्यशास्त्रीय चिंतन की उस परंपरा के पुनराख्यान का श्रेय प्राप्त है जिसका आरंभ भरतमुनि से और अंत मध्यकाल में मम्मट के साथ ही हो गया था| यह हिंदी के सर्वश्रेष्ठ आलोचक हैं | इन्होंने आलोचना का एक निश्चित मानदंड स्थापित किया और एक विकसित आलोचना पद्धति लेकर अवतरित हुए | ऐतिहासिक आलोचना के क्षेत्र में उनका 'हिंदी साहित्य का इतिहास' एक महत्वपूर्ण देन है| इस समय के प्रमुख आलोचकों में डॉ श्यामसुंदर दास, पदुमलाल, पुन्ना लाल बख्शी, कृष्ण शंकर शुक्ल आदि| द्विवेदी युगीन आलोचना की त्रुटियों को दूर करते हुए शुक्ल जी ने आलोचना पद्धति को पूर्ण बनाया|

5.7.4 शुक्लोत्तर युगीन आलोचना एवं आलोचना के प्रकार

शुक्ला जी के परवर्ती आलोचकों ने सामान्यतः शुक्ल जी के आदर्शों को अपनाया किंतु कुछ प्रतिभावान आलोचकों ने इस क्षेत्र में अपनी मौलिकता का परिचय दिया | ऐसे आलोचकों में नंददुलारे बाजपेई, डॉ नगेंद्र, हजारी प्रसाद द्विवेदी के नाम उल्लेखनीय हैं | आचार्य नंददुलारे वाजपेई की कई महत्वपूर्ण आलोचनात्मक रचनाएं हैं | यह सौंदर्यवादी आलोचक माने जाते हैं | डॉ. नगेंद्र, नंददुलारे वाजपेई की तरह छायावाद के प्रति सहानुभूति रखने वाले समालोचक हैं |

इन्होंने सौंदर्यशास्त्र को लेकर आलोचना के क्षेत्र में प्रवेश किया | सुमित्रानंदन पंत, साकेत, भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा, महाकवि देव आदि इनकी समीक्षात्मक कृतियां है | आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी मानवतावादी आलोचक हैं | हिंदी साहित्य की भूमिका, कबीर, हिंदी साहित्य का आदिकाल, विचार और वितर्क, अशोक के फूल आदि रचनाओं में द्विवेदी जी ने ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से आलोचना को आगे बढ़ाया है | साहित्य समीक्षा को पूर्ण रूप देने में आचार्य नंददुलारे बाजपेई डॉ नगेंद्र आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अतिरिक्त बाबू गुलाब राय, शांतिप्रिय द्विवेदी, रामकुमार वर्मा, डॉक्टर सत्येंद्र, डॉक्टर लाल, पंडित विश्वनाथ मिश्र, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, डॉ वार्ष्णेय, आचार्य बलदेव उपाध्याय के नाम महत्वपूर्ण हैं | बाबू गुलाब राय सामान्यवादी आलोचक माने जाते हैं, शांतिप्रिय द्विवेदी ने छायावादी काव्य सौंदर्य पक्ष का उद्घाटन किया है | परशुराम चतुर्वेदी संत काव्य के आलोचक, कृष्णलालऔर रामकुमार वर्मा ने हिंदी साहित्य पर अपनी आलोचना दी है तथा आचार्य बलदेव उपाध्याय ने भारतीय काव्य संप्रदायों की आलोचना की है | आधुनिक युग में विविध आलोचना पद्धति का विकास हुआ है जिसमें शिवदान सिंह चौहान, रामविलास शर्मा, प्रकाशचंद्र गुप्त, अमृत राय, यशपाल आदि मार्क्सवादी आलोचक हैं, इलाचंद्र जोशी और अज्ञेय मनोविश्लेषणात्मक आलोचक हैं शांतिप्रिय द्विवेदी, भगवत शरण उपाध्याय प्रभाववादी आलोचक माने जाते हैं | इनके अतिरिक्त डॉक्टर इंद्रनाथ मदान, डॉ रमेश कुंतल मेघ, लक्ष्मीकांत वर्मा, रामस्वरूप चतुर्वेदी, जगदीश चंद्र माथुर आदि के नाम आधुनिक आलोचना में अति महत्वपूर्ण हैं| इस प्रकार हिंदी आलोचना प्रगति के पथ पर अग्रसर है| आलोचना करते समय जिन मान्यताओं और पद्धतियों को स्वीकार किया जाता है उनके अनुसार आलोचना के प्रकार विकसित हो जाते हैं | सामान्यतया आलोचना के चार प्रकारों को स्वीकार किया गया है- सैद्धांतिक आलोचना, निर्णयात्मक आलोचना, प्रभावाभिव्यंजक आलोचना, और व्याख्यात्मक आलोचना |

सैद्धांतिक आलोचना में साहित्य के सिद्धांतों पर विचार होता है | इस आलोचना में साहित्य का मानदंड शास्त्रीय है या ऐतिहासिक इस पर विचार करना होता है, जो आलोचना साहित्य के तत्वों और नियमों को ऐतिहासिक प्रक्रिया में विकासमान मानती है उसी का आज महत्व है |

निर्णयात्मक आलोचना में निश्चित सिद्धांतों के आधार पर साहित्य के गुण दोषों का निर्णय लिया जाता है |इसे एक प्रकार की नैतिक आलोचना भी माना जाता है | ऐसी आलोचना प्रायः सिद्धांत का यांत्रिक ढंग से उपयोग करती है |

प्रभावाभिव्यंजक आलोचना में काव्य का जो प्रभाव आलोचक के मन पर पड़ता है उसे वह सजीले पद विन्यास में व्यक्त कर देता है | इसमें वैयक्तिक रुचि ही प्रमुख होती है| आज कितने प्रकार की रचनाएं लिखी जा रही हैं उतने प्रकार की आलोचनाओं का विकास हो रहा है जैसे सौंदर्यशास्त्रीय आलोचना, शैली वैज्ञानिक आलोचना, मार्क्सवादी आलोचना, प्रगतिवादी

आलोचना, प्रयोगवादी आलोचना, समाजशास्त्रीय आलोचना, ऐतिहासिक आलोचना, मनोविश्लेषणात्मक आलोचना आदि|

5.7.5 नई समीक्षा

नई समीक्षा अब अपना निश्चित इतिहास बना चुकी है | इस शब्द का प्रयोग सबसे पहले कोलंबिया विश्वविद्यालय के तुलनात्मक साहित्य के प्रोफ़ेसर स्पिनगार्न ने 1910 ईस्वी में अपने लेख में किया था | नई समीक्षा रचना की आंतरिक संगति के विश्लेषण पर बल देती है | इसके अनुसार काव्य भाषिक सर्जना मात्र है इसलिए भाषा के सर्जनात्मक तत्वों का विश्लेषण ही समीक्षा का मुख्य धर्म है | हिंदी में नई समीक्षा का आरंभ नई कविता की प्रतिष्ठा के साथ माना जा सकता है | हिंदी के नए समीक्षकों ने कार्य के संदर्भ में भाषा के महत्व को स्वीकार किया | उसकी सर्जनात्मक विशेषताओं को लक्षित करने की चेष्टा की | उन्होंने शब्द प्रयोग एवं ध्वनि संयोजन से उत्पन्न चमत्कार को सराहा तथा काव्य के रूप पक्ष का विश्लेषण किया किंतु कविता को ऐतिहासिक संदर्भ से काटकर देखने का आग्रह कभी नहीं रहा | एक तरफ अमेरिकी नई समीक्षा में हिंदी के नए समीक्षकों को निश्चित रूप से प्रभावित किया किंतु अपने प्रभाव के आवेग में उन्हें बहाकर नहीं ले गई | हिंदी के नए समीक्षकों में डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी की समीक्षा दृष्टि अमेरिकी समीक्षा दृष्टि के अधिक निकट है किंतु उन्होंने भी मुक्तिबोध के बिंब विधान का विश्लेषण करते हुए उसके माध्यम से भारतीय निम्न मध्यवर्ग के असली रूप को पहचाना | हिंदी में नई समीक्षा से जुड़े नए समीक्षकों ने अमेरिकी नई समीक्षा की मूल प्रतिज्ञा का पूर्णतः पालन नहीं किया | मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित समीक्षकों ने काव्य के संदर्भ में भाषा के महत्व को स्वीकार करते हुए भी कार्य की सापेक्ष स्वायत्तता को ही मान्य ठहराया | नई समीक्षा की मूल प्रतिज्ञा को स्वीकार कर चलने वाली एक अन्य समीक्षा दृष्टि शैली विज्ञान की मान्यता है | इसमें यह माना गया है कि -'सामान्य से अलग हटकर जिस विशिष्ट भाषा का प्रयोग कवि करता है वही भाषा की काव्यात्मक शैली कही जाती है'| नई समीक्षा की सबसे बड़ी शक्ति है काव्य भाषा के सघन विश्लेषण द्वारा उसके सर्जनात्मक स्वरूप का अन्वेषण | इस अन्वेषण क्रम में नए समीक्षक रचना की आंतरिक संगति के आधार तत्व तक पहुंचने में बहुत दूर तक सफल हो सके हैं | हिंदी के नए समीक्षकों ने अमेरिकी नई समीक्षा की मूल प्रतिज्ञा को अत्यधिक रूप में- कम से कम व्यवहार के स्तर पर स्वीकार नहीं किया है| छठे दशक के बाद नई कविता में जो स्वच्छंदतावाद का नवोत्थान दिखाई पड़ा था वह कविता प्रकटतः उसके विरुद्ध यथार्थवाद की दिशा में कदम बढ़ाती है | नई समीक्षा, नई कविता, नई कहानी के अद्यतन विकास को रेखांकित करती है | नई समीक्षा व्यवहारिक आलोचना की बुनियादी जमीन

है | साहित्यिक आलोचना के लिए यह जरूरी होता है कि रचना के मर्म को पहचाना जाए, उसकी संवेदना से जुड़ा जाए, भाषा शिल्प अंतर्वस्तु आदि को पहचानने वाली सक्षम और निर्भीक दृष्टि से नई समीक्षा बनती है|

5.8 जीवनी

इसे जीवन चरित्र भी कहा जाता है| यह भी साहित्य की एक विधा है |अंग्रेजी में इसे 'बायोग्राफी' कहा जाता है| जीवनी में लेखक व्यक्ति के संपूर्ण जीवन और यथेष्ट जीवन की जानकारी प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत करता है | जीवनी लेखक टामस कार्लाइल ने अत्यंत सीधी सादी और संक्षिप्त परिभाषा में इसे- 'एक व्यक्ति का जीवन कहा है|' किसी व्यक्ति के जीवन वृत्तातों को सचेत और कलात्मक ढंग से लिखना ही जीवन चरित्र कहलाता है | जीवन चरित्र में किसी एक व्यक्ति के यथार्थ जीवन के इतिहास का आलेखन होता है अनेक व्यक्तियों के जीवन का नहीं, फिर भी जीवन चरित्र का लेखक इतिहास के और कलाकार के कर्तव्य के कुछ समीप आए बिना नहीं रह सकता | जीवन चरितकार एक ओर तो व्यक्ति के जीवन की घटनाओं की यथार्थता इतिहासकार की भांति स्थापित करता है तो दूसरी ओर वह साहित्यकार की प्रतिभा और रागात्मकता का तथ्य निरूपण में उपयोग करता है | यदि किसी जीवन चरित की सीमा का विस्तार किया जाए तो उसके अंतर्गत आत्मकथा भी आ जाएगी | यद्यपि दोनों के लेखक पारस्परिक रुचि और सम्बद्ध विषय की भिन्नता के कारण घटनाओं के लेखन में सत्य का निर्वाह समान रूप से नहीं कर पाते | आत्मकथा के लेखक में सतर्कता के बावजूद वह आलोचनात्मक तर्कना, चरित्र विश्लेषण और स्पष्टवादिता नहीं आ पाती जो जीवन चरित के लेखक की विशेषता होती है और ऐसा होना पूर्णतः स्वाभाविक है| जीवन चरित के प्राचीनतम रूपों के उदाहरण किसी भी देश के धार्मिक, पौराणिक आख्यान और दंत कथाओं में मिल सकते हैं , जिनमें मानवीय चरित्र और उनके मनोविकारों और मनोभावों का रूपायन हुआ हो | अधिकांशत दैवी और मानवीय चरित्र में जीवन चरित्र के कुछ लक्षण मिल जाते हैं जिनका निर्माण उस काल से ही होता चला आ रहा है जब लेखन कला का विकास भी नहीं हुआ था और इस प्रयोजन के लिए मिट्टी तथा श्रीपत्रों का प्रयोग होता था| मिस्र, पश्चिमी एशिया, चीन, यूनान, अमेरिका, फ्रांस, पेन तथा यूरोपीय महाद्वीप के कई देशों के साहित्य में जीवनी लेखक की जीवंत परंपरा देखी जा सकती है | यह साहित्य जीवन चरित के रूप में और आत्मकथा के रूप में रचा गया| भारत में ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी के मौर्य सम्राट अशोक द्वारा सेनाओं पर जो अभिलेख मिलते हैं वह आत्मकथा के ही रूप हैं| जीवन अथवा प्रशासन की किसी विशिष्ट घटना को जीवित रखने के लिए हुए उसे पत्थर के स्तंभों पर, मंदिरों की दीवारों पर, ताम्रपत्तों पर अंकित करवा देते थे | कुषाण और गुप्त सम्राटों का समय इस तरह के संदर्भों से भरा पड़ा

है | इसके साथ ही कभी-कभी जीवनी लेखन का स्वरूप भी दिखाई पड़ जाता है | बाण द्वारा रचित 'हर्षचरित' एक ऐसा ही उदाहरण है| बाबरनामा, हुमायूंनामा, अकबरनामा, जहांगीरनामा आदि ऐसी जीवनी हैं जिन्हें आत्मकथा भी कह सकते हैं| भारतीय सम्राटों, मुगल बादशाहों तथा राजपूत राजाओं का आश्रय पाने वाले कवियों ने अपने आश्रयदाताओं के जीवन वृतांतों का विस्तार से वर्णन किया है | इस तरह के काव्यों को हिंदी साहित्य का चरित कव्य भी माना जा सकता है | वीरगाथा काल व रीतिकाल में ऐसे जीवन चरित बहुल मात्रा में दिखाई देते हैं| आधुनिक गद्य काल में अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन आदि पश्चिमी भाषाओं के साथ साथ हिंदी, बंगला, मराठी आदि में भी प्रसिद्ध व्यक्तियों के जीवन चरित्र लिखने की प्रवृत्ति बढ़ रही है | जीवनी, साहित्य की महत्वपूर्ण विधा है | जीवनी के कई भेद होते हैं जैसे आत्मीय जीवनी, लोकप्रिय जीवनी, व्यक्तिगत जीवनी, कलात्मक जीवनी आदि| जीवनी में अतीत का चित्रण और सत्य घटनाओं का क्रम बद्ध विवरण मिलता है | इसमें लेखक व्यक्ति के जीवन संघर्षों के साथ-साथ उसके आंतरिक स्वभाव और व्यक्तित्व का चित्रण करता है | प्रसिद्ध साहित्यकार श्री रामनाथ सुमन कहते हैं- 'जीवन की घटनाओं के विवरण का नाम जीवनी है|' जीवनीकार नायक के जीवन में छिपे विकास ,उसके जीवन के रहस्य, उसकी मुख्य जीवन धारा को खोल कर पाठकों के सामने रख देता है | वह केवल मनुष्य के ऊपरी व्यक्तित्व का अंकन नहीं करता बल्कि उस आवरण को भेदकर अंतः स्वरूप और आंतरिक सत्य को भी प्रत्यक्ष करता है| जीवनी में कुछ अपेक्षित गुण होते हैं क्योंकि यह एक ऐसी विधा है जिसमें कला, आलोचना और विवेचन की मिली-जुली प्रक्रिया कार्य करती है| उसके तत्वों का निरूपण ना तो कहानी, उपन्यास या नाटक की तरह होता है और ना ही निबंध या आलोचना की तरह उसकी कसौटियां निर्धारित की जा सकती हैं | इसका अपना एक अद्भुत प्रारूप है जिनमें कथा, चरित्र, गुण और विवेचन रहते हैं | वर्तमान समय में जीवनी साहित्य एक लोकप्रिय विधा है | इसके लेखन की कला जितनी कलात्मक होगी वह उतनी ही प्रामाणिक और अच्छी बन पड़ेगी | जीवनी साहित्य के कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं- कल्पना चावला की जीवनी, पोरस का जीवन परिचय, सम्राट अशोक की जीवनी, भगवती प्रसाद मिश्र का जीवन परिचय, डॉ मोहन अवस्थी का जीवन परिचय, जयशंकर प्रसाद का जीवन परिचय, मयंक मारकंडे का जीवन परिचय, कुमार विश्वास की जीवनी, रोहित शर्मा की पूरी जीवनी आदि|

5.9 आत्मकथा

आत्मकथा स्वानुभूति का सबसे सरल माध्यम है | इसके द्वारा लेखक अपने जीवन, परिवेश, महत्वपूर्ण घटनाओं, विचारधारा, निजी अनुभव, दुर्बलताओं और अपने समय की

सामाजिक- राजनीतिक स्थितियों को पाठकों तक , ,पहुंचाता है|आत्मकथा में व्यक्ति जीवन वृतांत लिखता है परंतु वह स्वयं द्वारा लिखा जाता है जबकि जीवनी में लेखक किसी दूसरे के जीवन के वृत्त को लिखता है | आत्मकथा और जीवनी में लेखन की शैली वर्णनात्मक होती है| हिंदी में आत्मकथा लेखन की एक लंबी परंपरा रही है | हिंदी की प्रथम आत्मकथा बनारसी दास जैन द्वारा लिखी गई 'अर्द्धकथा' (1641इ)है| पद्य में लिखी गई इस आत्मकथा केअतिरिक्त पूरे मध्यकाल में हिंदी में कोई दूसरी आत्मकथा नहीं मिलती | अन्य गद्य विधाओं की तरह आत्मकथा भी भारतेंदु हरिश्चंद्र के समय विकसित हुई | भारतेंदु ने अपनी पत्रिकाओं के द्वारा इस विधा का पल्लवन किया | उनकी स्वयं की आत्मकथा 'एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती' का आरंभिक 'प्रथम खेल' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था |इस काल में सुधाकर द्विवेदी, अंबिकादत्त व्यास ने भी आत्मकथाएं लिखीं| स्वतंत्रता पूर्व युग में और स्वातंत्र्योत्तर युग में अनेक आत्मकथाएं लिखी गई| स्वतंत्रता पूर्व युग में हिंदी की आत्मकथा के विकास में हंस का विशेष योगदान रहा | इसी काल में श्यामसुंदर दास ने 'मेरी आत्मकहानी' नामक आत्मकथा लिखी | इस काल के आत्मकथाकारों में जयशंकर प्रसाद, विनोद शंकर व्यास, गोपाल राम गहमरी, श्रीराम शर्मा, शिवपूजन सहाय, सुदर्शन, विश्वंभर नाथ शर्मा कौशिक के साथ-साथ बाबू गुलाब राय, राहुल सांकृत्यायन आदि रहे | सन1947 के आरंभ में देश के प्रथम राष्ट्रपति डॉ राजेंद्र प्रसाद की आत्मकथा प्रकाशित हुई| स्वतंत्रता के पश्चात वियोगी हरि की आत्मकथा 'मेरा जीवन प्रवाह प्रकाशित' हुई | इस समय के प्रसिद्ध आत्मकथा रचनाकारों में यशपाल, शांतिप्रिय द्विवेदी, देवेंद्र सत्यार्थी, बेचन शर्मा 'उग्र' , हरिवंश राय बच्चन, वृंदावन लाल वर्मा, शिवपूजन सहाय, प्रतिभा अग्रवाल ,भीष्म साहनी आदि आते हैं | इसी प्रकार समकालीन आत्मकथा साहित्य में दलित आत्मकथाओं का उल्लेखनीय योगदान है | ओम प्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन',मोहनदास नैमिशराय की 'अपने अपने पिंजरे' लिखी गई | इसके अतिरिक्त महिला रचनाकारों में मैत्रेई पुष्पा, प्रभा खेतान आदि के नाम उल्लेखनीय हैं | इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि हिंदी आत्मकथा साहित्य एक लंबी यात्रा के बाद आज एक मुकाम पर पहुंचा है और आगे भी इसके विकास की बहुत सी संभावनाएं दिखाई देती हैं|

5.10 संस्मरण

स्मृति के आधार पर किसी विषय या व्यक्ति के संबंध में लिखित किसी लेख को संस्मरण कहते हैं | इसे अंग्रेजी में 'मेमॉयर' कहा जाता है | संस्मरण लेखक अतीत की अनेक स्मृतियों में से कुछ रमणीय अनुभूतियों को अपनी कल्पना भावना या व्यक्तित्व की विशेषताओं से रंजित करके प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त करता है | संस्मरण लेखक के लिए यह नितांत

आवश्यक होता है कि लेखक ने उस व्यक्ति या वस्तु का साक्षात्कार किया हो जिसका वह संस्मरण लिख रहा है | इतिहासकार की भांति वह विवरण नहीं प्रस्तुत करता इसके विपरीत वह वस्तुपरक दृष्टिकोण से बिल्कुल अलग है | संस्मरण में जीवन की कुछ महत्वपूर्ण घटनाओं की स्मृति पर आधारित रोचक अभिव्यक्ति होती है | संस्मरण को साहित्यिक निबंध की एक प्रवृत्ति भी माना जा सकता है | ऐसी रचनाओं को संस्मरणात्मक निबंध कहते हैं | संस्मरण को साहित्य के रूप में लिखे जाने का प्रारंभ आधुनिक काल में पाश्चात्य प्रभाव के कारण हुआ किंतु हिंदी साहित्य में संस्मरणात्मक गद्य विधा का पर्याप्त विकास हुआ है | इसके लेखन के क्षेत्र में अत्यंत प्रौढ़ तथा श्रेष्ठ रचनाएं हिंदी साहित्य में उपलब्ध होती हैं | बालमुकुंद गुप्त द्वारा सन 1907 में प्रताप नारायण मिश्र पर लिखा संस्मरण हिंदी का प्रथम संस्मरण माना जाता है | संस्मरण के विकास को द्विवेदी युग, छायावादोत्तर युग, स्वातंत्र्योत्तर युग और समकालीन युग में बांटा जा सकता है |इन सभी कालों में जो संस्मरणकार हुए उन्होंने अपने समय के अनुकूल प्रसंगों को ध्यान में रखते हुए संस्मरण लिखे| हिंदी के प्रारंभिक संस्मरण लेखकों में महावीर प्रसाद द्विवेदी, काशी प्रसाद जायसवाल, प्यारेलाल मिश्र, जगन्नाथ खन्ना, जगदीश बिहारी सेठ, रामकुमार खेमका, वृंदावन लाल वर्मा, इलाचंद्र जोशी, मन्मथनाथ गुप्त,श्रीराम शर्मा, शिव नारायण टंडन,राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह इलाचंद्र जोशी, रामनरेश त्रिपाठी, प्रकाशचंद्र गुप्त, उपेंद्रनाथ अश्क,बनारसीदास चतुर्वेदी, महादेवी वर्मा तथा रामवृक्ष बेनीपुरी,कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', जैनेंद्र, राहुल सांकृत्यायन, सेठ गोविंद दास, विष्णु प्रभाकर, अमृता प्रीतम, हरिवंश राय बच्चन, सुमित्रानंदन पंत,गुलाब राय, राजा राधिका रमण सिंह, रामधारी सिंह 'दिनकर, डॉ रामकुमार वर्मा' विष्णुकांत शास्त्री, काशीनाथ सिंह, अमृत राय, दूधनाथ सिंह, रामदरश मिश्र, मुद्राराक्षस. चंद्रकांता, वीरेंद्र सक्सेना, ममता कालिया, कृष्णा सोबती, ओम थानवी, मधुरेश, नरेंद्र कोहली आदि हैं |

5.11 रेखाचित्र

रेखाचित्र कहानी से मिलता-जुलता साहित्य रूप है | इसे अंग्रेजी में 'स्केच' के नाम से जाना जाता है | इसमें चित्रकार कुछ गिनी चुनी रेखाओं के द्वारा किसी वस्तु या व्यक्ति अथवा दृश्य को अंकित कर देता है | साहित्य में जिसे रेखाचित्र कहते हैं उसमें भी कम से कम शब्दों में कलात्मक ढंग से किसी वस्तु, व्यक्ति अदृश्य का अंकन कर दिया जाता है | इसमें साधन शब्द होते हैं रेखाएं नहीं इसीलिए इसे 'शब्द चित्र' भी कहते हैं | रेखाचित्र को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है- 'रेखाचित्र किसी व्यक्ति, वस्तु, घटना या भाव का कम से कम शब्दों में मर्मस्पर्शी भावपूर्ण एवं सजीव अंकन है'| कहानी से यह काफी मिलता-जुलता है क्योंकि

दोनों में ही घटना या भाव विशेष पर ध्यान रहता है | दोनों की ही रूपरेखा संक्षिप्त होती है और दोनों में कथाकार के नरेशन और पात्रों के संलाप का प्रसंगानुसार उपयोग किया जाता है | रेखाचित्र के कुछ विशेष गुणों को इस प्रकार देखा जा सकता है जैसे- विषय संबंधी एकात्मकता, अंतर्मुखी चारित्रिक विशेषता, संवेदनशीलता, संक्षिप्तता, प्रतीकात्मकता, विश्वसनीयता आदि | इसी प्रकार इसके निम्न प्रकार माने गए हैं- वर्णनात्मक, संस्मरणात्मक, चरित्र प्रधान, मनोवैज्ञानिक और व्यंग्यात्मक| वास्तव में शाब्दिक रेखाओं के द्वारा वर्ण्य विषय का सजीव और मूर्त चित्र प्रस्तुत कर देना ही रेखाचित्र है | सांकेतिकता और कल्पना रेखाचित्र को और अधिक सजीव बनाते हैं | पाठक कल्पना के रंगो द्वारा चाहे जितना भी भाव अर्थ ग्रहण कर ले किंतु उसका मध्य बिंदु सदा एक ही रहता है| रेखाचित्रों की शैली की विशेषताएं उसकी चित्रात्मकता, भावात्मकता और सांकेतिकता में छिपी होती हैं | रेखाचित्र को स्वतंत्र विधा के रूप में स्थापित करने का श्रेय पदमसिंह शर्मा कृत 'पद्म पराग'को दिया जाता है | इनसे प्रभावित होकर श्रीराम शर्मा, हरिशंकर शर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी,राय कृष्णदास,रामवृक्ष बेनीपुरी, महादेवी वर्मा आदि ने रेखा चित्र लिखने आरंभ किए | बनारसीदास चतुर्वेदी का मानना है कि जिस प्रकार एक अच्छा चित्र खींचने के लिए कैमरे का लेंस बढ़िया होना जरूरी होता है और फिल्म भी काफी कोमल बनती है उसी प्रकार साफ चित्रण के लिए रेखा चित्रकार में विश्लेषणात्मक बुद्धि और भावुकता का सामंजस्य होना चाहिए | रामवृक्ष बेनीपुरी निर्विवाद रूप से हिंदी के सर्वश्रेष्ठ रेखाचित्रकार माने जाते हैं | 'माटी की मूरतें', 'गेहूं और गुलाब' संग्रह के रेखाचित्रों में रेखाचित्रकार ने समाज के उपेक्षित लोगों को अपना केंद्र बिंदु बनाया है | इनके रेखाचित्रों की भाषा भावना प्रधान है | विषय की विविधता और शैली की सरसता दिखाई देती है | महादेवी वर्मा के रेखाचित्रों को संस्मरणात्मक रेखाचित्रों की श्रेणी में रखा जाता है | अन्य रेखाचित्रकारों में कन्हैया लाल मिश्र, विष्णु प्रभाकर, प्रकाश चंद्र गुप्त, देवेंद्र सत्यार्थी, डॉ नगेंद्र, विनय मोहन शर्मा, जगदीश चंद्र माथुर,महावीर त्यागी, कृष्णा सोबती, भीमसेन त्यागी, रामविलास शर्मा आदि के नाम लिए जा सकते हैं|

5.12 साक्षात्कार

दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच विचारों के आदान-प्रदान को साक्षात्कार कहते हैं | इसमें एक व्यक्ति किसी एक या अधिक व्यक्तियों से प्रश्न पूछते हैं और वह व्यक्ति इन प्रश्नों के जवाब देता है या इन पर अपनी राय व्यक्त करता है | साक्षात्कार साहित्य की एक नवीन विधा है | साक्षात्कार अलग-अलग उद्देश्य हेतु लिए जाते हैं और उनकी प्रक्रिया भी अलग-अलग होती है | साक्षात्कार कई तरह के हो सकते हैं जैसे कार्मिक चयन के लिए साक्षात्कार, टेलीविजन

साक्षात्कार, टेलीफोन साक्षात्कार, साहित्यिक साक्षात्कार, सूचना या, किसी विषय पर विचार जानने के लिए साक्षात्कार आदि | उद्योग के क्षेत्र में कार्मिक चयन हेतु साक्षात्कार का प्रचलन रहा है यह एक प्राचीनतम एवं सर्वमान्य विधि के रूप में प्रयुक्त होता आया है | वर्तमान युग में सभी क्षेत्रों में साक्षात्कार को अनिवार्य साधन के रूप में प्रयोग लाया जाता है या किसी उम्मीदवार तथा उसकी अनुकूलता को जांचने परखने की एक जीवन्त सामाजिक स्थिति है | बिंघम तथा मूर ने साक्षात्कार को एक उद्देश्य पूर्ण वार्ता माना है |वर्तमान समय में साक्षात्कार के उद्देश्य की भिन्नता को लेकर कई परिवर्तन हुए हैं | भिन्नता के आधार पर कभी चयन, कभी मनोवृति, कभी सलाह तो कभी मूल्यांकन के लिए साक्षात्कार किए जाते हैं | वर्तमान युग में साक्षात्कार केवल सूचना प्राप्ति का साधन ही नहीं है बल्कि मापन का भी प्रधान साधन बन गया है | साक्षात्कार पद्धति से यह लाभ होता है कि आवेदक गलत प्रक्रियाएं सरलता से नहीं दे पाते | यह सूचना प्राप्ति का एकमात्र स्रोत है | साक्षात्कार के समय आवेदक यह संकेत देता रहता है कि बातचीत से उस पर क्या प्रभाव पड़ रहा है और साक्षात्कारकर्ता उसके बारे में क्या सोच रहे हैं ? साक्षात्कार की सफलता के लिए पहुंच, संज्ञान और अभिप्रेरण आवश्यक माने जाते हैं | साक्षात्कार एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा उम्मीदवारों को उनके भावों तथा विचारों को मौखिक रूप से अभिव्यक्त करने का अवसर मिलता है | यह एक उपयोगी प्रणाली है | साक्षात्कार प्रणाली में कई बार कई त्रुटियां भी उत्पन्न हो जाती हैं लेकिन साक्षात्कार प्रणाली में सुधार के उपाय भी किए जा सकते हैं | साक्षात्कारकर्ता के लिए यह आवश्यक माना जाता है कि उसे आत्मविश्वास जीतने की विधियों की जानकारी होनी चाहिए, उम्मीदवार को तनाव मुक्त तथा सहज और स्वाभाविक बनाए रखने में प्रवीण होना चाहिए, उम्मीदवारों को बातचीत हेतु प्रेरित करना, साक्षात्कार के समय वक्ता का अभिनय कम तथा श्रोता का अभिनय अधिक करना, उम्मीदवार की बातचीत से सूत्र निकालना तथा उसी से उपयुक्त प्रश्न निकालना| साक्षात्कार में प्रश्न हमेशा स्पष्ट एवं पारदर्शी होने चाहिए और कई बार एक ही बैठक में साक्षात्कार ना लेकर एक से अधिक बार बैठक करनी चाहिए, उम्मीदवारों को पर्याप्त अवसर प्रदान करना चाहिए| वर्तमान समय में शोधार्थियों के लिए साक्षात्कार आवश्यक बनते जा रहे हैं क्योंकि इससे उनके शोध में एक नवीनता का संचार होता है | साक्षात्कार आत्मनिष्ठ विधि है इसके माध्यम से प्राप्त सूचनाओं की सार्थकता साक्षात्कारकर्ता पर निर्भर करती है | सूचना संकलन की इस विधि के प्रयोग में साक्षात्कारकर्ता के लिए दक्षता अत्यंत महत्वपूर्ण है जितने भी साक्षात्कार होते हैं उनमें तीन विशेषताएं पाई जाती हैं- दो व्यक्तियों के मध्य संबंध, एक दूसरे से संपर्क स्थापित करने का साधन और साक्षात्कार से संबंधित दोनों व्यक्तियों में से एक व्यक्ति को साक्षात्कार के उद्देश्य के विषय में संज्ञान| साक्षात्कार के लिए तीन प्रमुख अवयव होते हैं- साक्षात्कारकर्ता, साक्षात्कार हेतु प्रश्न और साक्षात्कार देने व लेने वाले व्यक्तियों के बीच सोद्देश्य बातचीत| साक्षात्कार को मूलतः कार्य या उद्देश्य के आधार पर कई प्रकारों

जैसे चयनात्मक साक्षात्कार,शोध साक्षात्कार, समस्या निदान साक्षात्कार, उपचारात्मक साक्षात्कार, तथ्य संकलन साक्षात्कार अदि में बांटा जा सकता है | इसी प्रकार रचना के आधार पर भी संरचित साक्षात्कार और असंरचित साक्षात्कार लिए जाते हैं | जो साक्षात्कार लेता है उसमें अपनी बात सीधी एवं स्पष्ट कहने की निडरता होनी चाहिए, दी गई जानकारी को गुप्त रखना चाहिए, उसे हंसमुख होना चाहिए ,केवल अपनी ही बात ना कह कर सामने वाले की बात भी सुननी चाहिए, धैर्यवान और संदेह का निवारण करने वाला होना चाहिए| वर्तमान संदर्भ में साक्षात्कार के कई लाभ हैं वहीं इसकी अपनी कुछ सीमाएं भी हैं- साक्षात्कार विधि को प्रयोग में लाना सरल है यह छात्रों की अंतर्दृष्टि को विकसित करने में सहायक होती है, इससे व्यक्ति को समझने में सहायता मिलती है और साक्षात्कार देने वाले को अपनी समस्याएं प्रकट करने का अच्छा अवसर मिलता है, साक्षात्कार की प्रकृति लचीली होती है इसीलिए किसी महत्वपूर्ण बात को भी ध्यान में रखकर आगे बढ़ा जा सकता है, बातचीत के दौरान साक्षात्कारकर्ता व्यक्ति की अनिच्छा, असहयोग आदिमानव भाव को देख सकता है और उसके आधार पर उत्तरों की वैधता जान सकता है| आवश्यक प्रशिक्षण के अभाव में सही ढंग से साक्षात्कार नहीं लिया जा सकता | कई बार यदि अनेक व्यक्तियों से सूचनाएं एकत्रित करनी हों तो समय अधिक खर्च होता है| इसमें कोई दो राय नहीं कि बदलते हुए समय के साथ साक्षात्कार अति आवश्यक होते जा रहे हैं|

5.13 यात्रा साहित्य

यात्रा करना मनुष्य की नैसर्गिक प्रवृत्ति है | मानव प्रकृति और सौंदर्य का प्रेमी है| यदि हम मानव इतिहास पर नजर डालें तो यह पाते हैं कि मनुष्य के विकास की गाथा में यायावरी का महत्वपूर्ण योगदान है | अपने जीवन काल में हर आदमी कभी न कभी कोई न कोई यात्रा अवश्य करता है लेकिन सृजनात्मक प्रतिभा के धनी अपने यात्रा अनुभव को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत कर यात्रा साहित्य की रचना करने में सक्षम हो पाते हैं | यात्रा साहित्य का उद्देश्य लेखक के यात्रा अनुभव को पाठकों के साथ बांटना और पाठकों को भी उन स्थानों की यात्रा के लिए प्रेरित करना है | इन स्थानों की प्राकृतिक विशेषता, सामाजिक संरचना, समाज के विभिन्न वर्गों के सहसंबंध, वहां की भाषा और संस्कृति की जानकारी इसी साहित्य से प्राप्त होती है| हिंदी साहित्य में अन्य गद्य विधाओं की भांति भारतेंदु युग से यात्रा साहित्य का आरंभ माना जा सकता है | उनके संपादन में निकलने वाली पत्रिकाओं में हरिद्वार, लखनऊ, जबलपुर, सरयू पार की यात्रा, वैद्यनाथ की यात्रा, और जनकपुर की यात्रा आदि यात्रा साहित्य प्रकाशित हुए | यात्रा वृत्तांतों की भाषा व्यंग पूर्ण है और शैली बड़ी ही रोचक तथा सजीव है | इस समय के यात्रा

साहित्य लिखने वालों में दामोदर शास्त्री, देवी प्रसाद खत्री को महत्वपूर्ण माना जा सकता है| बाबू शिवप्रसाद गुप्त द्वारा लिखे गए यात्रा वृतांत 'पृथ्वी प्रदक्षिणा' को हम आरंभिक यात्रा साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान दे सकते हैं | इसकी सबसे बड़ी विशेषता इसकी चित्रात्मकता है| लगभग इसी समय स्वामी सत्यदेव परिव्राजक, कन्हैयालाल मिश्र, राम नारायण मिश्र, मौलवी महेश प्रसाद भी यात्रा वृतांत लिख रहे थे| स्वतंत्रता पूर्व युग के यात्रा साहित्य के विकास में राहुल सांकृत्यायन का योगदान कभी नहीं भुलाया जा सकता| स्वतंत्रता के पश्चात यात्रा साहित्य में बहुमुखी प्रतिभा के धनी कवि और कथाकार अज्ञेय का नाम बड़े सम्मान से लिया जाता है | यह अपने यात्रा साहित्य को यात्रा संस्मरण कहना पसंद करते थे | उनका मानना था कि यात्राएं ना केवल बाहर की जाती है बल्कि वे हमारे अंदर की ओर भी जाती हैं | उन्होंने बहुत से यात्रा वृतांत लिखे |

5.14 पत्र साहित्य

पंडित राम शंकर द्विवेदी कहते हैं- 'साहित्य की स्थाई संपत्ति हैं पत्र' | बेकन ने पत्रों का महत्व बताते हुए लिखा है कि- 'मेरे विचार से विद्वतजनों के पत्र मनुष्य के समस्त कथनों से श्रेष्ठ हैं' | जैसे-जैसे पत्र पत्रिकाएं छपने लगीं, धीरे-धीरे साहित्यकारों में आत्म चेतना आई और पत्र लेखन तथा प्रकाशन आरंभ हुआ |पत्र छपने लगे लेकिन इस विधा की ओर सर्वप्रथम ध्यान पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी का गया | उन्होंने पत्र लेखन को एक व्यसन के रूप में ही स्वीकार कर लिया और कुछ लेखकों को लेकर पत्र लेखन मंडल की स्थापना की | उसके सक्रिय सदस्य शिवपूजन सहाय भी रहे| पत्र, साहित्य की विधा है| पत्र हमारी अपनी व्यक्तिगत वस्तु है, अतः कई बार वह छप नहीं पाता | पत्रों को दो रूपों में बांटा जा सकता है- एक तो वे पत्र जो निजी होते हैं और प्रकाशन की दृष्टि से नहीं लिखे जाते| इस तरह के पत्र अत्यंत सरस, मार्मिक और पढ़ने में आनंद दायक होते हैं और ऐसे पत्र ही उच्च कोटि के समझे जाते हैं| दूसरा प्रकार है लेख रूप में लिखा जाने वाला पत्र | इस विधा का उपयोग उपन्यासकारों ने तो उपन्यास लिखने में भी किया है | रवींद्रनाथ ठाकुर ने जितने उत्तम पत्र लिखे हैं उनमें कुछ पत्र रूप में लिखे गए निबंध और यात्रा विवरण हैं जैसे 'रूस की चिट्ठी' आदि | अरविंद के अधिकांश पत्र इसी श्रेणी में आते हैं | उन्होंने अपने शिष्यों को जितने पत्र लिखे उनमें योग की गंभीर समस्याओं का विश्लेषण किया गया है | पत्र का विधा के रूप में उपयोग कई संपादकों और साहित्यकारों ने किया है | हिंदी पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाले ऐसे जिस पत्र साहित्य को ख्याति मिली उसमें बालमुकुंद गुप्त के 'भारत मित्र' में प्रकाशित 'शिव शंभू के चिट्ठे' और विश्वंभर नाथ शर्मा 'कौशिक' द्वारा 'चांद' में प्रकाशित 'दुबे जी की चिट्ठी' प्रमुख हैं| हिंदी पत्रकारिता की गोद में

पलने वाली यह परंपरा रुकी नहीं | सरस्वती और कल्पना में प्रकाशित पंडित विद्यानिवास मिश्र की चिट्टियां हिंदी जगत में तहलका मचा चुकी हैं| 1963 में 'ज्ञानोदय' ने अपना पत्र विशेषांक निकाल कर इस विधा का अच्छा प्रयोग किया |इसमें हिंदी के अनेक साहित्यकारों ने पत्र विधा में संस्मरण, रेखाचित्र, कहानी, रिपोर्ताज, निबंध, आलोचना आदि लिखे हैं |बीच-बीच में कुछ देशी-विदेशी साहित्यकारों के व्यक्तिगत पत्र भी संकलित हैं | श्री हरिशंकर परसाई की 'और अंत में' पुस्तक इसका प्रमाण बखूबी दे रही है | अज्ञेय ने इस विधा का उपयोग अपने 'नदी के द्वीप' उपन्यास में खूब किया है |हिंदी में पत्र विधा में एक समीक्षा ग्रंथ भी निकला है - 'महादेवी- विचार और व्यक्तित्व' | पत्रों के उपयोग से साहित्य के इतिहास की प्रामाणिकता बढ़ जाती है | कवियों और साहित्यकारों के स्वभाव और उनकी प्रवृत्तियों की सही जानकारी मिल जाती है |जीवनी की दृष्टि से पत्रों का महत्व एक और महत्वपूर्ण ग्रंथ से प्रकट होता है प्रभात कुमार मुखोपाध्याय ने वर्षों तक प्रभु परिश्रम करके रवींद्र जीवनी लिखी | चार खंडों में बड़े आकार के लगभग 2000 शब्दों में पूरी हुई इस जीवनी में प्रभात कुमार जी ने गुरुदेव और अन्य व्यक्तियों के पत्रों का खूब प्रयोग किया है | जीवनी व्यक्ति की होती है और व्यक्ति जितना मुक्त निश्चल और सही रूप में अपने पत्रों में व्यक्त होता है उतना अपनी अन्य रचनाओं में नहीं| पत्र साहित्य का महत्व इसलिए है कि उसमें बने-ठने, सजे-सजाए मनुष्य का चित्र नहीं बल्कि एक चलते फिरते मनुष्य का 'स्नैप शॉट' मिल जाता है |जिन पत्रों के विषय और शैली दोनों ही महत्वपूर्ण हों, वह साहित्य की स्थाई संपत्ति बन जाते हैं और इस संपत्ति पर पाठक भी गर्व करते हैं|

5.15 डायरी साहित्य

डायरी साहित्य में सबसे सशक्त लेखक सैमुअल पैपीज़ को माना जाता है | किसी डायरी में एक दिन या एक अवधि के दौरान क्या-क्या घटित हुआ ? इसके बारे में पूरी जानकारी व्यवस्थित रूप से लिखना डायरी कहलाता है | जो कोई भी डायरी रखता है उसे 'डायरिस्ट' के रूप में जाना जाता है|एक डायरी एक ज्ञापन आत्मकथा या जीवनी के लिए जानकारी प्रदान कर सकती है लेकिन आम तौर पर इसे प्रकाशित होने के इरादे से नहीं लिखा जाता है डायरी गद्य साहित्य की एक प्रमुख विधा है इसमें लेखक आत्म साक्षात्कार करता है वह अपने आप से संप्रेषण की स्थिति में होता है | किसी भी घटना के प्रति व्यक्ति के तात्कालिक उद्वेग या अभिव्यक्ति का माध्यम डायरी बनती है वैसे तो डायरी एक निजी संपत्ति मानी जाती है जो किसी व्यक्ति की अपनी मानसिक सृष्टि और उसका अंतदर्शन है परंतु व्यापक दृष्टि में डायरी भी प्रकाश में आकर साधारणीकृत हो जाने के कारण साहित्य जगत की संपत्ति बन जाती है

डायरी शब्द की उत्पत्ति लेटिन भाषा से हुई है इसका संबंध दैनिक कार्य या दिनचर्या से है भले ही यह अंग्रेजी शब्द है परंतु शब्द कोष के अंतर्गत इसे रोजनामचा दैनिकी दैनंदिनी आधी कहा जाता है इनसे यह स्पष्ट होता है कि डायरी दैनिक व्यापार हो या घटनाओं का ब्यौरा है डायरी लेखक घटनाओं को उसी अनुक्रम में लिखता जाता है जिस क्रम में विघटित होती हैं सामान्य अर्थों में डायरी व पुस्तिका है जिसमें हर रोज की घटनाओं या दिन भर में किए गए कार्यों का लेखा जोखा रखा जाता है डायरी में लोग अपने कुछ यार सब अनुभव का दैनिक विवरण लिखते हैं परंतु साहित्य का अर्थ में या केवल तिथि देकर अपनी दिनचर्या का उल्लेख मात्र नहीं है बल्कि इससे परे एक मानसिक उद्योग को व्यक्त करने का ऐसा माध्यम है जिसमें भावुक हृदय की संवेदनात्मक अभिव्यक्ति हो सकती है इसीलिए समीक्षकों ने डायरी को साहित्य की कोटि में रखा है भले ही आधुनिक संदर्भ में डायरी विधा का प्रादुर्भाव पाश्चात्य साहित्य होता हुआ हिंदी में आया हो रामधारी सिंह दिनकर ने माना है कि- ‘ डायरी वह चीज है जो रोज लिखी जाती है और जिस में घोर रूप से वैयक्तिक बातें लिखी जा सकती हैं|’ प्रत्येक विधा के निर्माण के पीछे कुछ विशेष और सामान्य तत्व होते हैं और यही विशेषता उसे अन्य विधाओं से अलग करती है भले ही डायरी विधा अधिक लोकप्रिय ना हो फिर भी इस विधा का निजीपन इसका मुख्य तत्व रहा है इसके साथ ही वैयक्तिकता, भावाभिव्यक्ति, तिथिक्रम, तात्कालिक प्रक्रिया, अनियमित लेखन, परिवेशांकन, आत्म विश्लेषण, वास्तविकता, छिपाव का भाव, पुनरावर्तन, अधूरापन, निज दृष्टि, भाषा शैली आदि|

5.16 रिपोर्ताज

रिपोर्ताज गद्य लेखन की एक विधा है | यह फ्रांसीसी भाषा का शब्द है | ‘रिपोर्ट’ अंग्रेजी भाषा का शब्द है | रिपोर्ट किसी घटना के वास्तविक यथा तथ्य वर्णन को कहते हैं | रिपोर्ट सामान्य रूप से समाचार पत्र के लिए लिखी जाती है और उसमें साहित्यिकता नहीं होती | रिपोर्ट के कलात्मक तथा साहित्यिक रूप को रिपोर्ताज कहते हैं | वास्तव में रेखाचित्र की शैली में प्रभावोत्पादक ढंग से लिखे जाने में ही रिपोर्ताज की सार्थकता है | आंखों देखी और कानों सुनी घटनाओं पर भी रिपोर्ताज लिखा जाता है | कल्पना के आधार पर रिपोर्ताज नहीं लिखे जा सकते |घटना प्रधान होने के साथ ही रिपोर्ताज को कथा तत्व से भी युक्त होना चाहिए | रिपोर्ताज लेखक को पत्रकार तथा कलाकार दोनों की भूमिका निभानी पड़ती है | रिपोर्ताज लेखक के लिए यह आवश्यक है कि वह जनसाधारण के जीवन की सच्ची और सही जानकारी रखें, यदि इसके इतिहास को उठाकर देखा जाए तो द्वितीय महायुद्ध में रिपोर्ताज विधा पाश्चात्य साहित्य में बहुत लोकप्रिय हुई |विशेष रूप से अंग्रेजी साहित्य में इसका प्रचलन रहा | हिंदी साहित्य

में यह विधा विदेशी साहित्य के प्रभाव से अधिक परिपक्व नहीं हो पाई | अब यह धीरे-धीरे आगे बढ़ रही है | रिपोर्ताज का अर्थ एवं उद्देश्य काफी व्यापक है | जीवन की सूचनाओं की कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए रिपोर्ताज का जन्म हुआ | यह पत्रकारिता के क्षेत्र की है गद्य की विधाओं में यह सबसे नई विधा है | हिंदी खड़ी बोली गद्य के आरंभ के साथ कई अनेक विधाओं का प्रचलन हुआ | वास्तव में रिपोर्ताज का जन्म हिंदी में काफी बाद में हुआ लेकिन भारतेंदु युगीन साहित्य में इसकी कुछ विशेषताओं को देखा जा सकता है | रिपोर्ताज लेखन का प्रथम प्रयास शिवदान सिंह चौहान द्वारा लिखित 'लक्ष्मीपुरा' को माना जा सकता है | इसके कुछ समय बाद हंस पत्रिका में उनका दूसरा रिपोर्ताज 'जिंदगी की लड़ाई' शीर्षक से प्रकाशित हुआ | पत्रकारिता में रिपोर्ताज की नई विधा पर लेखन करने वाले कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' को आज भी उनके शानदार और प्रभावकारी लेखन के लिए याद किया जाता है | वास्तव में रिपोर्ताज के आविष्कारक के रूप में उन्हें ही स्मरण किया जाना चाहिए | हिंदी साहित्य में यह प्रगतिशील साहित्य के आरंभ का काल भी था | कई प्रगतिशील लेखकों ने इस विधा को समृद्ध किया |शिवदान सिंह चौहान के अतिरिक्त अमृतराय और प्रकाश चंद्र गुप्त ने बड़े जीवंत रिपोर्ताजों की रचना की है | रिपोर्ताज की दृष्टि से रांगेय राघव सर्वश्रेष्ठ लेखक कहे जा सकते हैं | इन्होंने बंगाल के अकाल का बड़ा ही मार्मिक चित्रण 'तूफानों के बीच' रिपोर्ताज में किया है| वह गरीबों के लिए प्रतिबद्ध लेखक हैं | स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद रिपोर्ताज लेखन का हिंदी में चलन बढ़ गया | इस समय के लेखकों ने अभिव्यक्ति की विविध शैलियों को आधार बनाकर नए-नए प्रयोग करने आरंभ कर दिए | रामनारायण उपाध्याय ने'अमीर और गरीब' रिपोर्ताज संग्रह में व्यंग्यात्मक शैली को आधार बनाकर समाज के शाश्वत विभाजन को चित्रित किया है | इसी प्रकार फणीश्वर नाथ रेणु के रिपोर्ताजों ने इसको नई ताजगी दी | धर्मवीर भारती, शमशेर बहादुर सिंह, कन्हैयालाल मिश्र, प्रकाश चंद्र गुप्त, रामनारायण उपाध्याय, भगवतशरण उपाध्याय, निर्मल वर्मा, कमलेश्वर, जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, विवेकी राय आदि ने भी रिपोर्ताज लिखे हैं |

5.17 दक्खिनी हिंदी साहित्य: सामान्य परिचय

दखिनी के अन्य नामों में हिंदी, हिंदवी, दकनी, दखनी, देहलवी, गूजरी, हिंदुस्तानी, जबाने हिंदुस्तानी, दक्खिनी हिंदी आदि हैं| दक्खिनी हिंदी मुख्यतः हिंदी का ही एक रूप है |

5.17.1 दक्षिणी हिंदी का स्वरूप

इसका मूल आधार दिल्ली के आसपास प्रचलित 14 वीं 15 वीं सदी की खड़ी बोली है | मुसलमानों ने भारत में आने पर इस बोली को अपनाया था | 15 वीं 16 वीं सदी में फौज, फकीरों तथा दरवेशों के साथ यह भाषा दक्षिण भारत में पहुंची और वहां प्रमुखतः मुसलमानों में तथा कुछ हिंदुओं में जो उत्तर भारत के थे प्रचलित हो गई| परिवर्तन की दृष्टि से तीन बातें उल्लेखनीय हैं- उर्दू भाषा का इस पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है, कुछ पुराने रूप विकसित होकर कुछ के कुछ हो गए हैं, शब्द समूह के क्षेत्र अनुसार तमिल तेलुगू कन्नड़ आदि भाषाओं का प्रभाव पड़ा है| दक्खिनी की लिपि फारसी है और इसमें सामान्य हिंदी की भांति भारतीय परंपरा के पर्याप्त शब्द हैं |

5.17.2 दखिनी का क्षेत्र

दक्षिणी का क्षेत्र मुख्यतः दक्षिण भारत के बीजापुर, गोलकुंडा, अहमदनगर के साथ साथ बरार, मुंबई तथा मध्य प्रदेश आदि हैं | ग्रियर्सन के भाषा सर्वेक्षण के अनुसार दक्खिनी बोलने वालों की संख्या लगभग साढे छत्तीस लाख थी| उन्होंने माना है कि यह भाषा बोलने वाले मद्रास और मुंबई तक फैले हुए हैं | इस भाषा का साहित्य आम लोगों में लोकप्रिय ना होने के कारण अपनी भाषा को कोई भी व्यक्ति दक्खिनी नहीं कहता | आज भी उस क्षेत्र में यह उर्दू नाम से बोली जाती है| इसका क्षेत्र दक्षिण में होने के कारण इसका नाम दक्खिनी पड़ा | वास्तव में दक्खिनी भाषा और साहित्य की आत्मा पूर्णतया भारतीय है | विशुद्धता की दृष्टि से किसी भी भाषा की कोई निश्चित रेखा नहीं होती| राजनीतिक दृष्टि से जो सीमाएं होती हैं भाषा की दृष्टि से उन्हें एकदम सही नहीं माना जा सकता फिर भी भाषाई सीमाएं माननी पड़ती हैं | दक्खिनी हिंदी का विकास जिस प्रदेश से हो रहा था वह प्रदेश मराठी ,तेलुगु और कन्नड़ भाषाओं का मिलन स्थल था, इसलिए बोल चाल की दक्खिनी के अनेक रूप मिलते हैं|

5.17.3 दखिनी का विकास

ग्रियर्सन इसे हिंदुस्तानी का बिगड़ा रूप ना मानकर उत्तर भारत की साहित्यिक हिंदुस्तानी को ही इसका बिगड़ा रूप मानते हैं| यह इसे हिंदुस्तानी नहीं तो उसकी सहोदरा भाषा अवश्य मानते हैं | डॉ भोलानाथ तिवारी के अनुसार भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से दक्खिनी मूलतः प्राचीन खड़ी बोली है जिसमें पंजाबी, हरियाणवी,ब्रज, मेवाती तथा अवधी के कुछ रूप भी हैं | दक्षिण में जाने के बाद इस पर कुछ गुजराती-मराठी का प्रभाव पड़ा है | 15 से 18वीं सदी तक दक्खिनी को बहमनी वंश तथा अन्य राजाओं का आश्रय प्राप्त रहा और पर्याप्त साहित्य रचना भी हुई | इसमें गद्य साहित्य भी पर्याप्त मिलता है | खड़ी बोली गद्य का प्राचीन प्रमाणिक ग्रंथ दक्खिनी में ही मिलता है | इस ग्रंथ का नाम 'मिराजुल आशिकीन' है जिसके लेखक ख्वाजा बंदा नवाज हैं | दक्षिणी के साहित्यकारों में अब्दुल्ला, वजही, गुलाम अली, निजामी, गवासी, बेलोरी आदि प्रमुख हैं| उर्दू साहित्य का आरंभ हुई वस्तुतः दक्खिनी से ही हुआ | उर्दू के प्रथम कवि वली ही दक्खिनी के अंतिम कवि वली औरंगाबादी हैं | डॉ मसूर हुसैन खान ने दक्खिनी का उद्भव भारतीय आर्य भाषा के विकास में खोजा है | उन्होंने माना है कि दक्खिनी भाषा की शब्दावली विशेषतया दिल्ली के आसपास की बोलियों से पूरी तरह मेल खाती है | वह मानते हैं कि इसका उद्गम अमीर खुसरो की 'हजरत देहली' के आसपास की बोलियां हैं | इस तरह दक्खिनी हिंदी मूलतः वह कौरवी, हरियाणवी या हिंदी बोली थी जो दिल्ली के मुस्लिम सुल्तानों द्वारा विकसित की गई | दक्षिण की विजय के साथ साथ यह प्रायः 14 वीं- 15वीं शताब्दी के पूर्वार्ध काल से ही पहुंचने लग गई थी | धीरे-धीरे यहां इस भाषा को पूर्ण विकास करने का अवसर मिला |

अपनी प्रगति जाँचिये(बोध प्रश्न)

1. उपन्यास सम्राट किसे कहा जाता है?
2. चिंतामणि निबंध संग्रह के लेखक कौन हैं?
3. हिंदी की पहली कहानी का नाम लिखिए|
4. हिंदी का प्रथम रेखा चित्रकार किसे माना जाता है?
5. हिंदी गद्य की दो प्रमुख विधाओं के नाम लिखिए|
6. हिंदी के प्रथम मौलिक उपन्यास का नाम लिखिए|
7. भारतेंदु युग के दो निबंध कारों के नाम लिखें|

8. संकलन त्रय का क्या अर्थ है?
9. आत्मकथा से क्या आशय है?
10. जीवनी क्या है?
11. दो रिपोर्ताज लेखकों के नाम लिखें|
12. हिंदी के प्रथम यात्रा वृत्त का नाम लिखें|
13. दिवेदी युग के दो समीक्षकों के नाम लिखिए|
14. हिंदी में रेखाचित्र का सूत्रपात कब हुआ?
15. हिंदी गद्य के प्राचीनतम प्रयोग किस भाषा में मिलते हैं?
16. भारतेंदु युग की प्रमुख पत्रिकाओं के नाम लिखिए|
17. चंद्रकांता किसने लिखा?
18. शुक्ल युग को अन्य किन नामों से जाना जाता है?
19. आकाशदीप कहानी किसकी है?
20. कंकाल और तितली किसके उपन्यास हैं?
21. आधुनिक हिंदी एकांकी का जनक किसे माना जाता है?
22. रामविलास शर्मा किस रूप में प्रसिद्ध हैं?
23. दक्खिनी किसका एक रूप है?
24. दक्खिनी के अंतिम कवि कौन हैं?

5.18.3 उर्दू की प्रमुख विशेषताएं

उर्दू कविता फारसी का अनुकरण करती है। उर्दू काव्य में भी फारसी छंदों की बहुलता है। इसी अनुकरण के साथ ही फारसी में विषयों को भी उर्दू ने आत्मसात कर दिया है। फलस्वरूप कविता वास्तविकता से दूर हट कर नकल मात्र बन गयी। इस संदर्भ में सर चार्ल्स लायल का कथन उल्लेखनीय है– "उर्दू कविता फारसी कविता का अनुकरण करती है और वही विषय बार–बार दोहराती है। यही कारण है कि उर्दू कविता की विशेषता नवीन भावना और विषय न होकर शाब्दिक चमत्कार मात्र रह गया।"

उर्दू में तुकबंदी का आधिक्य है। इसी तुकबंदी के आग्रह के कारण भावों की सहज और सरल अभिव्यक्ति नहीं हो पाती है। उर्दू कविता में अस्वाभाविक प्रेम का चित्रण किया गया है। उर्दू के अधिकांश प्रारंभिक कवित्त सूफी विचारधारा के थे। उर्दू के सर्वप्रथम कवि वली भी सूफी ही थे, इसी तरह ख्वाजा मीर दर्द भी फकीर ही थे। मीर और सौदा की रचनाओं में सूफी विचारधारा का प्रभाव दृष्टिगत होता है।

उर्दू में शृंगारी कविता का प्रारंभ सूफी मत एवं दरबारियों के प्रभाव तथा फारसी शृंगारी कविता के अनुकरण के कारण हुआ। शृंगार के वियोगात्मक एवं संयोगात्मक दोनों स्वरूपों की चर्चा उर्दू में मिलती है। लौकिक विरह के द्वारा कवि अलौकिक विरह की ओर संकेत करता है। शृंगार की अभिव्यक्ति गजलों में अधिक हुई है।

उर्दू कविता का आरंभ दरबारी प्रश्रय में हुआ था। दरबारी प्रभाव के कारण विषय सीमित हो गए। इसी कारण नवाब या वजीर की प्रशंसा की गयी। उर्दू कविता में प्रकृति चित्रण कम हुआ। उर्दू साहित्य में भी ऐहिक आकांक्षाओं का चित्रण अधिक नहीं है। जीवन से विमुखता एवं परमेश्वर से दीनतापूर्ण विनय आदि विषयों पर पर्याप्त लिखा गया है। काव्य में एक विशेष प्रकार की उदासीनता एवं करुणा दिखाई देती है।

गुरु (उस्ताद) एवं शिष्य (शागिर्द) का संबंध उर्दू कविता में विशेष महत्व का है। शिष्य अपने गुरु का अनुकरण करना श्रेष्ठ समझता है। कालांतर में उर्दू में विषयों की नवीनता, भावों की मौलिकता एवं उपमानों का परिचित प्रयोग प्रारंभ हो गया है।

वस्तुतः उर्दू कविता अत्यंत भावपूर्ण है। उसमें एक अनोखा माधुर्य एवं सूक्ष्मता है। यह प्रेमरस से पूर्णरूपेण सराबोर है। दुःख के गीत, प्रेम की विफलताएं, विरह–वेदना आदि पर बहुत मार्मिक कविता उर्दू में हुई।

5.18.4 उर्दू के विविध काव्यरूप

उर्दू में कई काव्यरूप विकसित हुए। उर्दू के प्रमुख काव्य–रूप गजल, किता, मसनवी, कसीदा, रुबाई, वासोख्त और गीत आदि हैं। उर्दू का छंदशास्त्र फारसी और अरबी का अनुकरण करता है। लिखित शब्दों के साथ उच्चरित शब्दों की भी गणना होती है।

- **गजल**

गजल में अधिकांशतः प्रेम संबंधी विषयों का प्रतिपादन होता है। यद्यपि इसमें सूफी दर्शन, देशभक्ति, नैतिक सिद्धांत और राजनीति आदि विषयों की चर्चा भी सरल एवं मधुर ढंग से वर्णित रहती है, पर गजलों का जन्म केवल प्रेम चर्चा के लिए हुआ था। गजल का पहला और अंतिम शेर 'मकता' कहलाता है। दार्शनिकता इनकी प्रधान विशेषता होती है।

- **कसीदा**

कसीदा उन शेरों को कहते हैं जिनमें किसी व्यक्ति, वस्तु या विषय की प्रशंसा या निंदा हो। कसीदा लिखने के लिए दरबारी कायदे, कानून और लोक–व्यवहार से भिज्ञ होना अत्यंतावश्यक है। भूमिका के शेरों में अन्य विषयों का प्रतिपादन हो सकता है, किंतु उसका संबंध किसी–न–किसी रूप में प्रशंसा के शेरों से होना चाहिए। कसीदे का कलेवर भी गजल का सा होता है।

- **मसनवी**

यह युद्ध और प्रेम के आख्यानों के लिए अधिकांशतः प्रयुक्त होती है। मसनवी के लिए सामान्यतः 8 छंद निर्धारित हैं। मसनवी लंबी कविता होती है। यह पद्यबद्ध कथा होती है। आधुनिक मसनवियों में राजनीतिक तथा सामाजिक विषयों का समावेश कर दिया गया है।

- **मरसिया**

'मरसिया' अरबी शब्द है, जिसका अर्थ है–मरने वालों के गुणों का इस प्रकार वर्णन करना कि सुनने वालों के हृदय में करुणा जाग्रत हो जाए। उर्दू काव्य प्रारंभ से ही धार्मिक प्रेरणा से युक्त था। मरसियों में मुख्यतः करुण, वीर और रौद्र रस की प्रधानता रहती है।

- **रुबाई**

रुबाई चार मिसरों का छंद है जिनके पहले, दूसरे और चौथे मिसरों का एक ही रदीम और काफिया होना आवश्यक है। रुबाई के छंदों को एक ही झटके के साथ पढ़ा जाता है।

- **किता**

'किता' का अर्थ 'टुकड़ा' होता है। वास्तव में इसे गज़ल या कसीदे का एक टुकड़ा ही समझना चाहिए। कभी–कभी गज़ल के बीच में भी किताबंद शेर आ जाते हैं।

● **शेर**

बराबर मात्राओं को दो पंक्तियों से मिलाकर एक 'शेर' तैयार होता है। प्रत्येक पंक्ति को अलग–अलग मिसरा कहा जाता है। पंक्तियों के हर समूह को 'बंद' कहते हैं।

यदि यह कहा जाए कि उर्दू साहित्य नये मोड़ पर पहुंचते–पहुंचते अपनी कुंठाओं से मुक्ति पाकर मानवता के उन्नयन का समर्थक और उनको प्रस्तुत करने का माध्यम बन गया, तो अत्युक्ति न होगी। परंतु उर्दू को लिपि के मामले में स्वतंत्रता प्राप्त नहीं हुई। आवश्यकता इस बात की है कि उर्दू भारतीय परिवेश में भारतीय प्रवृत्तियों को अपनाए। उर्दू को जीवित, सुसंपन्न और उत्तरोत्तर प्रगतिशील बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि हिंदी के साथ उसके कृत्रिम भेद की जो दीवार खड़ी की गयी है उसे गिरा दिया जाए। वस्तुतः उर्दू का भविष्य आशापूर्ण है। आधुनिक रचनाएं इस बात का प्रमाण हैं। इस प्रकार उर्दू साहित्य ने हिंदी के विकास में पर्याप्त योगदान दिया।

5.19 हिंदी–उर्दू साहित्य का पारस्परिक संबंध

हिंदी मध्य देश की भाषा को कहा जाता था, तथा मुगलकाल में बाजार में बोली जाने वाली भाषा उर्दू–ए–मुअल्ला कहलायी। यह भाषा तत्कालीन खड़ी बोली होगी, जिसमें अरबी–फारसी के शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ। यही भाषा वर्तमान उर्दू का प्रारंभिक रूप रही। इस समय हिंदी शब्द केवल बोलचाल की भाषा के रूप में सीमित होने लगा और नयी काव्य भाषा 'उर्दू' कही जाने लगी।

हिंदी और उर्दू में एक ही प्रमुख भाषिक अंतर है। दोनों भाषाएं अलग–अलग लिपियों में लिखी जाती हैं। संसार में शायद यही एक उदाहरण है, जहां एक ही भाषा रूप दो भिन्न भाषाओं के नाम से जाना जाता है। वर्तमान में हिंदी और उर्दू भाषाएं विकास यात्रा में भिन्न रास्तों पर चल रही हैं। स्वतंत्रता से पूर्व उर्दू और हिंदी प्रमुखतः साहित्य और जनसंपर्क की भाषाएं थीं। इस कारण दोनों की शब्दावली में कोई विभेद नहीं था– सिर्फ कुछ लेखकों की अधिक संस्कृतनिष्ठ शैली होती थी या कुछ की अरबी–फारसी के शब्दों से भरी उर्दू शैली। किंतु स्वतंत्रता के बाद हिंदी ने संस्कृत की पारिभाषिक शब्दावली को अपनाया तथा उर्दू ने अरबी–फारसी के शब्दों का सहारा लिया। इसी कारण दोनों की शब्दावली में अंतर आया तथा दोनों भाषाओं में परस्पर बोधगम्यता में कमी आयी। कहने का तात्पर्य यह है कि व्याकरणिक संरचना एक होते हुए भी हिंदी और उर्दू की धाराएं अलग हो गईं।

5.20 हिंदी साहित्यिक पत्र–पत्रिकाएं : प्रारंभ और विकास

पत्रकारिता को लोकतंत्र के चौथे स्तंभ के रूप में जाना जाता है। भारत में पत्रकारिता का आरंभ सन् 1780 में जेम्स ऑगस्टस हिकी ने कलकत्ता में *'बंगाल–गजट'* नामक साप्ताहिक पत्र के प्रकाशन से हुआ। भारतीय भाषाओं में सबसे पहले बांग्ला में समाचार–पत्र प्रकाशित हुए। हिंदी में पत्रकारिता के प्रारंभ होने से पूर्व भारत में अंग्रेजी, बंगाली, फारसी और गुजराती भाषाओं में पत्रकारिता आरंभ हो चुकी थी।

हिंदी में देवनागरी लिपि में हिंदी का पहला पत्र 'उदन्त मार्तंड' था जिसे पं. जुगल ग्शोर ने 30 मई, 1826 को निकाला। किंतु लगभग डेढ़ वर्ष बाद इसे बंद करना पड़ा। सन् 50 में यह पुनः प्रारंभ किया गया। हिंदी पत्रकारिता के विकास को निम्न चरणों में देख कते हैं—

(1) **प्रारंभिक युग (1826—1867)**— 'उदन्त मार्तंड' से इसका प्रारंभ हुआ। यह साप्ताहिक पत्र था, जिसने हिंदी को एक नयी दिशा दी। 1852 में आगरा से 'बुद्धिप्रकाश' का प्रकाशन हुआ। सन् 1829 में राजा राममोहन राय ने 'बंगदूत' साप्ताहिक पत्र का संपादन किया, यह चार भाषाओं हिंदी, अंग्रेजी, बांग्ला तथा फारसी में प्रकाशित होता था। 1854 में कलकत्ता से 'समाचार सुधावर्षण' नाम दैनिक समाचार पत्र प्रकाशित हुआ। इसके संपादक श्याम सुंदर सेन थे। राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम में इस पत्र की प्रमुख भूमिका रही। यह काल पत्रकारिता का प्रारंभिक काल था, जिसमें हिंदी पत्रों का कोई स्वरूप निर्धारित नहीं हुआ था।

(2) **भारतेन्दु युग (1868—1900)**— इस काल में भारतेंदु हरिश्चंद्र, बालकृष्ण भट्ट तथा बालमुकुंद गुप्त जैसी प्रतिभाओं ने हिंदी पत्रकारिता को नयी दिशा प्रदान की। भारतेंदु ने 'कविवचनसुधा' मासिक पत्रिका का संपादन व प्रकाशन किया। इसके अतिरिक्त 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' तथा 'बाल बोधिनी' पत्रिका भी निकाली, जिनका प्रमुख स्वर राष्ट्र प्रेम था। 1877 में बालकृष्ण भट्ट ने 'हिंदी प्रदीप' नामक मासिक पत्रिका निकाली। बालमुकुंद गुप्त ने 'भारत मित्र' नामक पत्र निकाला तथा प्रगतिशील मूल्यों की स्थापना की। इसके अतिरिक्त इस काल में 'उचित वक्ता', 'हिंदी—बंगवासी', 'आर्यमित्र', 'भारतोदय' पत्रिकाएं भी प्रमुख थीं।

(3) **द्विवेदी युग (1900—1920)**— इस युग में भारतीय राजनीति में बाल गंगाधर तिलक का प्रभाव बढ़ने लगा था। इन्होंने 'केसरी' का हिंदी संस्करण निकाल पत्रकारिता को नयी दिशा दी। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' पत्रिका का प्रकाशन किया। इसमें नैतिकता सुधारवाद तथा देशभक्ति का स्वर प्रमुख था। इस काल में 'प्रभा', 'चांद', 'माधुरी' आदि पत्रिकाओं ने भी अपना स्वरूप बदला। माखनलाल चतुर्वेदी ने 1909 में 'कर्मवीर' नामक साप्ताहिक पत्र निकाला। इसके अतिरिक्त 'नृसिंह', 'मर्यादा', 'प्रताप', 'देवनागर' इस युग की अन्य प्रमुख पत्र—पत्रिकाएं थीं।

(4) **स्वतंत्रता पूर्व युग (1920—1947)**— राजनीतिक रूप से इस काल में महात्मा गांधी का प्रभाव रहा। इस युग का पत्र—पत्रिकाओं में 'चांद', 'प्रभा', 'माधुरी', 'विशाल भारत', 'हंस' आदि विशेष महत्वपूर्ण रहीं। इसके अलावा कुछ मासिक व साप्ताहिक पत्र प्रकाशित हुए जिनमें 'मतवाला', 'जागरण' तथा 'भारत' प्रमुख हैं। 1920 में बनारस से 'आज' पत्र प्रारंभ हुआ।

(5) **स्वातंत्र्योत्तर युग (1947 से अद्यावधि)**— स्वतंत्रता के बाद नये भारत के निर्माण, भारतीय सभ्यता और संस्कृति के विकास, हिंदी के द्वारा ज्ञान—विज्ञान के

उद्घाटन, साहित्य और शोध को बढ़ावा आदि उद्देश्य लेकर पत्रकारिता आगे बढ़ी। दैनिक समाचार पत्रों में 'दैनिक जागरण', 'अमर उजाला', 'भास्कर', 'आज', 'नयी दुनिया', 'पंजाब केसरी', 'हिंदुस्तान', 'नवभारत टाइम्स' प्रमुख रूप से निकल रहे हैं। पत्रिकाओं में 'कादम्बिनी', 'सरिता', 'योजना', 'आलोचना', 'नवगीत', 'साहित्यानुशीलन', 'माधुरी' प्रधान हैं। वर्तमान में लघु पत्रिकाएं– 'वागार्थ', 'विकल्प', 'कथा', 'दस्तक', 'दस्तावेज', 'शेष', 'वर्तमान साहित्य', 'पहल' आदि प्रमुख हैं।

निष्कर्षतः हिंदी पत्रकारिता ने स्वतंत्रता संग्राम से लेकर अब तक संघर्ष एवं उपलब्धियों के अनेक दौर देखे हैं। यह राष्ट्र की राजनीतिक–सामाजिक चेतना को सदा साथ लेकर चली है। वर्तमान में हिंदी पत्र–पत्रिकाएं व्यावसायिक स्पर्धा में अपनी–अपनी श्रेष्ठता के नये आयाम स्थापित कर रही हैं।

गतिविधि

इंटरनेट की सहायता से ऐसे रचनाकारों की सूची तैयार कीजिए जिनका लेखन सामाजिक सरोकारों से हमेशा जुड़ा रहा।

क्या आप जानते हैं?

दिल्ली स्थित मंडी हाउस में समय–समय पर ऐतिहासिक, सामाजिक तथा क्षेत्रीय भाषा के नाटकों का मंचन होता रहता है।

5.21 सारांश

राष्ट्रीय जागृति के साथ ही हिंदी गद्य साहित्य की विभिन्न विधाओं में सृजन कार्य प्रारंभ हो गया। इसी क्रम में नाटक लिखे जाने लगे। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी इस बात को स्वीकार किया कि आधुनिक गद्य साहित्य की परंपरा का प्रवर्तन नाटकों से हुआ।'' भारतेंदुजी के असमय अवसान से हिंदी में मौलिक नाटकों के लेखन में अवरोध–सा आ गया था। यद्यपि, अनूदित नाटकों की कमी न थी। नाट्य शिल्प में जैसा विकास और भावबोध में जैसा विस्तार अपेक्षित था, वह भारतेंदु जी के अवसान के बाद और जयशंकर प्रसाद के नाट्य क्षेत्र में अवतीर्ण होने से पूर्व नहीं आ सका। भारतेंदु युग में हिंदी नाटकों की जो शैशवावस्था थी, उसे यौवन का मार्दव प्रदान करने में प्रसाद जी की प्रतिभा अग्रगण्य रही। प्रसाद जी इस क्षेत्र में युगांतरकारी प्रतिभा लेकर आए। उन्होंने अपनी प्रतिभा के बल से हिंदी नाटकों को नवोत्कर्ष और प्रभविष्णुता प्रदान की। जयशंकर प्रसाद के पश्चात नाटक साहित्य का पर्याप्त विकास हुआ। प्राच्य एवं पाश्चात्य, दोनों शैलियों का यथायोग्य प्रयोग कर अनेक नाटकों की रचना की गयी। स्वतंत्रता के बाद हिंदी नाटक और रंगमंच का अच्छा विकास हुआ है। दिल्ली में स्थापित 'नेशनल स्कूल आफ ड्रामा' तथा कोलकाता, मुंबई आदि नगरों में स्थापित नाटक केंद्रों से हिंदी नाटक की रचना और मंचन के लिए बड़ा प्रोत्साहन मिला। कथा और शिल्प की दृष्टि

से हिंदी नाटकों का विकास बहुमुखी रहा है और तकनीक की दृष्टि से नाटक में नित्य नये प्रयोग हो रहे हैं। वर्तमान नाटक अधिकतर मनोवैज्ञानिक और समस्या प्रधान होते जा रहे हैं।

निबंध की आरंभिक परंपरा में भारतेंदु युग के लेखकों का विशेष महत्व है क्योंकि उन्होंने विषय, शैली और भाषा, तीनों स्तरों पर निबंधों में नये प्रयोग किए किंतु निबंधों का प्रौढ़ रूप द्विवेदी युग में ही प्राप्त हुआ। इसी युग में भाषा के मानक रूप और चिंतन में प्रौढ़ता और शैली में परिष्कार भी हुआ। हिंदी निबंध के विकास में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का केंद्रीय महत्व रहा है। उन्होंने विचार, शैली और भाषा तीनों स्तरों पर हिंदी निबंध को उच्च स्तरीय स्वरूप प्रदान किया। भारतेंदु युग के निबंधकारों ने समाज सुधार, राष्ट्रप्रेम, देशभक्ति, अतीत–गौरव, विदेशी शासन के प्रति आक्रोश आदि को अपने निबंधों का विषय बनाया है। भारतेंदु से लेकर द्विवेदी युग से होते हुए हिंदी निबंध लेखन की यात्रा शुक्ल और शुक्लोत्तर युग में अपने चरम उत्कर्ष पर रही। इधर के वर्षों में इस क्षेत्र में नये लेखकों का आगमन बहुत कम हुआ है।

हिंदी उपन्यासों का जन्म सुधारवादी भावनाओं की पृष्ठभूमि में हुआ। प्रेमचंद को ही उपन्यास की विकास यात्रा का केंद्र बिंदु मानकर संपूर्ण विकास क्रम को समझा जा सकता है। प्रेमचंद ने हिंदी उपन्यास को जो ठोस आधारभूमि दी उससे इस विधा के विकास की चौमुखी राहें खुल गईं। प्रेमचंद के पश्चात समाजवादी यथार्थवाद को चित्रित करने वाले उपन्यास लिखे गए। इस युग के उपन्यासों में विषय–वैविध्य है। भाषा और शिल्प के धरातल पर भी कई नवीन प्रयोग मिलते हैं। स्वातंत्र्योत्तर युग में सत्ता का बदला जाना, आर्थिक विपन्नता, हिंदु–मुस्लिम वैमनस्य के भयंकर हिंसक परिणाम और विभाजन की विभीषिका के बीच रचनाकारों में एक नया भावबोध उत्पन्न हुआ जो घोर सामाजिक और अपूर्व जिजीविषा का भाव लिए हुए था। अतः इस समय हिंदी का उपन्यास साहित्य कई मोड़ों से गुजरता हुआ दिखाई देता है। इस युग में सामाजिक, समाजवादी यथार्थवादी, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, आंचलिक, प्रयोगशील और आधुनिकता–बोध से युक्त उपन्यासों की रचना हुई।

कहानी बीसवीं शताब्दी की देन है। सन् 1900 से लेकर आज तक कहानी लेखन का क्रम उत्तरोत्तर विकास के पथ पर अग्रसर रहा है। कहानी लेखन के विकास को हम चार भागों में विभाजित करते हुए समझ सकते हैं। पूर्व प्रेमचंद युग, प्रेमचंद–प्रसाद युग, उत्तर प्रेमचंद युग और स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी। प्रसाद और प्रेमचंद की रचना प्रक्रिया ने हिंदी कथा साहित्य में दो निश्चित धाराओं को स्वरूप दिया– व्यक्ति और समाज। आगे चलकर प्रसाद की इस व्यक्तिवादी चिंतनधारा को जैनेंद्र, इलाचंद्र जोशी तथा अज्ञेय ने और प्रेमचंद की समाजवादी चिंतनधारा को यशपाल, भीष्म साहनी, ज्ञानरंजन और अमरकांत ने आगे बढ़ाया। इलाचंद्र जोशी ने कथा–साहित्य में व्यक्तिवाद को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया। उनका चिंतन जैनेंद्र से भिन्न है। वह मानव मन की गहराइयों में झांककर व्यक्ति–मन के भीतर दमित वासनाओं तथा कुंठाओं का विश्लेषण करते हैं। प्रेमचंद और प्रसाद के बाद हिंदी कहानी को नया आयाम देने वालों

में जैनेंद्र का नाम प्रमुख है। उन्होंने कथावस्तु को सामाजिक धरातल से ऊपर उठाकर व्यक्तिगत और मनोवैज्ञानिक भूमिका पर प्रतिष्ठित किया। इस व्यक्तिवादी धारा के साथ ही इस समय यशपाल ने अपने कथा साहित्य के माध्यम से समाज में फैली सब प्रकार की कुरूपताओं का पर्दाफाश किया। उनकी दृष्टि मार्क्सवादी थी अतः उनका लक्ष्य एक ही रहा— सामाजिक वैषम्य का उद्घाटन करना। प्रत्येक कहानी में उनका समाजवादी चिंतन ही प्रमुख रहा है। इस समाजवादी परंपरा पर आगे चलकर राहुल सांकृत्यायन, रांगेय राघव, नागार्जुन ने सशक्त कहानियां लिखीं। विष्णु प्रभाकर और उपेंद्रनाथ अश्क ने भी इसी समय कहानी के क्षेत्र में अपना नाम स्थापित किया। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानियों में सन् 1950 के बाद व्यक्तिवादी स्वर मुखर होने लगा। मार्क्स और फ्रायड के प्रभाव से आगे बढ़कर अस्तित्ववादी दर्शन ने जीवन के बुनियादी सवालों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया। स्वतंत्रता से प्राप्त होने वाले सुख की कल्पना शीघ्र ही विच्छिन्न हो गयी। विभाजन के साथ जुड़े हुए संहार, ध्वंस और सामूहिक हत्याओं ने मानवीय मूल्यों का जो विघटन किया उसे यशपाल, चंद्रगुप्त विद्यालंकार, उपेंद्रनाथ अश्क, विष्णु प्रभाकर, जैनेंद्र और बाद में मोहन राकेश तथा भीष्म साहनी ने चित्रित किया। सन् 1955 में कहानी पत्रिका का प्रकाशन हुआ। नवीन चेतना की खोज करने वाले कहानीकारों को इस दौर को आगे बढ़ाने का अवसर मिला। उन्होंने 1956—57 में इसका नाम नयी कहानी रख दिया। अब कहानी में नये संदर्भों की खोज होने लगी। इस दौर में उभरने वाले विद्रोह और आक्रोश ने कहानी को एक सपाटबयानी दी। कहानी का रूपबंध बदल गया।

आधुनिक एकांकी वैज्ञानिक युग की देन है। एकांकी ने नाटक से भिन्न अपना स्वतंत्र स्वरूप प्रतिष्ठित कर लिया है। एकांकी बड़े नाटक की अपेक्षा छोटा अवश्य होता है परंतु वह उसका संक्षिप्त रूप नहीं है। बड़े नाटक में वर्णित विस्तृत जीवन के विपरीत इसमें जीवन की एकरूपता, कसावट, चरित्र—चित्रण की तीव्र और संक्षिप्त रूप—रेखा, कुतूहल की चरम सीमा होती है। हिंदी एकांकी का विकास क्रमशः भारतेंदु युग, प्रसाद युग, प्रसादोत्तर युग तथा स्वातंत्र्योत्तर युग में संपन्न हुआ। भारतेंदु युग में जो एकांकी लिखे गए वे प्रायः नाटक का ही लघु रूप थे। इस युग में एकांकी का स्वतंत्र रूप नहीं मिलता। किंतु प्रसाद युग से प्रारंभ होकर स्वातंत्र्योत्तर काल तक इसका स्वतंत्र स्वरूप निश्चित रूप से प्रगतिशील युग कहा जा सकता है।

हिंदी आलोचना का प्रारंभ भी गद्य की अन्य विधाओं के साथ भारतेंदु युग में हुआ। इस युग में मुद्रण कला का विकास हुआ, राजनीतिक जागृति आई और पत्र—पत्रिकाओं का लगातार प्रकाशन हुआ। द्विवेदी युग में आलोचना के दो मुख्य प्रतिमान रहे— एक, परंपरागत शास्त्रीय दृष्टि जिसके आधार पर आलोच्य कृति के गुण—दोषों का विवेचन किया जाता था। दूसरी, नैतिक सांस्कृतिक मूल्यों की दृष्टि जो आलोच्य कृति के प्रभाव को ध्यान में रखकर उसे श्रेष्ठ या हीन सिद्ध करती थी। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी आलोचना क्षेत्र में प्रवेश करते ही सबसे महत्वपूर्ण कार्य किया— साहित्यिक रुचि में परिवर्तन। शुक्ल जी ने पूरी साहित्यिक परंपरा का पुनर्गठन किया। शुक्ल परवर्ती युग में हिंदी—समीक्षा का विकास द्रुत गति से हुआ। शुक्लोत्तर हिंदी आलोचना अपने युग के

प्रभावों को ग्रहण करती हुई विकसित हुई। फ्रायडवादी, मार्क्सवादी और अस्तित्ववादी विचारधारा का प्रभाव साहित्य पर पड़ने लगा। इन विश्वव्यापी चिंतनधाराओं से प्रभावित होकर आलोचना का भी विकास हुआ।सन् 1950 के बाद हिंदी आलोचना का विकास नये संदर्भों में नयी आवश्यकता की पूर्ति हेतु सही दिशा में अग्रसर हुआ। 'नयी कविता' या 'नवलेखन' की तर्ज़ पर 'नयी आलोचना' नाम दिया गया। इस वर्ग के आलोचकों ने व्यक्ति स्वातंत्र्य को जीवन का सर्वोच्च मूल्य स्वीकार कर साहित्य की नयी मर्यादाओं की स्थापना की। नयी समीक्षा में अज्ञेय, गजानन माधव मुक्तिबोध, गिरिजा कुमार माथुर, शमशेर बहादुर सिंह, धर्मवीर भारती, नेमिचंद्र जैन, लक्ष्मीकांत वर्मा प्रमुख हैं। इन आलोचकों में डॉ. नामवर सिंह का शीर्ष स्थान है।

साहित्य की अन्य विधाओं की तरह हिंदी साहित्य में जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण और रेखाचित्र साहित्य का भी विकास हुआ। जीवनी और आत्मकथा जैसी साहित्यिक विधाएं जहां रचनाकार के व्यक्तिगत जीवन और सुख–दुख का परिचय देती हैं तो संस्मरण और रेखाचित्र रचनाकार के इर्दगिर्द रहे लोगों, परिवेश, यादों तथा अनुभवों का रोचक चित्र प्रस्तुत करती हैं।

आजकल हिंदी की प्रायः सभी पत्र–पत्रिकाओं में साक्षात्कार या भेंट–वार्ताएं प्रकाशित हो रही हैं, जिससे साक्षात्कार साहित्य का विकास हो रहा है।

साहित्य जगत में विभिन्न विद्वानों द्वारा यात्रा साहित्य का संपादन एवं प्रकाशन किया गया। यात्रा लेखन में राहुल सांकृत्यायन का नाम सबसे आगे है। मेरी लद्दाख यात्रा (1939), किन्नर देश में (1948), राहुल यात्रावली, एशिया के दुर्गम भूखंडों में (1956) आदि उनके प्रसिद्ध यात्रा वृत्त हैं। उन्होंने 1949 में 'घुमक्कड़ शास्त्र' लिख कर पर्यटकों एवं यायावरों का मार्गदर्शन भी किया।

हिंदी में पत्र साहित्य की दृष्टि से सन् 1904 में महात्मा मुंशीराम द्वारा स्वामी दयानंद सरस्वती के पत्रों का संकलन उल्लेखनीय है। पत्र लेखन का अपना महत्व है। समय और व्यक्तित्व के महत्व को देखते हुए पत्रों का ऐतिहासिक महत्व बढ़ जाता है। 'पिता के पत्र–पुत्री के नाम' में पं. जवाहरलाल नेहरू लिखित पत्र बहुत लोकप्रिय हुए। शांतिप्रिय आत्माराम ने औरंगजेब के ऐतिहासिक पत्रों का 'आलमगीर के पत्र' (1931) शीर्षक से संपादन किया।

डायरी लेखन भले ही एक व्यक्तिगत विधा हो लेकिन जब यह निजी भावनाओं की अभिव्यक्ति मात्र न कर युग एवं परिवेश को ध्वनित करती है तो विधा का रूप ले लेती है। उदाहरण के लिए नोबेल पुरस्कार से सम्मानित विश्वविख्यात फ्रेंच शिल्पी दार्शनिक रोमैं रोलां की डायरी है। हिंदी साहित्य में डायरी लेखन की प्रवृत्ति बहुत अधिक समृद्ध नहीं है परंतु इधर डायरी लेखन की प्रवृत्ति उभरी और उसे सामने लाने के प्रयास भी हुए, जिनका विस्तृत वर्णन इस इकाई में किया गया है।

पत्रकारिता के विकास के साथ ही हिंदी साहित्य में रिपोर्ताज ने अपने लिए अच्छा–खासा क्षेत्र बना लिया है। रिपोतार्ज लेखन में वरिष्ठ साहित्यकारों ने कलम उठाई और वे सफल हुए। यह साहित्यिक विधा दिन प्रति दिन निखरती जा रही है।

दक्खिनी हिंदी भाषा के विकास की वह कड़ी है जिसमें भारत के उत्तर और दक्षिण भाग की भाषाओं, सांस्कृतिक परंपराओं तथा धार्मिक भावना का समन्वित संबंध दिखाई देता है। जिस तरह मध्यकाल में नवागंतुकों के सम्मिलन से दक्षिणापथ में परिष्कृत महाराष्ट्रीय प्राकृत का रूप प्रकट हुआ उसी भांति नव्य भारतीय आर्य भाषाओं में महत्वपूर्ण भाषा हिंदी के परिष्करण में इस प्रदेश ने योग दिया। दक्खिनी हिंदी के प्रथम कवि के रूप में 'वली' का नाम लिया जाता है। औरंगजेब के आक्रमण के समय हिंदी और दक्खिनी को पृथक–पृथक बताने की आवश्यकता पड़ी, तभी इसका नाम दक्खिनी पड़ा।

हिंदी भाषा के विकास में उर्दू भाषा का महत्वपूर्ण योगदान है। उर्दू भाषा हिंदी से ही विकसित हुई। उर्दू में कई काव्यरूप विकसित हुए। उर्दू के प्रमुख काव्य–रूप गजल, किता, मसनवी, कसीदा, रुबाई, वासोख्त और गीत आदि हैं। उर्दू का छंदशास्त्र फारसी और अरबी का अनुकरण करता है। हिंदी और उर्दू में एक ही प्रमुख भाषिक अंतर है। दोनों भाषाएं अलग–अलग लिपियों में लिखी जाती हैं। संसार में शायद यही एक उदाहरण है, जहां एक ही भाषा रूप को दो भिन्न भाषाओं के नाम से जाना जाता है।

हिंदी की साहित्यिक पत्र–पत्रिकाओं का भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। स्वाधीनता संग्राम में जन–जन की चेतना का वाहक बनी ये पत्र–पत्रिकाएं विषम परिस्थितियों में भी जन–मन की कथा–व्यथा कहने का साहस रख, निरंतर प्रगति पथ पर अग्रसर हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि हिंदी गद्य अनेकानेक विधाओं का रूप लेकर निरंतर विकसित होता जा रहा है।

5.22 मुख्य शब्दावली

- **वर्णसंकर** : दो विभिन्न जातियों के स्त्री–पुरुष से उत्पन्न संतान
- **यायावर** : घुमक्कड़
- **त्रिपथगा** : तीन चरणों वाला, तीन पदों वाला, गंगा नदी
- **स्वातंत्र्योत्तर** : स्वतंत्रता के बाद
- **अंतर्द्वंद्व** : आंतरिक संघर्ष
- **आलोचना** : समीक्षा करना, देखना
- **परिमार्जित** : त्रुटि रहित
- **अनुसंधानपरक** : खोज युक्त, अन्वेषण युक्त
- **समसामयिकता** : समकालीन
- **सार्वदेशिकता** : सब देशों से संबद्ध
- **अभिहित** : उल्लिखित, कहा हुआ
- **मरसिया** : शोक गीत
- **हिकायत** : कहानी, कथा

- **आरसी** : आईना
- **मसनवी** : उर्दू में वह कविता जिसमें तुकबंदी रहित कई शेर होते हैं
- **हीला** : बहाना, धोखा
- **अजम** : अरब से भिन्न, ईरान
- **कसीदा** : किसी व्यक्ति, वस्तु या विषय की प्रशंसा या निंदा
- **मरसिया करना** : मरने वालों के गुणों का इस प्रकार वर्णन करना कि सुनने वालों के हृदय में करुणा जाग्रत हो जाए।
- **किता** : टुकड़ा
- **मुसाहिब** : सभासद

5.23 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. नहुष
2. भारतेंदु युग
3. देवकीनंदन खत्री
4. पंडित माधव शुल्क
5. जयशंकर प्रसाद
6. उपेंद्रनाथ 'अश्क'
7. कर्बला
8. व्यंग्य विनोद की शैली
9. बालकृष्ण भट्ट
10. एक हजार
11. प्रतापनारायण मिश्र
12. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी
13. आठ
14. आचार्य रामचंद्र शुक्ल
15. फ्रायड, एडलर तथा जुंग
16. परीक्षा गुरु
17. 1918
18. प्रेमचंद
19. वृंदावनलाल वर्मा
20. शेखर एक जीवनी
21. यशपाल
22. फणीश्वरनाथ रेणु
23. मुर्दों का टीला
24. बलचनमा
25. सरस्वती
26. 300 कहानियां
27. जयशंकर प्रसाद
28. सन् 1944
29. स्वतंत्रता के बाद
30. सन् 1960 के बाद
31. मूड या क्षण की
32. प्रेमयोगिनी
33. एक घूंट
34. प्रसादोत्तर युग
35. प्रसादोत्तर युग
36. स्वातंत्र्योत्तर युग
37. निंदा–स्तुति
38. नाट्य
39. पांच
40. महावीर प्रसाद द्विवेदी

41. आचार्य रामचंद्र शुक्ल
42. स्वच्छंदतावादी
43. इलाचंद्र जोशी
44. अज्ञेय
45. बनारसीदास चुर्वेदी
46. 'कल्याण का पथिक'
47. महादेवी वर्मा
48. श्रीराम शर्मा
49. हरिशंकर परसाई
50. बनारसीदास चतुर्वेदी
51. भारतेंदु युग
52. राहलु सांकृत्यायन
53. महात्मा मुंशीराम
54. हिमांशु जोशी
55. डॉ. नामवर सिंह
56. डॉ. रांगेय राघव
57. अमृतलाल नागर
58. दक्खिनी हिंदी
59. वली
60. हिंदी
61. फारसी
62. दरबारी
63. उदन्त मार्तंड
64. बनारस

5.24 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. हिंदी नाटक और रंगमंच के वर्तमान स्वरूप की समीक्षा अपने शब्दों में कीजिए।
2. शुक्लोत्तर युग के निबंधों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
3. उत्तर प्रेमचंद युग के मनोविश्लेषणवादी एवं प्रगतिवादी उपन्यासकारों के रचना संसार एवं रचनाशैली पर प्रकाश डालिए।
4. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी लेखन की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
5. नयी कहानी की रूपरेखा का विवेचन अपने शब्दों में कीजिए।
6. निम्न से किन्हीं तीन कहानीकारों के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालिए–
   (क) प्रेमचंद (ख) यशपाल (ग) अज्ञेय (घ) विष्णु प्रभाकर (ङ) मन्नू भंडारी।
7. एकांकी से आप क्या समझते हैं? अपने पसंदीदा एकांकी को आधार बनाते हुए एकांकी के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।
8. नयी समीक्षा पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
9. जीवनी साहित्य के विकास के संदर्भ में उसकी उपयोगिता पर अपने विचार प्रकट कीजिए।
10. राहुल सांकृत्यायन के यात्रा साहित्य पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
11. हिंदी–उर्दू साहित्य के पारस्परिक संबंधों को स्पष्ट कर उनका महत्व प्रतिपादित कीजिए।

र्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. हिंदी नाटक साहित्य के ऐतिहासिक विकास क्रम का विस्तृत वर्णन करते हुए प्रमुख नाटकों के महत्व का विवेचन कीजिए।
2. हिंदी साहित्य में निबंध लेखन की विधा के विकास में भारतेंदु एवं द्विवेदी युग के योगदान का विवेचन कीजिए।
3. "आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबंध क्षेत्र में पदार्पण करने से निबंध–साहित्य में एक नया जीवन आया।"– इस कथन के परिप्रेक्ष्य में शुक्ल युग का मूल्यांकन अपने शब्दों में कीजिए।
4. हिंदी उपन्यास लेखन में प्रेमचंद के साहित्य का मूल्यांकन करते हुए उनकी प्रासंगिकता सिद्ध कीजिए।
5. स्वातंत्र्योत्तर युग में लिखे गए उपन्यासों की प्रकृति एवं विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
6. हिंदी साहित्य में कहानी के उद्भव व विकास का विस्तृत विवेचन कीजिए।
7. "प्रसादोत्तर युग में हिंदी एकांकी का स्वतंत्र अस्तित्व परिलक्षित होता है।"– इस कथन के परिप्रेक्ष्य में एकांकी के विकास का विश्लेषणात्मक विवेचन कीजिए।
8. स्वातंत्र्योत्तर युगीन एकांकियों की विशेषताओं का वर्णन करते हुए उनमें मौजूद युगीन बोध को परिभाषित कीजिए।
9. आलोचना का अर्थ स्पष्ट करते हुए हिंदी आलोचना साहित्य के क्षेत्र में रामचंद्र शुक्ल के योगदान का विस्तृत विवेचन कीजिए।
10. आत्मकथा का लेखक अपने संपूर्ण व्यक्तित्व के उद्घाटन में कितना सफल हो पाता है? प्रसिद्ध आत्मकथाओं के उदाहरण प्रस्तुत करते हुए समझाइए।
11. 'संस्मरण गद्य साहित्य की एक उत्कृष्ट एवं ललित विधा है' कैसे? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
12. रेखाचित्र से आप क्या समझते हैं? संस्मरण से वह किस प्रकार भिन्न है, स्पष्ट कीजिए।
13. सफल डायरी लेखन की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए हिंदी में डायरी लेखन के विकास पर प्रकाश डालिए।
14. दक्खिनी हिंदी साहित्य के स्वरूप का विवेचन करते हुए उसके क्रमिक विकास का विश्लेषण कीजिए।
15. उर्दू साहित्य के विकास का विवेचन करते हुए उसके विविध काव्यरूपों का परिचय दीजिए।
16. भारतीय नवजागरण में तत्कालीन हिंदी पत्र–पत्रिकाओं के महत्वपूर्ण योगदान का विवेचन कीजिए।

5.25 आप ये भी पढ़ सकते हैं

- डॉ. रामसजन पाण्डेय, *हिंदी साहित्य का इतिहास,* संजय प्रकाशन, नयी दिल्ली।
- डॉ. सुरेश चंद्र निर्मल, *साहित्यिक निबंध,* सस प्रकाशन, मेरठ।
- *हिंदी भाषा : इतिहास और वर्तमान,* इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय।
- रवीन्द्रनाथ मिश्र, *इक्कीसवीं सदी का हिंदी साहित्य,* लोकभारती प्रकाशन।
- सुधीश पचौरी, *भूमंडलीकरण और उत्तर सांस्कृतिक विमर्श,* प्रवीण प्रकाशन।
- डॉ. सोफिया मैथ्यू, *स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता में सामाजिक चेतना,* सूर्यभारती प्रकाशन।
- *समकालीन हिंदी साहित्य : विविध परिप्रेक्ष्य,* दर्पण प्रकाशन।
- रामस्वरूप चतुर्वेदी, *हिंदी गद्य विन्यास और विकास,* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

5.18 सारांश

किसी भाषा के वाचिक और लिखित शास्त्र समूह को साहित्य कहते हैं भारत में 64 कलाओं की चर्चा की गई है जिसमें से 6 ललित कलाएं हैं इन्हीं में एक साहित्य कला है मानव के समस्त भाव मानसिक विवो अनुभूतियों विचारों को अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम साहित्य है लेखक अपने विचार विभिन्न विधाओं जैसे नाटक उपन्यास कहानी एकांकी आदि के द्वारा व्यक्त करता है | 19वीं शताब्दी में भारत का सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिवेश में लगातार परिवर्तन हो रहा था| इस समय यह महसूस किया जाने लगा कि विश्व में गधे के क्षेत्र में जो लेखन हो रहा है उसे सभी जाने और समझें सन 18 सो 50 के बाद भारतेंदु युग एक ऐसा युग है जब कहानी उपन्यास नाटक जैसी गद्य विधाएं प्रारंभ हो चुकी थी पहले तो अंग्रेजी और बांग्ला से हिंदी में अनुवाद किए गए किंतु उसके साथ ही मूल लेखन प्रारंभ हो गया हिंदी खड़ी बोली के विकास में भारतेंदु युग, द्विवेदी युग तथा उनके पश्चात के युग का विशेष योगदान रहा भारतेंदु युग हिंदी गद्य के बहुमुखी विकास का युग है उनके पूर्व बहुत से गद्य

लेखकों ने अपनी-अपनी रचनाएं लिखें किंतु 19वीं सती के अंतिम चरण में पूरे देश में सांस्कृतिक जागरण की लहर दौड़ चुकी थी सामंतीय सामाजिक ढांचा टूट चुका था अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव देश के शिक्षित समाज पर पड़ रहा था देश में एक सशक्त मध्यवर्ग तैयार हो गया था जो अत्यधिक संवेदनशील का और यह वर्ग व्यापक राष्ट्रीय एवं सामाजिक हितों की दृष्टि से सोचने लगा था तथा यह अनुभव करने लगा था कि सभी देशों से भारत अत्यंत हीना अवस्था में है तथा सभी क्षेत्रों में सुधार की आवश्यकता है भारतेंदु इसी प्रगतिशील चेतना के प्रतिनिधि बनकर उभरे उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से ठीक समय पर उचित नेतृत्व प्रदान किया और अपने निबंधों नाटकों तथा भाषाओं में जागरण का संदेश दिया उनके सहयोगियों और समर्थकों ने उनके द्वारा प्रशस्ति पथ पर चलकर हिंदी की जो सेवा की वह अविस्मरणीय है हिंदी साहित्य के गद्य का प्रारंभिक काल सांस्कृतिक जागरण का साहित्य है इस युग में रचित गद्य साहित्य की प्रत्येक विधा नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध,आलोचना, एकांकी, जीवनी, रेखा चित्र, संस्मरण, आत्मकथा, पत्र एवं डायरी साहित्य, रिपोर्ताज आदि के समीक्षात्मक परिचय से सामाजिक और सांस्कृतिक जागरण का स्वरूप स्पष्ट होता है|

5.19 मुख्य शब्दावली

संप्रेषणीयता- संप्रेषण के योग्य, सोद्देश्य- उद्देश्य सहित, शून्यता- खालीपन,परिणाम- फलतः,सृजन- निर्माण, व्यक्त- प्रकट, श्रंखला- कड़ी/ जंजीर, साम्राज्य- शासन, ओतप्रोत- परिपूर्ण ,नियति- भाग्य, भावज- भाभी, पुनरावलोकन- फिर से एक बार देखना, त्रास- पीड़ा, नीरवता- चुप्पी, आर्तनाद- दुःख ,कुंठा- दमित इच्छाएं, पलायन- कर्म से भागने की प्रवृत्ति, दीठ- नजर/ दृष्टि, पांत- पंक्ति,   अक्षरक्षः- पूर्णतया, टोली-समूह, मलबा-कूड़ा,समरसता- भाईचारे का संदेश , शमन-नष्ट क नष्ट करना नष्ट करना,ध्येय- लक्ष्य,आविर्भाव- उत्पन्न होना,कतिपय-कुछ, अन्वेषण - खोजना,कथोपकथन- संवाद,अविस्मरणीय- याद रखने योग्य, विस्मरणीय - भुलाने योग्य, तिलस्मी- अलौकिक व्यापार,जासूसी- गुप्तचरी, प्रोत्साहित- किसी काम के लिए उत्साह बढ़ाना, समयानुकूल- समय के अनुसार, औपन्यासिक- उपन्यास के, सृजन- निर्माण, प्रेमचंदोत्तर- प्रेमचंद के पश्चात, पुरातन- प्राचीन, अलौकिक- जो सांसारिक ना हो, पराधीनता- गुलामी, वैयक्तिक- व्यक्ति संबंधी, ग्राह्य- ग्रहण करने योग्य, ह्रासोन्मुख- पतन की ओर जाने वाले, सम्राट- राजा |

5.20 अपनी प्रगति जाँचिये (बोध प्रश्नों) के उत्तर

1. प्रेमचंद को उपन्यास सम्राट कहा जाता है|
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल चिंतामणि निबंध संग्रह के लेखक हैं|
3. हिंदी की पहली कहानी किशोरी लाल गोस्वामी की इंदुमति है|
4. हिंदी का प्रथम रेखा चित्रकार श्रीराम शर्मा को माना जाता है|
5. उपन्यास और कहानी हिंदी गद्य की दो प्रमुख विधाएं हैं|
6. लाला श्रीनिवास दास कृत परीक्षा गुरु हिंदी का प्रथम मौलिक उपन्यास है|
7. प्रताप नारायण मिश्र और बालकृष्ण भट्ट भारतेंदु युग के दो प्रमुख निबंधकार हैं|
8. किसी एक कार्य या घटना का एक स्थान पर किसी निश्चित समय में पूरा होना संकलन त्रय कहलाता है|
9. जब लेखक अपने जीवन की कथा को पाठकों के समक्ष पूर्ण आत्मीयता के साथ प्रस्तुत करता है तो उसे आत्मकथा कहते हैं|
10. किसी महान व्यक्ति के जीवन की आद्योपांत क्रमबद्ध घटनाओं के उल्लेख को जीवनी कहते हैं|
11. डॉ प्रभाकर माचवे और विष्णु प्रभाकर|
12. भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा लिखित 'सरयूपार की यात्रा' हिंदी का प्रथम यात्रावृत्त है|
13. आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और बाबू श्यामसुंदर दास द्विवेदी युग के दो समीक्षक हैं|
14. सन 1929 ई. में पंडित पदमसिंह शर्मा के पद्म पुराण से हिंदी में रेखा चित्र का सूत्रपात हुआ|
15. हिंदी गद्य के प्राचीनतम प्रयोग राजस्थानी और ब्रज भाषा में मिलते हैं|
16. कविवचन सुधा,हरिश्चंद्र मैगजीन ,हिंदी प्रदीप, ब्राम्हण,आनंद कादंबिनी आदि भारतेंदु युग की प्रमुख पत्रिकाएं हैं |
17. देवकीनंदन खत्री ने चंद्रकांता उपन्यास लिखा|
18. शुक्ल युग को अन्य नामों से भी जाना जाता है जैसे छायावाद युग, प्रसाद युग, प्रेमचंद युग |
19. आकाशदीप कहानी जयशंकर प्रसाद की है|
20. कंकाल और तितली उपन्यास जयशंकर प्रसाद द्वारा लिखित हैं|
21. डॉ रामकुमार वर्मा को आधुनिक हिंदी एकांकी का जनक माना जाता है|
22. रामविलास शर्मा आलोचक के रूप में प्रसिद्ध हैं|
23. दक्खिनी हिंदी का एक रूप है|
24. दक्खिनी के अंतिम कवि वली औरंगाबादी हैं|

5.21 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. संस्मरण और रेखाचित्र में अंतर स्पष्ट कीजिए|
2. हिंदी उपन्यास के उद्भव एवं विकास पर प्रकाश डालिए|
3. यात्रा साहित्य की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए|
4. रिपोर्ताज क्या है?
5. नई कहानी की विशेषताएं स्पष्ट कीजिए|
6. निबंध परंपरा में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का स्थान निर्धारित कीजिए|
7. आलोचना का स्वरूप एवं प्रकार पर प्रकाश डालिए |
8. जीवनी और आत्मकथा में क्या अंतर है स्पष्ट कीजिए?
9. पत्र साहित्य की प्रवृत्तियों का उल्लेख कीजिए|
10. नई समीक्षा किसे कहते हैं?
11. भारतेंदु युगीन हिंदी आलोचना पर प्रकाश डालिए|
12. एकांकी के विकास में रामकुमार वर्मा का योगदान निर्धारित कीजिए|
13. नाटक की परिभाषा देते हुए उसके स्वरूप और विकास का परिचय दीजिए|
14. दक्खिनी हिंदी के स्वरूप और क्षेत्र का निर्धारण कीजिए|

5.22 आप ये भी पढ़ सकते हैं- ग्रंथ सूची एवं वेबसाइट

1. हिंदी साहित्य का उद्भव और विकास- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन
2. हिंदी कहानी का विकास- देवेश ठाकुर, मीनाक्षी प्रकाशन मेरठ
3. हिंदी उपन्यास का प्रारंभिक विकास- डॉक्टर बाला,कु.शैल सत्य सदन बाराबंकी
4. हिंदी साहित्य का इतिहास- बाबू गुलाब राय
5. साहित्यिक निबंध- राजनाथ शर्मा, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा
6. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानियां- संपादक कमलेश्वर,, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया
7. हिंदी आलोचना: इतिहास और सिद्धांत- योगेंद्र प्रताप सिंह, गूगल पुस्तक
8. समकालीन हिंदी समीक्षा- हुकुमचंद राजपाल, गूगल पुस्तक

Institute of Distance Education

Rajiv Gandhi University

A Central University

Rono Hills, Arunachal Pradesh

Contact us:

+91-98638 68890 Ide Rgu Ide Rgu helpdesk.ide@rgu.ac.in